द्वितीय विश्व युद्ध

WORLD WAR - II

मेजर राजपाल सिंह

द्वितीय विश्वयुद्ध सन् 1939 से 1945 तक चलने वाला विश्व-स्तरीय युद्ध था। लगभग 70 देशों की थल, जल, वायु सेनाएँ इस युद्ध में सम्मलित थीं और विश्व दो भागों में बँटा हुआ था—मित्र राष्ट्र और धरी राष्ट्र। इस युद्ध में विभिन्न राष्ट्रों के लगभग 10 करोड़ सैनिकों ने हिस्सा लिया। यह मानव इतिहास का सबसे घातक युद्ध साबित हुआ। इस महायुद्ध में 5 से 7 करोड़ लोग मारे गए। द्वितीय विश्व युद्ध की शुरुआत 1 सितंबर, 1939 को हुई मानी जाती है, जब जर्मनी ने पोलैंड पर हमला बोला और उसके बाद जब फ्रांस ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी तथा इंग्लैंड और अन्य राष्ट्रमंडल देशों ने भी इसका अनुमोदन किया।

सन् 1944 और 1945 के दौरान अमेरिका ने कई जगहों पर जापानी नौसेना को शिकस्त दी और पश्चिमी प्रशांत के कई द्वीपों में अपना कब्जा बना लिया। अमेरिका ने जापान में दो परमाणु बम गिराए—हिरोशिमा और नागासाकी की मर्मांतक घटना को विश्व शायद ही कभी भूल पाए। इसके साथ ही 15 अगस्त, 1945 को एशिया में भी द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हो गया।

युद्धों से कभी किसी का भला नहीं हुआ। ये तो विनाश-सर्वनाश के कारण हैं। किसी भी सभ्य समाज में युद्धों का कोई स्थान नहीं है; और इन्हें किसी भी कीमत पर रोका जाना चाहिए। इस पुस्तक का उद्देश्य भी यही है कि विश्वयुद्धों की विभीषिका से सीख लेकर हम युद्धों से तौबा कर लें और ऐसी परिस्थितियाँ पैदा न होने दें, जो युद्धों का जन्म दें।

मानवीय संवेदना और मानवता को बचाए रखने का विनम्र प्रयास है यह पुस्तक।

द्वितीय विश्व युद्ध
(World War - II)

द्वितीय विश्व युद्ध

(World War - II)

मेजर राजपाल सिंह

ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली

अपनी बात

प्रथम विश्व युद्ध (1914-1919) तथा द्वितीय विश्व युद्ध (1939-1945) ने दुनिया को ऐसी अपूरणीय क्षति दी, जिसकी भरपाई वह आज भी कर रही है। हिरोशिमा-नागासाकी के जख्म आज भी हरे हैं। हिटलर ने यहूदियों को जो घाव दिए, उनसे वे आज भी आतंकित हैं। पर्ल हार्बर का हमला अमरीकियों में आज भी टीस भर देता है।

भारतीय वैदिक साहित्य का अध्ययन करें तो वहाँ हमें दैत्यों और देवों के युद्धों के वर्णन मिलते हैं। दैत्य भी साम्राज्यवादी लालसा में कभी इंद्र के स्वर्गासन पर हमला करते हैं, तो कभी ऋषि-मुनियों का कत्लेआम कर उन्हें अपनी पूजा को बाध्य करते हैं। जैसे यहूदियों का कत्लेआम कर नाजियों को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने की कुचेष्टा की गई। वैसे दैत्यों ने भी अपना अस्तित्व बचाने के लिए युद्ध किया। लेकिन दैत्यों ने अपने लोगों से कभी युद्ध नहीं किया; जबकि प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध में एक इनसान ने दूसरे के साथ छल, बलात्कार, लूट-खसोट किया, नरसंहार का नंगा नाच किया। इन युद्धों में उन्होंने इनसानियत की सारी हदें तोड़कर राक्षसों को भी शर्मिंदा कर दिया।

आँकड़ों की बात करें तो इन युद्धों में लगभग 10 करोड़ लोग मारे गए और अरबों डॉलर की संपत्ति स्वाहा हो गई। अगर इतना मानव संसाधन और आर्थिक संसाधन हम रचनात्मक कार्यों पर खर्च करते तो चंद्रमा पर एक नई बस्ती बसा सकते थे।

आज अनेक देश युद्ध में लगे हैं। कुछ ने तो युद्ध को अपनी राष्ट्रीय नीति का हिस्सा बना लिया है। पीछे लड़े गए युद्धों पर दृष्टि डालें तो पता चल जाएगा कि वे कितने पानी में हैं। युद्ध हमेशा विनाश का मार्ग प्रशस्त करते हैं। दूसरों का घर जलाने पर उसकी चिनगारी हमारा घर भी जलाएगी। स्मरण रखें—

- आप हिटलर से अधिक ताकतवर नहीं हो सकते, जिसके आह्वान पर लाखों लोग कट मरने को तैयार थे। लेकिन युद्ध की आग ने उसे भी लील लिया। उसे पत्नी सहित आत्महत्या करनी पड़ी।
- इटली के तानाशाह मुसोलिनी ने राज्य-विस्तार की लालसा में हिटलर का साथ दिया और आँख मूँदकर उसकी हाँ-में-हाँ मिलाई। परिणाम, उसे चौराहे पर पागल कुत्ते की तरह गोली मार दी गई।
- सोवियत संघ के तानाशाह स्टालिन ने तो क्रूरता में दानवों को भी पीछे छोड़ दिया था। वह अपनी सेना के योग्य कमांडरों का कत्ल करवा देता था, ताकि कोई उसकी एकच्छत्र सत्ता को चुनौती न दे सके। हजारों लोगों को वह बातों-ही-बातों में कत्ल करवा देता था। अपनी स्वार्थ-पूर्ति के आगे इनसान उसे कीड़े-मकोड़ों से भी बदतर नजर आते थे। उसका कहना था कि एक आदमी की मौत एक त्रासदी है और लाखों की आँकड़ा।
- जापानी तानाशाह हिदेकी तोजो ने विश्व में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए युद्ध को हथियार बनाया। पर्ल हार्बर पर हमला कराया। आसपास के मुल्कों पर ताबड़तोड़ हमले किए। शांति-प्रस्तावों को हेकड़ी के साथ ठुकरा दिया। परिणाम हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु हमले झेलने पड़े। हिरोशिमा में लगभग एक लाख लोग मारे गए और इससे आधे घायल हुए। नागासाकी में 1 लाख से कुछ कम लोग मारे गए और लगभग 50 हजार लोग घायल हुए। बाद में युद्ध-अपराध के लिए इस तानाशाह को फाँसी पर चढ़ा दिया गया। एक आदमी की गलती की सजा इतने आदमी क्यों भुगतें?
- दुनिया में अमन, शांति, विकास और सौहार्द के लिए हिंसक लोगों की नहीं, गांधी जैसे लोगों की जरूरत है। हिंसक लोग इनसानियत को तोड़ते हैं और गांधी जैसे लोग राक्षसों को भी इनसान बना देते हैं। हिंसक लोग मुल्कों के बीच नफरत फैलाते हैं और आपसी संबंधों में दरार डालने का प्रयास करते हैं; वहीं गांधी जैसे लोग मुल्कों के बीच प्रेम बढ़ाने का प्रयास करते हैं और आपसी संबंधों में आई दरार को पाटने का काम करते हैं।

आप सोच सकते हैं, हमें कैसे लोगों की जरूरत है? हम अपने नेतृत्वकर्ताओं पर देश को अमन और शांति के मार्ग पर आगे बढ़ाने के लिए दबाव बना

सकते हैं। लोकतंत्र में यह किया जा सकता है। जनता की आवाज जनार्दन की आवाज होती है। हमें तय करना होगा कि देश और दुनिया में कहीं युद्ध न हों, क्योंकि युद्ध किसी समस्या का हल नहीं है। युद्ध से हमें तात्कालिक लाभ हो सकता है, लेकिन इसके दूरगामी परिणाम पक्ष और विपक्ष दोनों को भुगतने पड़ते हैं। पिछले युद्धों पर दृष्टि डालें तो निष्कर्ष हमें झकझोरकर रख देते हैं।

युद्ध रिक्टर स्केल पर 12 की तीव्रतावाले भूकंप के समान होता है, जो कुछेक सेकंडों में ही किसी देश को भयानक विनाश के तूफान में झोंकता है। वह अपने पीछे त्रासदी, विनाश, सिसकियाँ, तबाही और न जाने क्या कुछ छोड़ जाता है। उससे उबरने में वर्षों लग जाते हैं।

एक कहावत है, 'लबे शीरीं तो मुलक गीरी'। यानी हम मीठी बोली से पूरी दुनिया को वश में कर सकते हैं। आज जब संसार एक 'वैश्विक गाँव' बन गया है, ऐसे में युद्ध की सुदूरस्थ धमक भी घर के आँगन में गूँजती सुनाई देती है। इन परिस्थितियों में हमें युद्ध की बात सोचनी भी नहीं चाहिए, क्योंकि आज दुनिया चाँद पर पहुँच गई है। उसने अंतरिक्ष में प्रयोगशाला स्थापित कर ली है। जासूसी उपग्रहों की पैनी नजरों से लोगों के स्नानगृह भी निरापद नहीं बचे हैं; ऐसे में युद्ध की एक छोटी सी चिनगारी भी ज्वालामुखी का रूप धारण कर सकती है। तीसरा विश्व युद्ध कभी छिड़ा तो वह पृथ्वी से ही नहीं, चाँद से, उपग्रहों से, अंतरिक्ष से और न जाने कहाँ-कहाँ से लड़ा जाएगा। न जाने कौन-कौन से घातक अस्त्र-शस्त्रों का इस्तेमाल होगा।

आइंस्टीन ने कहा है, ''मुझे यह नहीं मालूम कि तीसरा विश्व युद्ध कैसे लड़ा जाएगा, लेकिन चौथा विश्व युद्ध अवश्य ही डंडों और पत्थरों से लड़ा जाएगा।'' अर्थात् तीसरा विश्व युद्ध हमें पुनः आदिम युग में पहुँचा देगा।

अत: यह प्रयास होना चाहिए कि अब धरती पर कोई युद्ध न हो। इस पुस्तक का उद्‌देश्य यही है कि विश्व युद्धों की विभीषिका से सीख लेकर हम युद्धों से तौबा कर लें और ऐसी परिस्थितियाँ पैदा न होने दें, जो कड़वाहट को जन्म दें।

इसी आशा और विश्वास के साथ।

विषय-सूची

द्वितीय विश्व युद्ध

द्वितीय विश्व युद्ध
(1939 - 1945)

द्वितीय विश्व युद्ध : सुलगते कारण

"अगर आप युद्ध की पहल करते हैं, तो समझ लें कि ईश्वर दूसरे पक्ष की तरफ है।"

—टेरी गुडकाइंड

अपने साम्राज्य की सीमा का विस्तार करने के लिए उसकी चौहद्दियों की बढ़ती दीवारों की नींव को रक्तरंजित करना होता है। साम्राज्य-विस्तार की ललक और अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए राज्य एवं राजा की अपनी आधारभूत संरचनाएँ होती हैं, जो उसके स्वयं के नियमों एवं शर्तों पर बनी होती हैं; जिसमें दूसरे राज्य एवं समाज के हितों की तनिक भी परवाह नहीं दिखती। यूरोप का इतिहास भी कुछ ऐसी ही पुनरावृत्तियाँ करता दुनिया के मानचित्र पर उगता और डूबता प्रतीत होता रहा है। यूरोपीय देशों की उन्नति के साथ-साथ अवनति भी उनके कदम-दर-कदम साथ चलती रही। यूरोपीय देशों के इस उतार-चढ़ाव का प्रभाव पूरी विश्व व्यवस्था पर भी पड़ता रहा है।

यूरोपीय देशों की अतिमहत्त्वाकांक्षी प्रवृत्तियों ने सन् 1914 में दुनिया को प्रथम विश्व युद्ध के पंजे में ढकेल दिया था। चार सालों तक चले इस प्रलयंकारी युद्ध से उत्पन्न अग्नि की तपिश से समूचा विश्व झुलस चुका था। इस अग्नि को प्रज्ज्वलित करनेवाले देश पूरी तरह जल चुके थे। इस युद्ध में हुए विनाश के लिए पूर्णतया जिम्मेदार यूरोपीय राज्य ही थे। युद्धोपरांत हुई

संधियों में विजेता मित्र राष्ट्रों द्वारा शांति समझौते के नाम पर धुरी राष्ट्रों के हितों की भरपूर अनदेखी की गई थी। इस संधि में घृणा, द्वेष और धुरी राष्ट्रों को कर्ज के बोझ तले दबाकर रखने की मंशा मुख्य रूप से उद्धृत हुई थी।

इस संधि ने युद्ध रूपी ज्वालामुखी को कुछ वर्षों के लिए ठंडा कर दबाया तो था, परंतु यह ज्वालामुखी अंदर-ही-अंदर सुलगता रहा। अंततः प्रथम विश्व युद्ध के 21 वर्षों की समयावधि के उपरांत यूरोप में सन् 1939 में एक बार फिर से युद्ध का आगाज हो चुका था, जिसने द्वितीय विश्व युद्ध का रूप धारण कर लिया। इस युद्ध के भड़कने के कुछ महत्त्वपूर्ण कारण निम्नलिखित थे–

- इस विश्व युद्ध का मूल कारण इतिहास की पुरानी और नई प्रवृत्तियों का संघर्ष था। 1914-18 के युद्ध के निष्कर्षों ने यूरोप में राजशाही और साम्राज्यवाद की नीतियों का अंत कर राष्ट्रीयता और लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था की मूलभूत आवश्यकताओं के आधार पर राज्यों का पुनः निर्माण किया। परंतु लोग इस नई व्यवस्था एवं राजकीय प्रणाली को सरलतापूर्वक नहीं अपना सके। युद्ध के बाद जिस प्रकार जर्मनी, ऑस्ट्रिया और इटली जैसे एकतंत्र राज्यों में लोकतंत्र की व्यवस्था कायम की गई थी, स्वाभाविक तौर पर थोड़े समय बाद इस व्यवस्था का घोर विरोध होने लगा। इस व्यवस्था के विरोध में ही नाजीवाद और फासीवाद का उदय हुआ, जिसने यूरोप में पुनः एकतंत्र की स्थापना में कामयाबी हासिल की। यह अन्य मित्र राष्ट्रों को नागवार गुजरा और वे एक बार पुनः युद्ध की ओर अग्रसर हुए।
- द्वितीय विश्व युद्ध का दूसरा कारण साम्राज्यवाद की प्रवृत्तियों का यूरोप में व्याप्त होना था; क्योंकि अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस के सामने जर्मनी, जापान और इटली के साम्राज्य बहुत छोटे रह गए थे, अतः वे स्वयं को कमजोर और हीन समझते थे। जबकि ये देश भी विज्ञान, व्यापार, सैन्य-क्षमता व शक्ति-सामर्थ्य में कमतर नहीं थे। वे भी निर्मित उत्पादों के लिए पर्याप्त बाजार चाहते थे। बढ़ती आबादी के निवास के लिए समुचित भूमि होनी चाहिए। उनका वर्चस्व भी ब्रिटेन की भाँति पूरे विश्व में होना चाहिए। उनकी कलुषित अभिलाषाएँ दूसरे विश्व युद्ध की अग्नि को गरम हवा के झोंके-सी प्रज्ज्वलित करने में मददगार साबित हुईं।
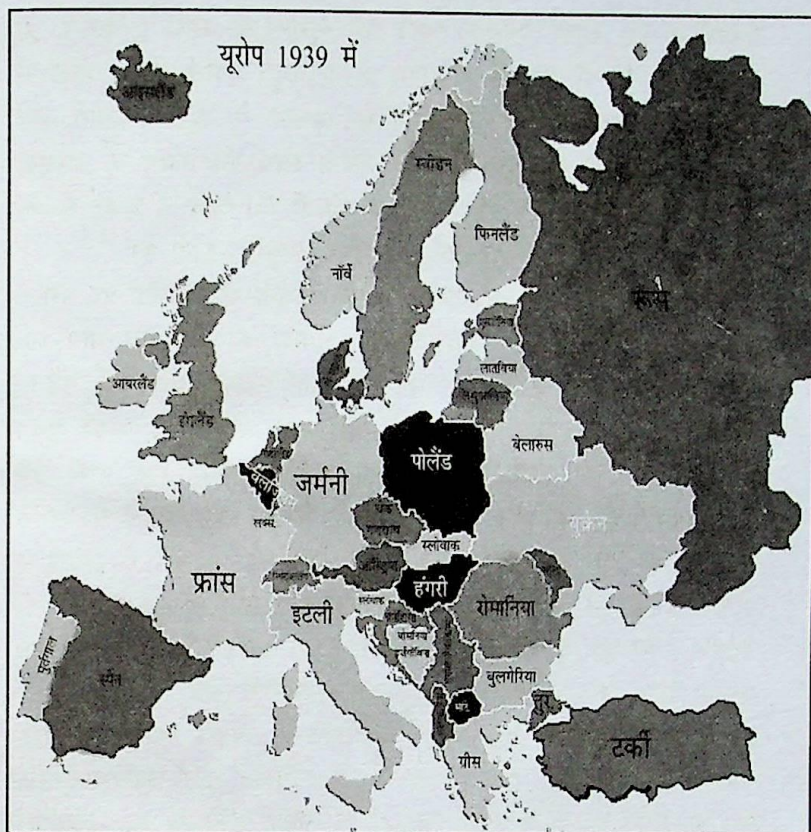
- प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर हुई वारसा की संधि प्रतिशोध की भावना से पूर्ण थी। इस संधि द्वारा जर्मनी पर अन्याय किए गए। पेरिस में हुए इस शांति समझौते ने यूरोप में जिस व्यवस्था को बनाया, वह युद्ध में पराजित देशों को पूर्णतः अस्तित्वहीन एवं कमजोर बनाने की ऐसी नीति थी, जिसके बोझ तले दबने के बाद वे पुनः खड़े न हो सके। अपने देश व साम्राज्य को सही तरीके से व्यवस्थित करना तो दूर की बात थी। इस संधि व्यवस्था से इटली और जापान भी नाखुश थे। अतः वारसा की संधि में जो भूलें हुई, उसने यूरोप की शांति व्यवस्था को अधिक दिनों तक कायम नहीं रहने दिया।
- इस संधि में जर्मनी को अपनी 65 लाख की आबादी के साथ 27 हजार वर्गमील धरती मित्र राष्ट्रों को देनी पड़ी, साथ ही उसे अपने उपनिवेशित

प्रदेशों के 10 लाख वर्गमील वाले बड़े भूभाग के साथ 1 करोड़ 20 लाख की आबादी का भी परित्याग करना पड़ा। जर्मनी कच्चे माल से समृद्ध क्षेत्रों तथा विशाल जनशक्ति के अभाव में बहुत असहाय और कमजोर हो चुका था। इस संधि से जर्मनी स्वयं को विश्व के सम्मुख बहुत अपमानित महसूस कर रहा था। जार्जी दिमित्रोव ने कहा है कि अपमानित राष्ट्र में ही फासीवाद का बीज अंकुरित होता है।

- द्वितीय विश्व युद्ध का तात्कालिक कारण जर्मनी का पोलैंड पर हमला था, जो कि हिटलर की तानाशाही के तरकश का एक तीर मात्र था। परंतु इस हमले के होने या न होने से कोई खास फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि विश्व में तानाशाही व्यवस्था धीरे-धीरे अपने पाँव पसार चुकी थी और विश्व में लोकतंत्रवाद एवं तानाशाही व्यवस्था एक साथ नहीं चल सकती थीं। कहीं-न-कहीं इन दोनों नीतियों की आपस में भिड़ंत तो होनी ही थी। इस विश्व युद्ध में दो देशों या दो गुटों में लड़ाई न होकर दो आदर्शों के मध्य संघर्ष चल रहा था। इनमें से एक आदर्श की उत्पत्ति फ्रांस की राज्य-क्रांति से हुई तो दूसरी उसकी प्रतिक्रिया के रूप में थी, जिसे बल देनेवाले मुख्य नायक मुसोलिनी और हिटलर थे।
- इस विश्व युद्ध के प्रादुर्भाव में पूँजीवाद ने अहम भूमिका निभाई, क्योंकि पूँजीपति राष्ट्रों द्वारा दुनिया के अन्य पिछड़े राष्ट्रों को राजनीतिक रूप से अपने प्रभुत्व में लाया जा रहा था, ताकि पूँजीपति देश न केवल अपना तैयार माल उनके बाजारों में बेच सकें, साथ-ही-साथ सस्ती दरों पर कच्चे माल की आपूर्ति भी कर सकें। इस कार्य को सरल व सुगम बनाने में इन पिछड़े राज्यों में लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था पर पूँजीपति वर्गों का प्रभुत्व होना ही था, जिससे वे सरकार को ऐसी नीतियाँ पालन करने के लिए मजबूर कर पाने में सक्षम होते थे, जो उनके आर्थिक हितों को जुटाने मे मददगार हों। इस दौरान जापान और इटली का अपने-अपने साम्राज्य-विस्तार की ओर झुकाव का प्रमुख कारण पूँजीवाद ही थी। यह कथन सत्य ही है कि पूँजीवाद ही साम्राज्यवाद को जन्म देता है। राज्यों की साम्राज्य-विस्तार की नीतियों से कटुता व वैमनस्यता के भाव उत्पन्न होने लगते हैं, जो युद्ध का रूप ले लेते हैं। इसी पूँजीवाद और साम्राज्यवाद ने सन् 1914-18 तक प्रथम विश्व युद्ध का आगाज किया था और इसी नीति ने पुन: 1939-1945 तक विश्व को

दूसरे विश्व युद्ध की ओर धकेल दिया। जापान के साम्राज्य-विस्तार से अमेरिका, रूस व ब्रिटेन जैसे पूँजीपति देश काफी चिंतित थे। इसी प्रकार, इटली की तीव्र गति से बढ़ती शक्ति को देखकर ब्रिटेन व फ्रांस चिंतित थे। उधर जर्मनी यूरोप व विश्व पर अपने प्रभुत्व को लेकर प्रयासरत था और पूर्वी यूरोप के कमजोर देशों को अपने अधीन करने को तत्पर था। जर्मनी के इस रूप को देखकर ब्रिटेन, फ्रांस व रूस को अपने साम्राज्य की चिंताएँ सता रही थीं।

यह पूँजीवादिता की ही देन थी कि प्रथम विश्व युद्ध के प्रारंभ होने से पूर्व अमेरिका महज 300 करोड़ डॉलर का देनदार था, परंतु युद्ध की समाप्ति के बाद वह 200 करोड़ पाउंड का महाजन बन चुका था। इस दौरान अमेरिका में अस्त्र-शस्त्र तथा भौतिक संसाधनों का उत्पादन कई गुना अधिक हो चुका था। जहाँ अमेरिका वर्ष 1920 में केवल 70 लाख मोटरगाड़ियों का निर्माण करता था, वहीं 1929 में यह संख्या तीन गुनी से भी अधिक होकर 2 करोड़ 30 लाख हो गई। उसने जो लाभ इस युद्ध से उठाए, और किसी देश ने नहीं उठाया। यूरोप के अन्य राज्य आर्थिक संकट की ओर अग्रसर होते चले गए। मात्र रूस समाजवादी व्यवस्था के माध्यम से स्वयं को मजबूत करने में सफल रहा।

रूस के कायम होते वर्चस्व को देखकर साम्राज्यवादी शक्तियाँ फिनलैंड, इस्तोनिया लातविया, लिथुआनिया तथा पोलैंड को भरपूर सहायता देकर बोल्शेविक नीतियों को दबाने में सफलता हासिल नहीं कर सके और अंततः ग्रेट ब्रिटेन को सन् 1924 में सोवियत संघ को मान्यता देने पर विवश कर दिया।

दूसरी ओर इटली के नागरिक युद्ध की अप्रत्याशित क्षति व व्यय को जबरन लादने से सड़कों पर आंदोलनरत हो गए। उसी दौरान इटली के 600 कारखानों के 5 लाख मजदूर हड़ताल पर चले गए। इस आंदोलन की हिमायत में थलसेना की एक बड़ी टुकड़ी उनके साथ हो गई। साफ था कि शासन-व्यवस्था पूँजीपतियों के हाथों से निकलकर तेजी से मजदूरों के हाथों में जा रही थी। परंतु ऐसा हो पाता, उससे ठीक पहले इटली की सोशलिस्ट पार्टी ने अपनी कुछ आर्थिक माँगें पूरी होने पर सरकार से समझौता कर लिया। इसका प्रतिफल यह हुआ कि जिन कारखानों पर मजदूरों ने अधिकार कर रखा था, उन्हें छोड़ना पड़ा और उन पर पुनः पूँजीपतियों का अधिकार हो गया।

मुसोलिनी को सत्ता मिलने के तुरंत बाद इन संगठनों को पूरी तरह तोड़

हिटलर का आकर्षण : उसे सुनने के लिए लाखों की भीड़ इकट्ठी हो जाती थी।

दिया गया। इसके बावजूद वर्ष 1921 में इटली में हुए आम चुनाव में सोशलिस्टों को 122, कम्युनिस्टों को 116 एवं मुसोलिनी की फासिस्ट पार्टी को केवल 35 जगहों से ही संतुष्ट होना पड़ा। परंतु सोशलिस्टों के साथ कम्युनिस्टों की संयुक्त सरकार बनाने का प्रयास असफल रहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि मजदूरों के बीच मुसोलिनी की तानाशाही फिर से काबिज हो गई।

जर्मन-आंदोलन भी सन् 1918 में अपने पाँव पसारने लगा था, जिसके साथ जल और थलसेनाएँ भी मजदूरों के समर्थन में आ मिली थीं। वी हैल्म्सडिन द्वारा छेड़े गए प्रथम विद्रोह का प्रसार किएल, हेंबर्ग, ब्रेमन तथा बाल्टिक महासागर तट तक हो चुका था। मजदूरों के साथ मिलकर सेना सोवियत सत्ता की स्थापना करने में सफल हुई और कैसर अपने तख्त को छोड़कर भागने पर मजबूर हो गया। 9 नवंबर, 1918 को उनका सत्ता पर अधिकार हो चुका था, जिसमें 15 लोगों की जान गई थी और सोशलिस्ट इबॉल्ट के नेतृत्व में जनतांत्रिक सरकार का गठन हुआ था। परंतु यह गठबंधन अधिक दिनों तक कायम नहीं रह पाया।

एक ओर दक्षिणपंथ के हिमायती सोशलिस्ट सरकार के नेता इबॉल्ट संसदीय लोकतंत्र की सिफारिश करते थे, तो दूसरी ओर कम्युनिस्ट नेता कार्ल लिएमनेट सशस्त्र क्रांति के बल पर मजदूरों की तानाशाही कायम करना चाहते थे। यही वैचारिक मतभेद वहाँ गृह-युद्ध का रूप लेता जा रहा था। सोशलिस्टों की इंपीरियल आर्मी ने 6 जनवरी, 1919 को कुछ दफ्तरों व अखबारों पर से कम्युनिस्टों का कब्जा हटाने के लिए गोलियों से हजारों मजदूर क्रांतिकारियों को मार गिराया। हजारों क्रांतिकारी भूमिगत हो गए।

सोशलिस्टों ने वैमार शहर में नई शासन-व्यवस्था कायम की, जिसे वैमार कांस्टीट्यूशन के नाम से जाना जाता है। वेरन फॉन लुतविथ के नेतृत्व में महज 8,000 शाही सैनिकों ने बर्लिन पर अपना अधिकार जमा लिया।

राजनीतिक अस्थिरता के कारण अराजकता एवं भ्रष्टाचार कायम होना लाजिमी था। राष्ट्र की स्थितियों को सही तरीके से व्यवस्थित कर पाने में दक्षिणपंथी समाजवादी सरकार असफल थी। इनके शासनकाल में 7 लाख से अधिक लोगों की मौत पौष्टिक आहार न मिलने की वजह से हुई। शिशु मृत्यु दर दोगुने से भी अधिक हो चुकी थी। जहाँ एक ओर वारसा की संधि का बोझ उन पर था, वहीं जर्मन शासन-व्यवस्था को सुचारु न बना पाने में असमर्थता की वजह से नागरिकों का शोषण हो रहा था। उनके लिए ऋण की प्रति घंटे 2 लाख 88 हजार मार्क की रकम अदा करना काफी कठिन साबित हो रहा था। देश की इन्हीं परिस्थितियों में नेशनल सोशलिस्ट पार्टी के झूठे नाम पर फासीवाद का उत्थान हुआ, जिसकी लुभावनी बातों पर नागरिकों ने विश्वास भी किया और जिसका नुकसान न केवल जर्मनी अपितु पूरे संसार को उठाना पड़ा।

❑

नाजियों का बढ़ता कद

"जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है, मैं देखता हूँ कि परमाणु शक्ति ने सदियों से मानवता को सँजोए रखनेवाली कोमल भावना को नष्ट कर दिया है।"

—महात्मा गांधी

जर्मनी में सन् 1923-24 में हुए चुनाव में सबसे अधिक बहुमत पानेवाली सोशलिस्ट पार्टी थी, जिसके पक्ष में कुल 60 लाख मत पड़े और कम्युनिस्ट पार्टी को 30 लाख, जबकि नाजी दल को केवल 10 लाख 90 हजार मतों से ही संतोष करना पड़ा। परंतु समय के साथ-साथ नाजियों का समर्थन बढ़ता चला गया। सन् 1930 में नाजियों को 60 लाख का बहुमत हासिल हुआ तथा 1932 के राष्ट्रपति चुनाव में उसे 1 करोड़ 30 लाख का विशाल बहुमत हासिल हुआ। इससे नाजियों की स्थिति मजबूत होती चली गई और कम्युनिस्ट की तरफदारी करनेवाली सोशलिस्ट सरकार स्वयं को बचा पाने में असमर्थ हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि फॉन पेपन के नेतृत्व में तानाशाह ने अपना आधिपत्य कायम कर लिया। पेपन सरकार ने संसदीय लोकतंत्र को कुचल दिया, अखबारों एवं अन्य संचार माध्यमों पर सेंसर तथा हड़ताल पर पाबंदी लगा दी। यहूदियों को एक-एक कर नौकरी से निकाल दिया गया, कम्युनिस्टों को कैद किया जाने लगा। इन दमनकारी नीतियों के साथ ही 30 जनवरी, 1933 को चांसलर की गद्दी हिटलर को सौंप दी गई।

हिटलर और गोएरिंग : दो उभरती जर्मन शक्तियाँ।

हिटलर की महत्त्वाकांक्षाओं को सोशलिस्टों ने काफी मजबूती दी, जिससे प्रेरित होकर उसने लोगों को उत्तेजित करनेवाली घोषणाएँ कीं—

- वह जर्मनी का खोया सम्मान और राष्ट्रीय स्वाभिमान पुन: दिलाएगा।
- वह जर्मनी को आर्थिक मजबूती के साथ-साथ एकताबद्ध करेगा।
- यदि वह ऐसा न कर सका, तो स्वयं फाँसी पर लटक जाएगा।

कम्युनिस्टों के दमन एवं सोशलिस्टों के साथ समझौते की स्थिति में आर्थिक उन्नति तथा घृणात्मक वारसा की संधि से छुटकारा दिलाने जैसे नारों से दिग्भ्रमित नागरिकों पर निरंकुश हिटलर का शासन स्थापित होता गया। हिटलर ने नाजीवादी राष्ट्रीय नीति एवं कुछ लक्ष्य निर्धारित किए—

- उसका मानना था कि लगातार शांति से देश का पतन होता है और लगातार संघर्षरत रहने से उत्थान।
- युद्ध से अलग किसी प्रकार की संधि का कोई मूल्य नहीं है।
- जर्मनी से बढ़कर किसी भी राष्ट्र को आगे नहीं जाने दिया जाएगा, चाहे इसके लिए उसे उसका नाश ही क्यों न करना पड़े।
- अपनी खोई हुई जमीन और प्रतिष्ठा लीग ऑफ नेशंस या ईश्वर से माँगने पर नहीं मिलनेवाली। हथियारों के जोर पर ही उन्हें हासिल करना होगा।
- अपनी जमीन और उसके उपनिवेश जो उससे छीन लिए गए थे, उन्हें वापस लेना हमारा मुख्य उद्‍देश्य है।

- अंतरराष्ट्रीय सीमाओं का भौगोलिक जरूरतों एवं सुरक्षा की दृष्टि से पुन: जर्मन भाषा-भाषी राज्यों को अपने अधीन करना।
- यूरोप के पूर्वी राज्यों, विशेषत: सोवियत संघ में शामिल राज्यों को अपने अधीन कर साम्राज्य-विस्तार करना।
- हिटलर का मानना था कि जो राष्ट्र अपनी नस्ल को श्रेष्ठ साबित करने में कामयाब होंगे, वे विश्व पर अपना वर्चस्व कायम कर पाएँगे।
- ब्रिटेन व इटली को अपने पक्ष में रखकर फ्रांस को मिटा देना, ताकि फ्रांस-ब्रिटेन की संधि समाप्त हो, जो जर्मनी के लिए हितकर है।
- ब्रिटेन की सहायता से यूरोपीय शक्तियों के बीच विभाजन कराना और फ्रांस पर नियंत्रण।
- जर्मनी के आस-पास के राज्यों में नाजीवाद का प्रचार-प्रसार कर वहाँ वर्चस्व कायम करना। अतिवादियों को संगठित करना एवं विरोधियों को जड़ से समाप्त करना।

यूरोप में ब्रिटेन के नेतृत्व में पूँजीवादी राष्ट्र नवनिर्मित रूस को विश्व के लिए सबसे बड़ा खतरा मानते थे, जबकि खतरनाक फासिस्ट जर्मन नस्लवादी रवैए के साथ उदित हो चुका था, उसकी चिंता किसी को नहीं थी। ब्रिटेन के हाउस ऑफ कॉमंस को संबोधित करते हुए अपने अभिभाषण में ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉयड जॉर्ज ने कहा, ''जर्मनी में नाजीवादियों की जीत हो जाने से उदारवादियों को सत्ता की प्राप्ति नहीं हो सकेगी, बल्कि वह उलटे कम्युनिस्टों के हाथ जा लगेगी। जर्मनी यूरोप के मध्य में स्थित है, अत: यदि वहाँ कम्युनिस्ट व्यवस्था कायम होती है, तो वह यूरोप की पूँजीवादी व्यवस्था को नष्ट करने का कारण बन सकती है। अत: ब्रिटेन को हिटलर एवं नाजी सरकार के साथ सहानुभूति रखनी चाहिए।''

इस फैसले के उपरांत ब्रिटेन ने जर्मनी को दिल खोलकर हथियार दिए, जिसकी बदौलत जर्मनी एक शक्तिशाली राष्ट्र बनकर सामने आया। इसी सिलसिले को आगे बढ़ाते हुए ब्रिटेन ने फ्रांस को संतुलित रख यूरोपीय समूह का गठन किया। हिटलर को फ्रांस के औद्योगिक घरानों का भी खुला समर्थन मिल रहा था। जर्मनी को निजी वित्तीय संस्था 'कमेटी डेस फोर्सेज' ने बहुत बड़ा ऋण भी दिया और 'लॉरेन आयरन एंड माइंस' से हथियार निर्माण के लिए अत्यधिक मात्रा में लौह अयस्क की आपूर्ति भी कराई। इसी दौरान अमेरिकी निजी बैंकों ने जर्मनी को ऋण के तौर पर 18 करोड़ 20 लाख
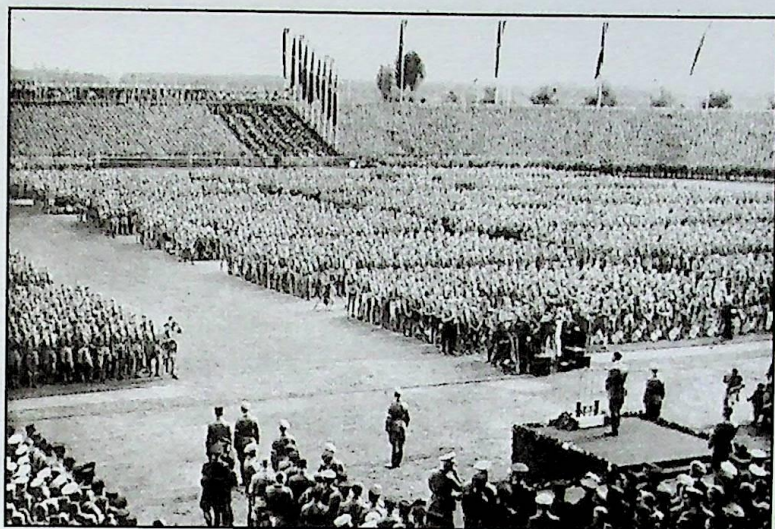
नूरेमबर्ग में नाजी पार्टी की एक सभा को संबोधित करते हिटलर।

डॉलर की रकम दी और वहाँ 100 करोड़ डॉलर का निवेश भी किया। इस प्रकार हिटलर को मिली सत्ता और सहायता ने उसकी अपनी आंतरिक इच्छा को जाहिर कर दिया। हिटलर जर्मनी के पतन का जिम्मेदार कम्युनिस्ट, ट्रेड यूनियनिस्ट एवं वैज्ञानिकों आदि को मानते हुए उन्हें दोषी करार देने लगा। उन पर जुल्म करने के बहाने ढूँढ़े जाने लगे। संसद् भवन में लगी आग का आरोप कम्युनिस्टों पर लगाकर उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया गया। हिटलर की एस.एस. वाहिनी के जरिए ट्रेड यूनियन के कार्यकर्ताओं को मौत के घाट उतारा गया और जो बच गए, उन्हें जेल की सलाखों के पीछे जीवन व्यतीत करने पर मजबूर कर दिया गया।

हिटलर की इन तानाशाही यातनाओं के डर से आइंस्टीन जैसे महान् वैज्ञानिकों को भी भागकर अमेरिका में शरण लेनी पड़ी। यूरोप के कई राष्ट्र जर्मनी के वर्चस्व को मानते हुए हिटलर की जी-हुजूरी में लग गए। समूचे विश्व पर जर्मनी का राज एवं 1,000 वर्षों तक जर्मनी पर नाजीवादी वर्चस्व की घोषणा के उपरांत हिटलर का विश्व विरोधी चेहरा संसार के सामने आया।

सन् 1919 से 1939 तक सोवियत संघ के विरोध के नाम पर एकजुट हुए यूरोप के जर्मनी एवं इटली और एशिया से जापान द्वितीय विश्व युद्ध के

नायक बने। इस दौरान रूस की समाजवादी व्यवस्था का दमन करने के लिए 14 राष्ट्रों का एक समूह बना जिसमें ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, जर्मनी, जापान, अमेरिका, चीन, सर्बिया, चेकोस्लोवाकिया, फिनलैंड, ग्रीस, पोलैंड, रूमानिया तथा तुर्की शामिल थे। इन सबने मिलकर सोवियत संघ पर एक साथ हमला किया, जो इतिहास के सबसे क्रूरतम आक्रमणों में से एक था। इस युद्ध में 70 लाख सोवियतवासियों की मौत के बावजूद युद्ध के लिए तत्पर राष्ट्रों ने सोवियत संघ की आर्थिक नाकेबंदी और जबरदस्त घेराबंदी को कायम रखा। साम्राज्यवादी देशों ने एक बार पुनः यूरोप में सन् 1926-27 के दौरान जर्मनी के साथ मिलकर लुकार्णो में जमा होकर सोवियत संघ कें विरुद्ध प्रबल अभियान चलाने का निश्चय किया। सन् 1927 में सोवियत दूतावासों पर लंदन, पेरिस एवं बर्लिन में यह कहते हुए एक साथ छापेमारी की गई कि इन दूतावासों में उनके खिलाफ षड्यंत्र रचे जाते हैं; परंतु वहाँ ऐसा कोई सबूत नहीं मिला, जिससे उन्हें दोषी ठहराया जा सके। सोवियत संघ से निर्वासित सामंत एवं पूँजीपतियों ने अपने ही देश के विरोध में जाते हुए इन अभियानों को भरपूर सहयोग दिया। परंतु होनी को कुछ और ही मंजूर था। सन् 1930 में आए आर्थिक संकट ने सारे साम्राज्यवादी देशों की आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर कर दी कि वे युद्ध के विषय में सोच भी नहीं सकते थे। इस संकट ने बड़े-बड़े बैंकों में ताले लगवा दिए। कल-कारखानों को ठप करा दिया। ऐसी तमाम परिस्थितियाँ द्वितीय विश्व युद्ध की भूमि तैयार करने में मददगार साबित हुईं।

❑

महायुद्ध की तैयारी

"जहाँ पर मनुष्य अपनी-अपनी ध्वजा हाथ में लेकर परस्पर युद्ध करने के लिए इकट्ठे होते हैं, वहाँ किसी का भी कुछ कल्याण नहीं होता।"

—ऋग्वेद

यूरोप में फासिस्ट और नाजी शक्तियों के अभ्युदय के उपरांत यह स्पष्ट हो चुका था कि वारसा की संधि पर अब यूरोप की शांति-व्यवस्था अधिक समय के लिए स्थिर नहीं रह सकती। प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत जिस राष्ट्र संघ का निर्माण शांति व्यवस्था को कायम रखने के लिए किया गया था, वह अब बहुत कमजोर हो चुका था। यूरोप के राज्य साम्राज्य-विस्तार में लगे हुए थे। उन्हें राष्ट्र संघ की जरा परवाह नहीं थी। अब यूरोप के अन्य राज्यों के पास अपनी सुरक्षा स्वयं करने के सिवा कोई उपाय नहीं था।

उनके पास सुरक्षा को लेकर दो उपाय थे। पहला यह कि वे अपनी सैन्य-क्षमता बढ़ाएँ, जनता को सैन्य शिक्षा देकर युद्ध की स्थिति से निपटने के लिए प्रशिक्षित करें, नए-नए अस्त्र-शस्त्रों की संख्या बढ़ाएँ, युद्ध-सामग्री इकट्ठा करें। दूसरा यह था कि ये आपस में ऐसे गुट का निर्माण करें कि यदि उनमें से किसी एक देश कि सुरक्षा पर खतरा मँडराने लगे तो दूसरे राज्य साथ दें।

मैगिनोट लाइन

प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत निरस्त्रीकरण को लेकर राष्ट्र संघ ने जो प्रयत्न किए थे, वे धरे रह गए। उनके द्वारा किए गए अनेक सम्मेलनों का कोई सकारात्मक परिणाम निकलकर सामने नहीं आया। निरस्त्रीकरण के विपरीत यूरोपीय राज्यों में कुछ राज्य युद्ध की आशंका से ग्रस्त हो अस्त्र और शस्त्रों की होड़ में लग गए तो कुछ साम्राज्य-विस्तार हेतु सैनिकों की संख्या बढ़ाने में लग गए। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान जर्मनी द्वारा बेल्जियम और फ्रांस जैसे राज्यों की सीमाओं में सरलता से प्रवेश कर उन पर अधिकार जमा लेना उनके लिए चिंता का विषय बना हुआ था। अतः भविष्य के हमले से बचाव के लिए उन्होंने जबरदस्त किलेबंदी की। फ्रांस की उत्तरी सीमा पर करोड़ों रुपए की लागत से शृंखलाबद्ध तरीके से किलों का निर्माण किया गया, जिसे 'मैगिनोट लाइन' के नाम से जाना जाता है। फ्रांस द्वारा निर्मित यह सुरक्षा घेरा स्विट्जरलैंड की सीमा क्षेत्र पर वास्ल नगर से आरंभ होकर जर्मनी के साथ लगती इंग्लिश चैनल के तट तक डनकिर्क की सीमा को सुरक्षित रखता था। इन किलेबंदियों के दौरान बीच में अनेक छोटी-छोटी पहाड़ियाँ मिलीं, जिन पर सेना के इंजीनियरों ने अपनी कुशल कारीगरी का नमूना पेश

मैगिनोट लाइन के नीचे निर्मित एक किले का भीतरी हिस्सा।

करते हुए विशेष किलों का निर्माण किया। उन्होंने जमीन की सतह के नीचे तकरीबन 150 फीट गहराई तक विशाल किलों का निर्माण किया। इनमें सैनिकों के निवास एवं खाद्य पदार्थ इत्यादि की समुचित व्यवस्था थी। इनके अंदर बड़ी-बड़ी पलटनें रह सकती थीं। सड़कों व बिजली की व्यवस्था भी पर्याप्त थी। इन किलों में बड़ी-बड़ी तोपें एवं अन्य युद्ध-सामग्री बड़ी तादाद में एकत्रित की जा चुकी थी। जमीन के अंदर बड़े-बड़े अस्पतालों का भी निर्माण किया गया था, इन दुर्गों में सैनिक छावनियों के बारे में कोई सोच भी नहीं सकता था। जमीन के ऊपरी हिस्से को देखने पर वहाँ केवल काँटेदार तार व छोटे-छोटे टीले ही दिखाई पड़ते थे। यदि शत्रु किसी प्रकार उसके ऊपर के प्रदेशों पर अपना अधिकार कर भी लेता तो वे जमीन के अंदर रहकर महीनों युद्ध कर सकने में सक्षम थे। उन किलों की दीवारें इतनी मजबूत थीं कि उन्हें तोपों एवं बमों के हमलों से भी नहीं तोड़ा जा सकता था। वे लड़ाई व सुरक्षा की दृष्टि से सुरक्षित थे। ऐसे दुर्गों का निर्माण यूरोप के अन्य देशों बेल्जियम, चेकोस्लोवाकिया व फिनलैंड ने भी किया। सन् 1914-18 के युद्ध में खाइयों व खंदकों में बैठकर लड़ाई करने के तरीके को असुरक्षित व अधिक घातक मानते हुए इंजीनियरों ने मैगिनोट लाइन का यह किला रूपी सुरक्षा घेरा तैयार किया।

सीजफ्रीड लाइन

फ्रांस की अपनी सुरक्षा के लिए मैगिनोट लाइन के निर्माण को देखते हुए जर्मनी में हिटलर ने ठीक उसके समानांतर शृंखलाबद्ध किलेबंदी करवा डाली, जिसे 'सीजफ्रीड लाइन' का नाम दिया गया। जर्मनी और फ्रांस द्वारा निर्मित सीजफ्रीड एवं मैगिनोट लाइन के बीच का अंतर 3 से 10 मील के बीच था। इन प्रदेशों में कोई निवास नहीं करता था। सुरक्षा के लिए हजारों एकड़ जमीन को काँटेदार तारों एवं बारूदी सुरंगों से पाट दिया गया था, ताकि दुश्मन देश के टैंक अंदर न घुस पाएँ।

युद्ध को आतुर हिटलर

साम्राज्यवादी राष्ट्रों द्वारा समाजवादियों के दमन के नाम पर हिटलर को मिली सहायता से वह शक्तिशाली हो चुका था। हिटलर को लगता था कि

सीजफ्रीड लाइन

जब तक वह वारसा संधि के अन्याय का बदला नहीं ले लेता, तब तक जर्मनी की समुचित उन्नति संभव नहीं है। अत: उसने वारसा संधि के नियमों को ठुकरा दिया। हिटलर का मानना था कि इन सब यातनाओं से मुक्ति का एकमात्र विकल्प युद्ध ही है। इन्हीं विचारों के साथ वह युद्ध की तैयारी में जुट गया था। वह जानता था कि युद्ध में विजय के लिए जर्मनी की आर्थिक स्थिति उन्नत होनी चाहिए। इसलिए उसने कृषि उत्पादनों की ओर विशेष ध्यान दिया, ताकि अधिक-से-अधिक पैदावार की जा सके और देश को बाहर से खाद्य सामग्री न खरीदनी पड़े। जिस आवश्यक सामग्री का उत्पादन जर्मनी में नहीं हो पा रहा था, उसे विज्ञान की सहायता से उन्नत किया गया; जैसे—रबड़, कपास, पेट्रोल जैसी कई आवश्यक वस्तुएँ जर्मनी में नहीं होती थीं। हिटलर के आदेशानुसार जर्मनी के वैज्ञानिकों का एक पूरा दल रबड़ आदि चीजों के स्थान पर प्रयोग होने वाली वस्तुओं के निर्माण में जी-जान से जुट गया। अंतत: उन्हें सफलता प्राप्त हुई और इन्हीं वैज्ञानिक सफलताओं की बदौलत जर्मनी को हिटलर ने विश्व युद्ध के समय तक इस मजबूत स्थिति में ला दिया कि विदेशी व्यापार बंद हो जाने पर भी उसे किसी विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। हिटलर ने सर्वाधिक ध्यान युद्ध-सामग्री की तैयारी पर दिया। हथियारों को लेकर हिटलर की महत्त्वाकांक्षाएँ इतनी तीव्र थीं कि वह अपने भाषणों में कहता था कि जर्मनी के लिए रोटी और मक्खन की अपेक्षा हथियारों एवं हथगोलों की जरूरत कहीं अधिक है। द्वितीय विश्व युद्ध के आरंभ में जर्मनी के पास 10,000 से अधिक जंगी हवाई जहाज एवं अनगिनत टैंक मौजूद थे। उधर मित्र राष्ट्रों में ब्रिटेन, फ्रांस व अन्य देशों के पास कुल मिलाकर भी इतनी बड़ी संख्या में जहाज या टैंक मौजूद नहीं थे। सेना के गमन की सुविधा को देखते हुए उसने यातायात के साधनों पर भी विशेष ध्यान दिया, ताकि युद्ध के समय सेना को एक स्थान से दूसरे स्थान तक सरलतापूर्वक एवं समय की बचत के साथ पहुँचाया जा सके तथा युद्ध में प्रयोग होनेवाले सामान एवं सेना के लिए खाद्य सामग्री भी समय पर उपलब्ध कराई जा सके। यातायात के उन्नत साधनों एवं सड़कों का असामान्य रूप से चौड़ा होना इसकी विशेषता थी। यूरोप के अन्य किसी भी देश में ऐसी उन्नत यातायात-व्यवस्था नहीं थी। इन सब बातों के साथ-साथ हिटलर बड़ी तादाद में सैनिक भरती में लगा हुआ था। इसके साथ आम जनता को सैनिक शिक्षा देने की ओर विशेष ध्यान दिया गया। हिटलर के इन कार्यों की

लोकप्रियता जर्मनी में इतनी बढ़ गई थी कि वहाँ के छोटे-छोटे बच्चे भी सैनिकों जैसा व्यवहार करने लगे थे और स्वयं युद्ध में हाथ बँटाने के लिए लोगों को प्रशिक्षित करने में लगे हुए थे।

यूरोप के अन्य देशों का युद्धोन्माद

जर्मनी को वारसा जैसी संधि से मिटाने के प्रयास के बावजूद फ्रांस को जर्मनी के आक्रमण का भय सताता रहा था। इसी भय से सुरक्षा के लिए सन् 1919 के बाद से ही वह युद्ध-सामग्री की समुचित व्यवस्था में जुटा रहा। फ्रांस सन् 1931 तक वायुसेना के मामले में विश्व में प्रथम स्थान रखता था। उसकी बराबरी अमेरिका, ब्रिटेन, जापान और इटली जैसे समुन्नत राष्ट्र भी नहीं कर पाते थे। वायु सेना की क्षमता में ब्रिटेन पाँचवें स्थान पर था। फ्रांस न केवल वायु सेना, अपितु सैनिक क्षमता में भी ब्रिटेन से बहुत आगे था। ब्रिटेन ने अपनी सैनिक क्षमता के विकास के लिए सन् 1926-27 में 175 करोड़ रुपए खर्च किए। वहीं अगले वर्ष इस राशि में वृद्धि के बजाय उसने कमी कर दी। सन् 1930-31 में ब्रिटेन द्वारा सैनिक क्षमता पर खर्च की जानेवाली रकम घटकर 150 करोड़ रुपए रह गई। इधर जर्मनी सैनिक क्षमता में सबसे आगे पहुँच चुका था। सन् 1935 तक वह 1,500 विमान जहाज प्रतिवर्ष तैयार करने लगा था; जबकि ब्रिटेन ने अब तक केवल 100 विमान तैयार किए थे। सन् 1936 में ब्रिटेन का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और वह इसे पूरा करने में जुट गया। सैनिक खर्च बढ़ाया गया। सैनिक खर्चों को आम करों से पूरा न कर पाने की स्थिति में उसने राष्ट्रीय ऋण द्वारा इन खर्चों की पूर्ति की। इस प्रकार सेना पर कुल खर्च की रकम बढ़ती रही। ब्रिटेन ने सेना पर खर्च को पिछले 6 वर्षों के बाद सन् 1937-38 में लगभग दोगुना यानी 320 करोड़ कर दिया। अगले वर्ष पुनः युद्ध की संभावनाओं के कारण इस रकम को 600 करोड़ कर दिया गया तथा 1939-40 में इन खर्चों में और भी इजाफा करते हुए 720 करोड़ कर दिया गया।

यूरोप के अन्य देश भी ब्रिटेन, फ्रांस व जर्मनी की भाँति अपनी सैन्य-शक्तियों को बढ़ाने में जुटे थे। सारे देश जान चुके थे कि युद्ध कभी भी आरंभ हो सकता है और तैयार रहने में ही सुरक्षा एवं हित है।

❑

कूटनीतिक गुटबंदियाँ

"युद्ध चाहे जितना भी आवश्यक अथवा न्यायोचित हो, वह अपराध ही कहलाता है। इसकी असलियत जाननी हो तो पैदल सेना और मृतकों से पूछो।"

—अर्नेस्ट हेमिंग्वे

फ्रांस और रूस की गुटबंदी

प्रथम विश्व युद्ध के कुछ वर्षों बाद ही जर्मनी का एक शक्तिशाली राष्ट्र बनकर उभरना यूरोपीय राज्यों के लिए चिंता का सबब बन गया था। सन् 1919 की वारसा की संधि से न सिर्फ जर्मनी, बल्कि मित्र राष्ट्र जापान और इटली भी नाखुश थे। वे इस संधि की उपेक्षा करते हुए साम्राज्य-विस्तार हेतु अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण में लगे रहे। जर्मनी की बढ़ती ताकत से यूरोप के राष्ट्र परेशानी महसूस कर रहे थे। पूर्व में संयुक्त राष्ट्र संघ और पश्चिम में फ्रांस पर इसका आतंक कुछ अधिक ही गहरा था। दोनों का यह मानना था कि जर्मनी की इस ताकत का मुकाबला साथ मिलकर किया जाए। इसी विचार के साथ फ्रांस ने रूस को राष्ट्र संघ में शामिल करने का प्रयत्न किया, परंतु उसे यह जर्मनी से अपनी सुरक्षा का स्थायी और सक्षम तरीका नहीं लगा। इससे चिंतित रूस ने फ्रांस के साथ समझौता करने की सोची। समझौते के अनुसार, दोनों में से किसी पर भी यदि जर्मनी आक्रमण करता है तो दूसरा देश उसकी सहायता के लिए आगे आ खड़ा होगा। अपनी सुरक्षा को पुख्ता करने के लिए

उन्होंने इसमें ब्रिटेन को भी साथ रखने की पेशकश करते हुए कहा कि इसमें रूस, फ्रांस और ब्रिटेन भी साथ हों और किसी एक देश पर हुए हमले की स्थिति में अन्य देश उसकी सहायतार्थ आगे आएँ। परंतु उस समय ब्रिटेन का झुकाव जर्मनी की ओर कुछ अधिक था। इसका कारण था, ब्रिटिश राजनेताओं की वह विचारधारा कि 'यूरोप में राजशाही को संतुलित रखने के लिए जर्मनी का शक्तिशाली होना जरूरी है।' लेकिन फ्रांस और रूस द्वारा पेश समझौते के प्रस्ताव की कई बातों पर जर्मनी ने पूर्ण असहमति प्रकट कर दी, फलत: ब्रिटेन भी इस समझौते को नकार गया। अंतत: फ्रांस और रूस ने मिलकर मई 1935 में इस समझौते पर हस्ताक्षर किए। इस समझौते में फ्रांस के साथ पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया, और यूगोस्लाविया पूर्व से ही साथ थे। अब रूस के मिल जाने से यह और शक्तिशाली हो चुका था। ये सारे देश यूरोप में बढ़ती नाजी शक्ति का मुकाबला करने के लिए वचनबद्ध थे।

फ्रांस-जर्मनी समझौता

युद्ध के लक्षणों को देख यूरोपीय देशों की अगुवाई में गुटों का निर्माण हो रहा था। सन् 1936 तक विश्व लगभग दो गुटों में बँट चुका था। एक गुट का अगुआ जर्मनी था, दूसरे का फ्रांस। वारसा की संधि पर जर्मनी के साथ जापान व इटली भी गहरा असंतोष प्रकट करते हुए संधि का खुला विरोध कर रहे थे। ये देश फासीवाद के समर्थक थे। इन देशों में एक ही पार्टी या समूह का पूर्णत: वर्चस्व कायम था और ये अपने साम्राज्य-विस्तार को लेकर काफी चिंतित थे। इसके विपरीत वारसा की संधि से फ्रांस, चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड, ब्रिटेन इत्यादि राष्ट्रों को अत्यधिक लाभ हुआ था। पेरिस शांति समझौते में बने नियमों को स्थापित रखने में ही इनका लाभ था। ये राष्ट्र लोकतंत्र के पक्षधर थे। इन दोनों से भिन्न रूस में कम्युनिस्ट शासन-व्यवस्था कायम होने की वजह से उसका सामाजिक व आर्थिक ढाँचा लोकतांत्रिक ढाँचों से अलग था। परंतु जर्मनी, जापान व इटली की फासीवादी शासन-व्यवस्था का यूरोप में कायम होना रूस के लिए हानिप्रद था। इसलिए इनका घोर विरोध प्रकट करते हुए वह फ्रांस व उसके सहयोगी राष्ट्रों के गुट के साथ जा मिला। अमेरिका और ब्रिटेन जैसे शक्तिशाली राज्य 1936 के अंत तक इस तरह के गुटों से स्वयं को बचाते रहे। परंतु ब्रिटेन के लिए अधिक समय तक इनसे बच पाना

संभव नहीं हो सका। सन् 1936-37 में ही ऐसा प्रतीत होने लगा था कि यूरोप में युद्ध अवश्यंभावी हो चुका है। स्पेन में फ्रांको का बढ़ता वर्चस्व यूरोप की गतिविधियों को दिग्भ्रमित कर रहा था। यूरोप की कलहों से ब्रिटेन स्वयं को दूर रखना चाहता था, इसलिए वह तटस्थ बना रहा। ब्रिटेन की स्थिति को देखते हुए फ्रांसीसी प्रधानमंत्री ब्लम ने तटस्थता की नीति को ही अपनाया। 1937-38 तक ब्रिटेन ने स्वयं को गुटबंदियों से बचाने की पूर्ण कोशिश की, परंतु जर्मनी व इटली की फासीवादी नीतियाँ विकराल रूप धारण करती जा रही थीं, जिसे देख ब्रिटेन का झुकाव फ्रांस की तरफ होना स्वाभाविक था। इटली के एबीसिनिया फतह के उपरांत उसकी आकांक्षाएँ बढ़ गई थीं। उसकी इच्छा थी कि पूर्वी भूमध्य सागर पर पूर्णतया वर्चस्व के साथ-साथ स्वेज नहर पर भी उसका प्रभुत्व कायम हो। इटली की इन महत्त्वाकांक्षाओं को सहन कर पाना ब्रिटेन के लिए आसान नहीं था। ब्रिटेन यह कदापि स्वीकार नहीं कर सकता था कि स्वेज नहर व भूमध्य सागर पर किसी दूसरे देश का आधिपत्य स्थापित हो जाए। अत: ब्रिटेन इटली का घोर विरोधी बन गया। इस दरम्यान जर्मनी ने ऑस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया पर कब्जा कर लिया था।

इन परिस्थितियों में ब्रिटेन और फ्रांस का कर्तव्य था कि पेरिस शांति समझौते के बाद चेकोस्लोवाकिया पर हुए आक्रमण का विरोध करते हुए उसे पूर्ण सहायता प्रदान करें; परंतु ऐसा नहीं हुआ। ब्रिटेन ने अपनी तटस्थता बरकरार रखते हुए मध्य यूरोप के झगड़ों में न पड़ना कायम रखा। साथ ही फ्रांस को अपना अनुसरण करने के लिए प्रेरित किया। फलस्वरूप जर्मनी व इटली साम्राज्य-विस्तार करते चले गए।

ब्रिटेन की प्रतिक्रिया

जर्मनी की साम्राज्य-विस्तार की लालसा को देख ब्रिटेन अपनी तटस्थता की नीति पर दुविधा में पड़ गया, क्योंकि ऑस्ट्रिया एवं चेकोस्लोवाकिया पर विजय के बाद जर्मनी लिथुआनिया और पोलैंड पर वर्चस्व स्थापित करने के लिए मचलने लगा था। मजबूरन ब्रिटेन को फ्रांस की ओर मैत्री का हाथ बढ़ाना पड़ा।

इसी बीच हिटलर ने लिथुआनिया को अल्टीमेटम भेज मेमल बंदरगाह एवं उसके आस-पास के इलाकों को जर्मनी को बिना शर्त सौंपने को कहा।

ये इलाके 21 मई, 1939 को जर्मनी के अधीन कर लिये गए। इन्हें जर्मन सेना की छावनी में तब्दील कर दिया गया और बाल्टिक सागर के किनारे स्थित इस बंदरगाह की मजबूत किलेबंदी प्रारंभ कर दी गई। मेमल पर अधिकार के बाद हिटलर पोलैंड को भी प्रभाव में लेना चाहता था। इसी इरादे से उसने पोलैंड सरकार को डॉसिंग बंदरगाह जर्मनी को सौंपने का प्रस्ताव भेजा। साथ ही कहा कि पोलैंड के समुद्र तट तक जानेवाले गलियारे का एक प्रदेश, जिसके कारण जर्मनी दो भागों में बँटा हुआ था, जर्मनी को सौंप दिया जाए। जिससे जर्मनी के दोनों भाग आपस में मिल जाएँ। परंतु हिटलर के इस आदेशात्मक प्रस्ताव को पोलैंड सरकार ने मानने से इनकार कर दिया।

हिटलर के लगातार बदलते बयानों एवं छली व्यवहार के कारण ब्रिटेन को उस पर भरोसा नहीं रह गया था। ब्रिटेन जान गया था कि हिटलर की साम्राज्य-विस्तार की लालसा ऑस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया पर अपना अधिकार कायम कर नहीं रुकेगी, वह पोलैंड को भी अपने कब्जे में अवश्य लेगा। ब्रिटेन ने अब अपनी स्थिति स्पष्ट करना उचित समझा। अत: 31 मार्च, 1939 को उसने घोषणा की कि पोलैंड की स्वतंत्र सत्ता को यदि किसी प्रकार का खतरा होता है, तो ब्रिटेन अपनी पूरी शक्ति के साथ उसकी सहायता करेगा। ज्ञात हो कि फ्रांस पूर्व में ही पोलैंड को सहायता प्रदान करने का वचन दे चुका था। उधर जर्मनी की देखा-देखी इटली ईगियन सागर को पार कर अपनी शक्ति बढ़ाने में लगा था। इस क्रम में वह अल्बानिया के बाद रूमानिया और ग्रीस पर अधिकार के लिए आगे बढ़ चुका था। इटली को रोकने के लिए ब्रिटेन ने 13 अप्रैल, 1939 को रूमानिया और ग्रीस को भी पूर्ण शक्ति से सुरक्षा सहायता प्रदान करने का वादा कर दिया। अब स्थिति स्पष्ट थी कि यदि इटली या जर्मनी दोनों में से किसी ने भी किसी राष्ट्र के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई की, तो उसे ब्रिटेन से भी दो-दो हाथ करने को तत्पर रहना होगा।

युद्ध के प्रति रूस की प्रतिक्रिया

ब्रिटेन और फ्रांस ने पोलैंड व रूमानिया को सुरक्षा की गारंटी तो दे दी पर समस्या थी कि इन राज्यों को जल एवं थलसेना की सहायता पहुँचा पाना ब्रिटेन व फ्रांस के लिए असंभव था; क्योंकि उनकी भौगोलिक दशा विपरीत

थी। उनको वायुमार्ग द्वारा ही सैनिक सहायता प्रदान की जा सकती थी जबकि ग्रीस को जल-मार्ग से भी सैनिक सहायता दी जा सकती थी। इन परिस्थितियों में केवल रूस ही जल्द-से-जल्द इन राज्यों को सैनिक सहायता प्रदान कर सकता था, यदि वह भी ब्रिटेन और फ्रांस के साथ इस संधि में शामिल हो। तब फ्रांस के रूस के साथ पूर्व से अच्छे संबंध थे। दोनों को हिटलर की नाजी व्यवस्था से डर था। इन दोनों राज्यों में वर्ष 1935 में एक संधि हो चुकी थी कि इनमें से किसी पर भी अन्य राष्ट्र द्वारा आक्रमण की स्थिति में वे एक-दूसरे की पूर्ण सहायता करेंगे। फ्रांस ने इस गारंटी संधि में रूस को भी शामिल करने की कोशिश की। इसका समर्थन ब्रिटेन भी कर रहा था। ब्रिटेन ने 15 अप्रैल, 1939 को रूस के समक्ष एक प्रश्न रखा कि क्या रूस पोलैंड और रूमानिया की रक्षा-गारंटी में शामिल होगा? जिसके जवाब में रूस ने कहा कि ऐसी स्थिति में पोलैंड और रूमानिया की रक्षा का पूरा दायित्व उन पर ही पड़ेगा। इसे गुटबंदी ही समझ जाएगा, जिसका परिणाम यह होगा कि यूरोप के संपूर्ण राजनीतिक प्रकरण काफी पेचीदे होते चले जाएँगे। अत: इससे अच्छा तो यह होगा कि रूस, फ्रांस और ब्रिटेन एक ऐसा समझौता करें, जिसमें न केवल इन दो राष्ट्रों को, बल्कि अन्य छोटे देशों को भी इस प्रकार की सुरक्षा प्रदान की जा सके। इसमें रूस का विशेष जोर था कि लिथुआनिया, लैटिविया और एस्थोनिया के साथ-साथ काला सागर के पास के छोटे देशों की भी सुरक्षा-गारंटी ली जाए। इस प्रस्ताव को ब्रिटेन ने नामंजूर कर दिया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि रूस काला सागर के तटवर्ती क्षेत्रों को अपने अधीन करने की मंशा रखता है, इसलिए उसने ऐसे समझौते की बात की है।

जर्मनी के साथ रूस की संधि

बाल्टिक और काला सागर के मुद्दे को लेकर ब्रिटेन और रूस के रवैए को देखते हुए, जर्मनी ने मौके का फायदा उठाया और हिटलर ने बाल्टिक सागर के तटवर्ती देशों लिथुआनिया, लैटिविया, एस्थोनिया और फिनलैंड को इस बात का विश्वास दिलाया कि जर्मनी से उनकी स्वाधीनता को कोई खतरा नहीं। जर्मनी ने उनके समक्ष एक ऐसा संधि-प्रस्ताव पेश करने की बात कही, जिसके अंतर्गत यह शर्त होगी कि वह उन पर आक्रमण नहीं करेगा। इसी प्रकार के संधि-प्रस्ताव को लेकर जर्मन विदेश मंत्री रीबन ट्रॉप अगस्त 1939

में रूस गए, ताकि सोवियत संघ को भी इस अनाक्रमण संधि में शामिल किया जा सके। ब्रिटेन के व्यवहार से रूस को लगा था कि उसके साथ किसी प्रकार की संधि होना मुश्किल था। इससे उसका रूस के प्रति संदेहास्पद रवैया प्रकट हो रहा था। ब्रिटिश सरकार व उसके नागरिकों का मानना था कि रूस की कम्युनिस्ट सरकार यूरोप की शांति के लिए बाधा साबित हो सकती थी।

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चेंबरलेन का मानना था कि हिटलर जो कुछ कर रहा था, वह बहुत गलत नहीं था। उससे यूरोप में शक्ति-संतुलन स्थापित रखने में मदद मिलेगी। ब्रिटेन को लगता था कि मध्य यूरोप में स्थित जर्मनी ही रूस के कम्युनिस्ट खतरे से पश्चिम की रक्षा कर सकता था। अत: ब्रिटिश सरकार रूस के साथ कोई समझौता नहीं करना चाहती थी। इसका सीधा लाभ जर्मनी ने उठाते हुए रूस के साथ 23 अगस्त, 1939 को संधि कर ली। इस संधि के अनुसार यह तय हुआ कि दोनों देश एक-दूसरे पर आक्रमण नहीं करेंगे। इस संधि के बाद जर्मनी पूर्ण आश्वस्त हो गया कि यदि उसने पोलैंड पर हमला किया तो कोई अड़चन नहीं आएगी। अब जर्मनी अपनी पूर्व की सीमाओं को सुरक्षित मान चुका था।

ब्रिटिश प्रधानमंत्री चेंबरलेन ने पोलैंड की समस्या को लेकर शांति-वार्त्ता के लिए हिटलर को पत्र लिखा कि पोलैंड की समस्या को बातचीत के जरिए सुलझाया जाए। चेंबरलेन के आग्रह पर हिटलर 28 अगस्त, 1939 को पोलैंड से बातचीत के लिए तैयार हो गया; परंतु उसने पोलैंड के प्रतिनिधियों को बर्लिन पहुँचने के लिए मात्र दो दिनों का समय दिया, जो कि असंभव था, क्योंकि इतने कम समय में पूर्ण अधिकारों के साथ पोलैंड प्रतिनिधि बर्लिन नहीं पहुँच सकते थे। अब यह स्पष्ट हो गया था कि जर्मनी पोलैंड पर आक्रमण के लिए पूर्णतया तैयार था। ऐसी स्थिति में ब्रिटेन और फ्रांस पोलैंड की सहायता करने के लिए प्रतिबद्ध थे। किंतु तब रूस उनके साथ नहीं था, जिसका लाभ जर्मनी को सीधे तौर पर पहुँचना तय था।

❑

द्वितीय विश्व युद्ध का शंखनाद

"हिंसा अक्षम के लिए आखिरी गढ़ है।"

—इसाक एसिमोव

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद मित्र राष्ट्रों और धुरी राष्ट्रों के बीच शांति-वार्त्ता हुई। शांति-वार्त्ता के दौरान धुरी राष्ट्रों के नेतृत्वकर्ता जर्मनी पर चारों ओर से शिकंजा कसा गया। पराजित राष्ट्रों को शांति-वार्त्ता में अपेक्षित परिणाम नहीं मिले। विजयी मित्र राष्ट्रों की दमनकारी नीति के कारण पराजित राष्ट्रों में बदले की भावना का विस्तार होने लगा।

संपूर्ण विश्व आर्थिक मंदी झेल रहा था, शांति सम्मेलनों में निरस्त्रीकरण की नीति स्थापित नहीं हो पाई थी। जर्मनी को चारों तरफ से दबाया जा रहा था। जापान अपनी विस्तारवादी नीति को सशक्त ढंग से रख रहा था। फलत: अंतरराष्ट्रीय अराजकता का प्रसार होने लगा और शांति-स्थापना में बाधाएँ आने लगीं। इस प्रकार, प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के 21 वर्षों बाद 1 सितंबर, 1939 को संपूर्ण विश्व पुन: युद्ध की अग्नि में कूद गया।

पोलैंड पर आक्रमण

जर्मन सेनाध्यक्ष वाल्थर ब्राखित्स के नेतृत्व में जर्मन सेना ने पोलैंड पर पूर्णत:सुनियोजित तरीके से 1 सितंबर, 1939 को आक्रमण किया। टैंकों,

1 सितंबर, 1939 : जर्मन सैनिक पोलैंड की सीमा-रेखा को ध्वस्त करते हुए।

मोटरगाड़ियों, भारी तोपों और विमानभेदी तोपों से सुसज्जित जर्मन सेना के सामने पोलैंड की स्थिति किसी तिनके से अधिक नहीं थी। जर्मनी के बीचोबीच डॉसिंग बंदरगाह तक पहुँचने के लिए पोलैंड को जो रास्ता मिला था, जर्मन सेनाओं ने उस पर उत्तर और दक्षिण दोनों ओर से आक्रमण कर दिया। आकाश मार्ग से बम बरसाए गए। हवाई अड्डों, रेलवे स्टेशनों, सैनिक विमानों, सड़कों, पुलों और अन्य आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण स्थानों पर बमबारी की गई। जर्मनी की तीनों सेनाएँ पोलैंड का विध्वंस कर रही थीं। हालाँकि पोलैंड के सैनिकों की संख्या 10 लाख से ऊपर थी, परंतु उनके पास नए एवं अत्याधुनिक हथियारों की कमी थी। सहायता के लिए तत्पर ब्रिटेन और फ्रांस वायु हमलों के कारण उस तक सहायता नहीं पहुँचा पा रहे थे। 1 सितंबर को जब यह युद्ध शुरू हुआ तो लंदन और पेरिस से जर्मनी को अल्टीमेटम भेजा गया कि वह अविलंब अपनी सेना वापस बुला ले; परंतु अल्टीमेटम न मानते हुए जर्मन सेना का बेखौफ हमला जारी रहा। पहले सप्ताह में ही जर्मनी का साइलीशिया पर कब्जा हो गया। ऐसी स्थिति में फ्रांस और ब्रिटेन ने जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। पोलैंड की सहायता के दो तरीके थे। पहला, हवाई जहाजों से जर्मनी पर हमला और दूसरा पश्चिमी सीमा पर

लड़ाई छेड़ दी जाए। पोलैंड को भी उनसे जल्दी ही जर्मनी पर कड़े हमले की उम्मीद थी, ताकि जर्मनी उनके हमले का जवाब देने में लग जाए और उस पर आक्रमण की धार कम हो जाए; परंतु ऐसा नहीं हुआ। फ्रांस और ब्रिटेन के हमले इतने तीव्र नहीं थे, जिससे जर्मनी की सेना को पोलैंड से अपना ध्यान हटाना पड़े।

जर्मन सेनाएँ वारसा (पोलैंड की राजधानी) पहुँचकर उसे तहस-नहस करने में जुटी थीं। इसी बीच 17 सितंबर को रूसी सेना ने भी पोलैंड पर आक्रमण कर दिया। इस हमले का कारण युक्रेनिया पर रूसी आधिपत्य स्थापित करना था। रूस जानता था कि पोलैंड पर जर्मन नियंत्रण के बाद युक्रेनिया का प्रदेश जीतना उसके लिए आसान नहीं होगा। रूस को हमेशा से ही लगता था कि युक्रेनिया का जो प्रदेश पोलैंड के अधीन है, वह उसके अधीन होना चाहिए। सिर्फ पाँच दिनों में रूसी सेना ने इस संपूर्ण भूभाग पर अधिकार कर लिया। उधर जर्मन सेना वारसा से आगे बढ़ रही थी।

युद्ध में पराजय निश्चित देखते हुए पोलैंड के राष्ट्रपति मोसिकी और विदेश मंत्री बेक ने रूमानिया में शरण ली। पोल जनता वारसा में आखिरी दम

जर्मन टैंक पोलैंड में।

बाल्टिक प्रदेश।

तक जर्मनों से लड़ती रही; परंतु उसे मजबूर होकर 27 सितंबर, 1939 को समर्पण करना पड़ा। अगले ही दिन जर्मनी के विदेश मंत्री रिबेनट्रॉप ने रूस के विदेश मंत्री मोलोतोव के साथ एक समझौता किया, जिसके अनुसार पोलैंड का पश्चिमी भाग जर्मनी को प्राप्त हुआ और उसका आधे से अधिक भाग रूस को। इस प्रकार, सन् 1939 में 1,50,000 वर्गमील क्षेत्र में फैले एवं 3 करोड़ 50 लाख की आबादी वाले पोलैंड का पाँचवीं बार विभाजन हुआ। इस समझौते के साथ ही पोलैंड सिर्फ 27 दिनों में ही पूर्णतः पराजित हो गया। पोलैंड के विभाजन के परिणामस्वरूप जर्मनी को उसका अधिकांश उद्योग एवं

खनिज-प्रधान भाग मिला और रूस को कृषि-प्रधान एवं प्राकृतिक तेल से समृद्ध क्षेत्र मिला।

पोलैंड पर कब्जे के बाद हिटलर ने फ्रांस और ब्रिटेन से अपील की कि अब युद्ध जारी रखना व्यर्थ है। परंतु फ्रांस व ब्रिटेन को हिटलर पर विश्वास नहीं था और उन्होंने उसकी बात सुनने में रुचि नहीं दिखाई।

रूस का बाल्टिक प्रदेशों पर अधिकार

जर्मनी के साथ समझौता करते हुए रूस का पोलैंड के बड़े भूभाग पर अधिकार हो चुका था। इसके तुरंत बाद रूस ने बाल्टिक क्षेत्र के तीन छोटे देशों एस्टोनिया, लेटिविया और लिथुआनिया के विदेश मंत्रियों को मॉस्को आमंत्रित किया। इसका उद्देश्य था संधि करना। इन संधियों के अंतर्गत रूस को बाल्टिक क्षेत्र के तीनों देशों में वायुसेना और नौसेना के अड्डे स्थापित करने तथा सामरिक महत्त्व के स्थानों पर थलसेना रखने का अधिकार प्राप्त हो गया। इन सुविधाओं से रूस की पश्चिमी सीमा अधिक सुरक्षित हो गई, परंतु सोवियत नेता इससे संतुष्ट नहीं थे। वे लेनिनग्राद की सुरक्षा के लिए फिनलैंड में भी सैनिक अड्डे स्थापित करने की सुविधाएँ प्राप्त करना चाहते थे। इसी उद्देश्य से अक्तूबर 1939 में रूसी सरकार ने फिनलैंड के प्रतिनिधि को वार्त्ता के लिए आमंत्रित किया और उसके समक्ष कई माँगें रखीं। इन माँगों में हांगो बंदरगाह को पट्टे पर देने, फिनलैंड की खाड़ी के कुछ द्वीपों पर अधिकार आदि प्रमुख थीं। फिनलैंड हांगो में रूसी नौसैनिक अड्डे की स्थापना को छोड़कर उसकी अन्य सभी माँगें स्वीकार करने को तैयार था; परंतु रूस की सरकार अपनी सभी माँगें पूरी कराने पर अड़ी रही। अंततः समझौता वार्त्ता भंग हो गई और फिनलैंड का प्रतिनिधिमंडल स्वदेश वापस लौट गया। परिणामस्वरूप 30 नवंबर, 1939 को रूसी सेना ने फिनलैंड पर आक्रमण कर दिया। रूसी हवाई जहाजों ने फिनलैंड की राजधानी हेलसिंकी और अन्य नगरों पर हमला किया। जनरल मेनरहीम के नेतृत्व में फिनलैंड की सेनाओं ने रूसी आक्रमणकारियों का साहसपूर्वक सामना किया। शुरुआत में रूस को अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाई; परंतु बाद में मेनरहीम की जबरदस्त किलेबंदी को तोड़ पाने में वह सफल हो गई। इस तरह 12 मार्च, 1940 को फिनलैंड की सरकार को रूस के साथ संधि करनी पड़ी। फिनलैंड

पर विजय के बावजूद रूस ने संपूर्ण फिनलैंड को अपने देश में शामिल नहीं किया। संधि के अनुसार, रूस ने लडोगा झील सहित बहुत बड़े भूभाग पर कब्जा किया और हांगो में रूसी नौसैनिक अड्डे की स्थापना की स्वीकृति ली। रूस ने फिनलैंड की आंतरिक स्वतंत्रता को बरकरार रहने दिया। सैन्य दृष्टि से फिनलैंड के जिन प्रदेशों पर रूस कब्जा रखना चाहता था, उन सभी क्षेत्रों को उसने फिनलैंड से अपने नियंत्रण में ले लिया।

इस प्रकार बाल्टिक के चार देश एस्टोनिया, लाटिविया, लिथुआनिया और फिनलैंड रूस के प्रभाव-क्षेत्र में आ गए। रूस के इस कृत्य से अमेरिका और ब्रिटेन खुश नहीं थे। उसकी इस नीति की वे कड़ी आलोचना कर रहे थे। इधर वह नाजी शक्तियों से बचाव के लिए बाल्टिक प्रदेशों पर अधिकार करना चाह रहा था, ताकि युद्ध की स्थिति में वह इन क्षेत्रों से सैनिक कार्रवाई कर अपनी रक्षा कर सके।

पश्चिमी मोरचा

पोलैंड पर अधिकार के बाद हिटलर पश्चिमी मोरचे पर कोई सैनिक कार्रवाई नहीं कर रहा था। सन् 1939 के शीतकाल के दौरान इस क्षेत्र में युद्ध का दिखावा हो रहा था। इस बीच ब्रिटेन के 1.5 लाख से अधिक सैनिक फ्रांस पहुँच चुके थे और विभिन्न स्थानों पर उनकी नियुक्ति कर दी गई थी। अक्तूबर 1939 में हिटलर ने घोषणा की कि उसकी जर्मन उपनिवेशों की वापसी के अतिरिक्त कोई माँग नहीं थी। इस तरह मित्र राष्ट्रों के समक्ष यह शांति-प्रस्ताव जैसा था, परंतु मित्र राष्ट्रों, खासकर फ्रांस और ब्रिटेन को यह कतई स्वीकार नहीं था, क्योंकि वे जानते थे कि जर्मनी का यह शांति-प्रस्ताव सिर्फ छलावा है। एक तरफ हिटलर शांति बहाल करने की बातें कर रहा था और दूसरी तरफ पश्चिमी मोरचे पर प्रबल आक्रमण की योजना बना रहा था।

जर्मन सेना के कुछ सिपहसालार पश्चिमी क्षेत्र पर आक्रमण के विरुद्ध थे, परंतु हिटलर का निश्चय दृढ़ था। फिर भी पश्चिमी मोरचे पर आक्रमण टलता रहा। उधर इसी मोरचे पर समुद्री क्षेत्र में जर्मनी और मित्र राष्ट्रों के बीच सितंबर 1939 में संघर्ष शुरू हो गया था। प्रथम विश्व युद्ध में ही जर्मन पनडुब्बियों द्वारा समुद्र में चुंबकीय सुरंगें बिछाकर मित्र राष्ट्रों के व्यापारिक, नौसैनिक और अन्य आवश्यक सामग्रियाँ ढोनेवाले जहाजों को डुबोने की

रणनीति बना चुका था। अब तक जर्मन पनडुब्बियों ने कई ब्रिटिश व्यापारिक जहाज डुबो दिए थे और इनके अतिरिक्त 'करेजस' एवं 'रीयल ओक' नामक जंगी जहाजों को भी डुबो दिया था। जवाब में ब्रिटिश नौसेना ने जर्मनी के आधुनिक जहाज 'ग्राफर्पी' को बुरी तरह क्षतिग्रस्त कर दिया। फरवरी 1940 के अंत तक जर्मनी की पनडुब्बियाँ मित्र राष्ट्रों की बहुत सी सेना को नष्ट कर चुकी थीं।

डेनमार्क और नॉर्वे पर जर्मन आक्रमण

जर्मनी नॉर्वे पर इसलिए आधिपत्य स्थापित करना चाहता था, ताकि स्वीडन से कच्चे लोहे का आयात करने का सुरक्षित मार्ग मिल सके और ब्रिटेन के समुद्री रास्तों पर आक्रमण के लिए महत्त्वपूर्ण नौसैनिक अड्डे मिल सकें। नॉर्वे को यूरोप की राजनीतिक उठा-पटक में विशेष रुचि नहीं थी। युद्ध की स्थिति में भी वह स्वयं को तटस्थ रखता था; परंतु द्वितीय विश्व युद्ध की आग की लपटें उस तक पहुँच ही गईं।

नॉर्वे से लौह अयस्क जर्मनी जाता था, जिसका उपयोग जर्मनी अस्त्र-शस्त्रों एवं विभिन्न युद्ध-सामग्रियों के निर्माण में करता था। ब्रिटेन नहीं चाहता था कि नॉर्वे जर्मनी को लोहा भेजे, इसलिए उसने नॉर्वे के तटवर्ती क्षेत्र में बारूदी सुरंगें बिछा दी थीं ताकि जर्मनी जानेवाले जहाजों को वहीं डुबो दिया जाए। तटस्थ देश के समुद्री मार्ग में इस तरह बारूदी सुरंगें बिछाना उचित नहीं था; परंतु जर्मनी को हर स्थिति में नॉर्वे और स्वीडन से कच्चा माल चाहिए था। इसकी निरंतर उपलब्धता कायम रखने के लिए जर्मनी ने 9 अप्रैल, 1940 को नॉर्वे पर आक्रमण कर दिया। नॉर्वे में नाजी पार्टी पहले से ही अस्तित्व में थी। इससे जर्मनी को आसान जीत मिल गई। ब्रिटेन और फ्रांस से सैनिक सहायता मिलने के बावजूद नॉर्वे अधिक समय तक जर्मनी के समक्ष नहीं टिक सका। नॉर्वे के नाजी नेता मेजर क्विसलिंग के नेतृत्व में नई सरकार का गठन किया गया और उस सरकार ने नॉर्वे पर जर्मनी का संरक्षण स्वीकार कर लिया।

डेनमार्क में भी पहले से नाजी पार्टी विद्यमान थी। डेनमार्क की राजनीतिक स्थिति तटस्थता की रही थी। परंतु नाजी पार्टी के समर्थक डेनमार्क की तटस्थता की नीति से सहमति नहीं रखते थे और हमेशा प्रयासरत रहते थे कि युद्ध की स्थिति में वह जर्मनी के साथ खड़े हों। उनके कदम देश के विरुद्ध

युद्ध के दौरान जर्मनी में बड़े पैमाने पर हथियारों का उत्पादन हो रहा था।

बताते हुए डेनमार्क की पुलिस ने कई नाजी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया, जिनमें तीन सांसद थे। जर्मनी ने नाजी नेताओं की गिरफ्तारी पर आपत्ति जताते हुए डेनमार्क पर आक्रमण कर दिया। जिस दिन जर्मनी ने नॉर्वे पर आक्रमण किया उसी दिन 9 अप्रैल, 1940 को डेनमार्क पर भी हमला कर दिया। सुबह होते-होते जर्मन सेनाओं ने डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन पर अपना अधिकार जमा लिया। डेनमार्क की सरकार इस बात से भली-भाँति परिचित थी कि जर्मनी से युद्ध करना व्यर्थ है, क्योंकि वह उसकी विशाल सेना के

नेविन चेंबरलेन एवं विंस्टन चर्चिल।

समक्ष कुछ भी नहीं था। ऐसी स्थिति में देश को नुकसान से बचाने के लिए डेनमार्क के राजा ने कोई मुकाबला नहीं किया। जर्मनी इस बात का प्रचार भी कर रहा था कि वह नॉर्वे और डेनमार्क पर इसलिए अधिकार चाहता है, ताकि ब्रिटेन और फ्रांस उन पर कब्जा न कर सकें। नॉर्वे और डेनमार्क को अपने संरक्षण में लेकर जर्मनी कच्चे माल की प्राप्ति में किसी भी अवरोध से बचना चाहता था। उधर ब्रिटेन कच्चे माल की उपलब्धता में बाधा पहुँचाकर या यों कहें कि स्वीडन और नॉर्वे से प्राप्त कच्चे माल को जर्मनी पहुँचने से रोककर युद्ध के लिए आवश्यक सामग्री बनाने में खलल डालना चाहता था।

विंस्टन चर्चिल ब्रिटेन के प्रधानमंत्री बने

मित्र राष्ट्रों में ब्रिटेन की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। इधर कुछ समय से ब्रिटेन युद्ध-संचालन हेतु सुचारु रणनीति बनाने में असफल हो रहा था। प्रधानमंत्री चेंबरलेन की आलोचना होने लगी थी। सरकार एवं विरोधी दल के बीच असंतोष बढ़ता जा रहा था। नॉर्वे और डेनमार्क पर हिटलर की विजय से यह असंतोष और बढ़ गया। हिटलर जर्मनी का नेतृत्व बखूबी कर रहा था। उसकी रणनीति, युद्धनीति और बहादुरी की चर्चा होने लगी थी। ब्रिटेन में बढ़ते असंतोष का परिणाम यह हुआ कि 8 मई, 1940 को हाउस ऑफ कॉमंस में विरोधी दल के सदस्यों ने प्रधानमंत्री की आलोचना की और उन

पर त्यागपत्र देने के लिए दबाव बनाया। 10 मई, 1940 को जर्मन सेना हॉलैंड और बेल्जियम पर हमला कर चुकी थी और उसी दिन ब्रिटिश प्रधानमंत्री चेंबरलेन ने त्यागपत्र दे दिया। चेंबरलेन के स्थान पर नेतृत्व परिवर्तन कर चर्चिल को प्रधानमंत्री बनाया गया। चर्चिल ने सर्वदलीय मंत्रिमंडल का गठन किया।

हॉलैंड और बेल्जियम पर आक्रमण

इधर ब्रिटेन में नेतृत्व परिवर्तन हुआ और उधर जर्मन सेना हॉलैंड में प्रवेश कर गई। युद्ध शुरू होने के समय 1 सितंबर, 1939 को ही हॉलैंड और बेल्जियम की सरकारों ने यह घोषणा कर दी थी कि वे युद्ध में तटस्थ रहेंगे। हिटलर ने इसके जवाब में यह घोषणा की थी कि ब्रिटेन और फ्रांस जब तक इन देशों की तटस्थता को कायम रखेंगे, जर्मनी भी उन पर आक्रमण नहीं करेगा। हॉलैंड और बेल्जियम सरकारों ने अपनी सुरक्षा के लिए तैयारियाँ की थीं, परंतु वे इतनी पुख्ता नहीं थीं कि किसी देश के आक्रमण की स्थिति में उससे युद्ध किया जा सके। इन दोनों देशों को यह विश्वास था कि ब्रिटेन और जर्मनी उनकी तटस्थता की नीति का सम्मान करेंगे और उन पर आक्रमण नहीं करेंगे।

परंतु हिटलर पहले ही आक्रमण का निश्चय कर चुका था। 9 अक्तूबर, 1939 को ही पश्चिमी मोरचे पर जर्मनी की 140 डिवीजन सेना भेजी जा चुकी थी। जनवरी 1940 में हिटलर ने इन पर आक्रमण की योजना बनाई; परंतु किसी कारणवश यह योजना कार्यान्वित नहीं हो पाई। परंतु अप्रैल में नॉर्वे और डेनमार्क पर अधिकार होने के बाद जर्मनी का रास्ता आसानी से खुल गया।

अंततः 10 मई, 1940 को जर्मनी ने थल, जल और वायु तीनों मार्गों से हॉलैंड पर हमला कर दिया। हॉलैंड की सेना ने डटकर मुकाबला किया। इस युद्ध में 1 लाख से अधिक सैनिक मारे गए। जर्मनी ने सुबह 4 बजे हमला शुरू कर दिया था और सूर्योदय होते-होते हॉलैंड के अधिकांश हवाई केंद्रों, सैनिक अड्डों एवं अन्य महत्त्वपूर्ण ठिकानों पर बमबारी कर वहाँ की सुरक्षा-व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर दिया। यह युद्ध अधिक दिनों तक नहीं चला। 14 मई को डच सेनाध्यक्ष विंकलमेन ने जर्मन सेना के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। हॉलैंड की महारानी विलहेमिना जान बचाकर सौभाग्य से लंदन

पहुँच गई। हॉलैंड का विशाल साम्राज्य था। उसके पास अपने जहाज थे। रानी के लंदन पहुँच जाने से मित्र राष्ट्रों को यह लाभ हुआ कि वहाँ के संसाधनों को लंदन मँगवा लिया गया और उनका प्रयोग युद्ध में जर्मनी के विरुद्ध किया गया।

जर्मनी ने 10 मई को ही बेल्जियम पर भी बिना किसी पूर्व घोषणा के आक्रमण कर दिया। ब्रिटेन की सेना अब तक बेल्जियम नहीं आई थी। उसे वह एक तटस्थ देश समझती थी, परंतु जर्मनी के हमले की स्थिति में बेल्जियम की रक्षा के लिए ब्रिटिश सेना भी वहाँ पहुँच गई। जर्मन सेना बड़ी तेजी से आगे बढ़ रही थी। पहले उसके जंगी जहाज बम बरसाते थे, फिर आकाश मार्ग से छाताधारी सैनिक नीचे उतरते थे। उन सैनिकों के साथ तरह-तरह के आधुनिक हथियार होते थे। इनके पीछे-पीछे टैंक चलते थे। टैंकों के साथ-साथ घुड़सवार सेना सहायता पहुँचाती थी। ये सैनिक मोटर साइकिल का प्रयोग भी करते थे। जर्मन सेना की सारी शक्ति इस समय पश्चिमी रणक्षेत्र पर लगी थी। वह न सिर्फ बेल्जियम से युद्ध कर रही थी, बल्कि उनकी विशाल व नई वैज्ञानिक युद्ध-पद्धति से लैस सैनिक फ्रांस पर भी हमला कर चुके थे। बेल्जियम की सहायता के लिए आए ब्रिटिश सैनिक भी जर्मन सेना को रोकने में असफल हो गए थे। बेल्जियम की सैनिक क्षमता भी इतनी नहीं थी कि वह विश्व के सबसे आधुनिकतम सैनिकों को रोक सके। साथ ही, फ्रांस पर हमले की वजह से फ्रांसीसी सेना अधिक संख्या में बेल्जियम नहीं आ पाई थी। युद्ध जारी रखने की स्थिति में बेल्जियम का विनाश निश्चित था। स्थिति को ध्यान में रखते हुए बेल्जियम के राजा लियोपोल्ड तृतीय ने 27 मई, 1940 को जर्मनी के समक्ष बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दिया।

उस समय ब्रिटेन के 3 लाख से अधिक सैनिक बेल्जियम में थे। आत्मसमर्पण के बाद ब्रिटिश सरकार के लिए अपने सैनिकों की सुरक्षित वापसी कठिन हो गई। ब्रिटिश सेना जर्मन सेनाओं से घिर गई। सिर्फ एक तरफ समुद्री मार्ग एकमात्र विकल्प था। परंतु 3 लाख से अधिक सैनिकों का समुद्री मार्ग से ब्रिटेन वापसी का काम आसान नहीं था। ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल के लिए यह एक बड़ी चुनौती का समय था। समुद्री मार्ग से सैनिकों की स्वदेश वापसी के लिए भारी संख्या में जहाजों की आवश्यकता थी। उधर जिस तेजी से जर्मन सेना आगे बढ़ रही थी, यह भी संभव था कि जर्मन सेना

डनकिर्क बंदरगाह तक पहुँच जाए और सैनिकों के जहाजों पर चढ़ने से पहले ही हमला कर दे। यह भी संभव था कि जर्मनी वायु-मार्ग से भी हमला कर दे। जर्मनी इस बात से अवगत न हो कि ब्रिटिश सरकार डेनमार्क के रास्ते से सैनिकों की वापसी कर रही थी, यह भी संभव नहीं था। चर्चिल ने गंभीरता से काम लेते हुए ब्रिटिश जहाजों, मोटर नौकाओं और किश्तियों को आज्ञा दी कि सभी ब्रिटिश सैनिक समुद्र तट पर एकत्र हो जाएँ और रात के समय इंग्लिश चैनल पार कर डनकिर्क पहुँचें। इन नौकाओं और जहाजों की सुरक्षा के लिए ब्रिटिश जंगी जहाज तैनात किए गए। जैसा अंदेशा था वैसा ही हुआ। जर्मनी ने ब्रिटिश सेना पर हमला कर दिया। उस पर बम बरसाए गए, गोलीबारी की गई। इस बमबारी और हमले में बहुत से ब्रिटिश जहाज डूब गए। हालाँकि उनकी संख्या 1,000 के लगभग थी, इसलिए कुछ जहाजों के डुबो देने या नष्ट कर देने से कुछ खास अंतर नहीं पड़ा। जितने सैनिकों को बचाकर वापस ब्रिटेन लाया गया, उनकी संख्या 3 लाख से अधिक थी। ब्रिटिश सैनिकों के अतिरिक्त फ्रांसीसी सैनिक और अन्य नागरिकों को भी बचाया गया। इनकी संख्या भी 1 लाख से अधिक थी। चर्चिल के नेतृत्व में लगभग 4.5 लाख लोगों को जर्मनी से मुक्त कराया गया, जो निश्चय ही एक चमत्कार की तरह था। इतनी बड़ी सफलता के लिए चर्चिल की बड़ी प्रशंसा हुई थी।

❑

फ्रांस का पतन

"युद्ध के लिए तैयार रहना, शांति बनाए रखने का सबसे अमोघ माध्यम है।"

—जॉर्ज वाशिंगटन

जर्मनी ने 3 जून, 1940 को अपनी पूरी ताकत के साथ फ्रांस पर आक्रमण कर दिया। फ्रांस की राजधानी पेरिस पर आकाश मार्ग से हमला किया गया। वहाँ जबरदस्त बमबारी की गई। थलसेना ने मैगिनोट लाइन पर धावा बोल दिया।

वस्तुत: 16 मई को फ्रांसीसी, बेल्जियम और ब्रिटिश फौजें डाइल की रेखा से शेल्ट की ओर हटने लगी थीं। 17 मई को जर्मन सेना फ्रांसीसी रक्षा-पंक्ति को तोड़कर फ्रांस के एक बड़े भू-भाग पर अधिकार क़र चुकी थी। 18 मई को सातवीं फ्रांसीसी सेना के सेनापति गिराद को जर्मन सैनिकों ने बंदी बना लिया। उस समय फ्रांस और मित्र राष्ट्रों की स्थिति अत्यंत गंभीर हो गई थी। फ्रांस के तत्कालीन प्रधानमंत्री रैनाद ने मंत्रिमंडल में परिवर्तन किया। स्वयं प्रधानमंत्री रैनाद ने सुरक्षा मंत्रालय का भार सँभाला और मार्शल पेताँ को उपप्रधानमंत्री का पद-भार सौंपा। सुरक्षा मंत्रालय सँभालते ही प्रधानमंत्री रैनाद ने 19 मई को जनरल गेमलिन के स्थान पर जनरल वेगांद को मुख्य कमांडर नियुक्त किया। उस समय फ्रांसीसी सेना के पास लड़ाकू विमान दस्तों की कमी थी। सैनिकों की भी कमी थी। 20 मई को जर्मनों ने एबेविल पर

पेरिस के आसमान पर जर्मन लड़ाकू विमान।

अधिकार कर लिया। 21 मई को उत्तरी क्षेत्र के प्रमुख कमांडर जनरल विलात की दुर्घटना में मृत्यु हो गई। 23 मई को जर्मन सेना इंग्लिश चैनल के करीब पहुँच गई जिससे मित्र राष्ट्रों की सेना जर्मन सेना से बुरी तरह घिर गई। उस समय जर्मन सेना अगर इंग्लिश चैनल पार कर ब्रिटेन पर हमला करती तो शायद ब्रिटेन जर्मन सेनाओं के मुकाबले अक्षम रहता, परंतु हिटलर ने वैसा नहीं किया जो उसकी बहुत बड़ी भूल थी। वह ब्रिटेन से पहले फ्रांस को परास्त करना चाहता था। जर्मन सेना ने फ्रांसीसी सेना का सामना करते हुए 25 मई को बोलोन और 27 मई को कैले पर आधिपत्य कायम कर लिया। वह अब डनकिर्क बंदरगाह के करीब पहुँच चुकी थी। इसके दूसरे दिन 28 मई को बेल्जियम के राजा ने आत्मसमर्पण कर दिया। जर्मन सेना ने 24 दिनों के अंदर डनकिर्क और कैले पर अधिकार करते हुए हॉलैंड, बेल्जियम और लक्समबर्ग पर अधिकार कर अपने विजय अभियान का प्रथम चरण पूरा कर लिया। उधर फ्रांसीसी सेनाध्यक्ष वेगांद ने सोम नदी के नीचे आइसन से मांटेमडी तक 100 मील से अधिक लंबा नया मोरचा तैयार किया जिसे 'वेगांद लाइन' कहा गया। किंतु फ्रांस के पास इस समय सिर्फ 15 लाख सेना बची थी। 3 जून के हमले का जवाब फ्रांसीसी सेना ने डटकर दिया, परंतु

अत्याधुनिक विशाल जर्मन सेना के समक्ष वह अधिक देर तक नहीं टिक पाई। बेल्जियम की पराजय से जर्मनी का रास्ता खुल चुका था। जर्मन सेना इस समय फ्रांस पर तितरफा हमला कर रही थी। ये तीनों क्षेत्र थे मोआस्सो, आमीन और पेरोन। इस महारण में 2,000 से अधिक भारी टैंकों का प्रयोग हो रहा था। फ्रांसीसी सेना की किलेबंदी तोड़ने के लिए जर्मन सेना 300 टैंकों के साथ आगे बढ़ती थी जिससे पार पाना फ्रांसीसी सेना के वश में नहीं था। जर्मन सेना के पास जहाँ 10,000 से अधिक जंगी जहाज थे, वहीं फ्रांस के पास सिर्फ 2,000 हवाई जहाज थे। टैंकों की संख्या में भी दोनों देशों के बीच बड़ा अंतर था। ब्रिटिश सैनिकों की सहायता फ्रांस को अभी नहीं मिल पा रही थी। फ्रांस को अकेले अपने दम पर ही जर्मन लड़ाकों को शिकस्त देनी थी, जो उसके लिए आसान नहीं था।

इटली का हमला

मौके का लाभ उठाते हुए इटली ने भी 10 जून, 1940 को फ्रांस पर
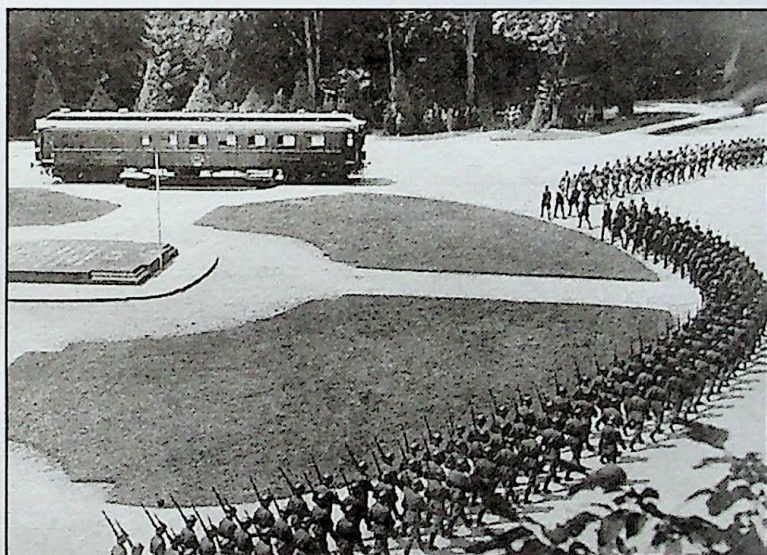
फ्रांस का आत्मसमर्पण : 21 जून, 1940 को कांपीन में रेल के उसी डिब्बे में, जिसमें 1918 में जर्मनी ने युद्ध-विराम स्वीकार किया था, हिटलर ने अपने मंत्रिमंडल के साथियों सहित फ्रांस के प्रतिनिधिमंडल के साथ युद्धविराम-संधि की।

हमला कर दिया। जर्मनी की सफलता से मुसोलिनी उद्विग्न होता जा रहा था। उसने हिटलर को सूचित कर दिया था कि वह जून के प्रथम सप्ताह में फ्रांस और ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देगा। अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने मुसोलिनी को युद्ध से रोकने की कोशिश की, परंतु वे असफल रहे। वह फ्रांस की वर्तमान कमजोर स्थिति से लाभ उठाना चाहता था। फ्रांस ने उस हालत में भी इटली का भरपूर मुकाबला किया और उसे आगे बढ़ने से रोके रखा। परंतु फ्रांसीसी सेना जर्मन सेना को रोक पाने में सफल नहीं हो पा रही थी। 12 और 13 जून को फ्रांसीसी सेना ने पेरिस के बचाव के लिए अंतिम मोरचा बनाया, किंतु परिणाम प्रतिकूल रहा। जर्मन सेना के भारी टैंकों एवं अत्याधुनिक हमलावर मोटरगाड़ियों के समक्ष फ्रांसीसी सेना नहीं टिक पाई। अंतत: 14 जून को जर्मन सेना शांतिपूर्वक पेरिस में प्रवेश कर गई। फ्रांसीसी सरकार पेरिस में रक्तपात नहीं चाहती थी। पेरिस की कलाकृतियाँ दुनिया में सर्वोत्तम कलाकृतियाँ हैं, ऐसी स्थिति में फ्रांसीसी सरकार ने पेरिस की सुंदरता को बरकरार रखने के लिए वहाँ किसी प्रकार की सैनिक कार्रवाई नहीं की।

मुसोलिनी और हिटलर।

पेरिस जर्मनी के अधीन हो चुका था। अब ब्रिटिश सरकार ने फ्रांस के सामने एक प्रस्ताव रखा कि ब्रिटेन एवं फ्रांस मिलकर एक देश हो जाएँ और फ्रांस पर जर्मनी का आधिपत्य होने के बावजूद यह लड़ाई जारी रखें। पर यह ब्रिटेन की आत्मरक्षा की चाल थी। फ्रांस पर जब हमला किया गया था, उस वक्त अगर यह प्रस्ताव आता तो स्वागत योग्य होता; परंतु जब फ्रांस की पराजय हो चुकी थी, उस वक्त ब्रिटेन का यह प्रस्ताव स्वार्थ से प्रेरित लगता था। उस वक्त फ्रांस के प्रधानमंत्री रेयनो ने ब्रिटेन के बजाय अमेरिका से मदद माँगी। अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने प्रचुर मात्रा में युद्ध-सामग्री भेजने का आश्वासन दिया। फ्रांस सोच रहा था कि अमेरिका जर्मनी के विरुद्ध उसके समर्थन में युद्ध की घोषणा करेगा; परंतु उसकी यह आस पूरी नहीं हुई। उधर जर्मन सेना 16 जून को मैगिनो लाइन में प्रवेश कर चुकी थी। इस तरह हताशा एवं निराशा की स्थिति में फ्रांसीसी प्रधानमंत्री रेयनो ने त्यागपत्र दे दिया और मार्शल पेताँ के हाथ देश की बागडोर सौंप दी। मार्शल पेताँ एवं फ्रांस के कतिपय राजनीतिज्ञ युद्ध जारी रखने के खिलाफ थे। मार्शल पेताँ ने अपनी सरकार में पूर्व प्रधानमंत्री लावाल को सम्मिलित किया। लावाल ब्रिटेन-विरोधी एवं जर्मनी के साथ समझौते के कट्टर समर्थक थे। पेताँ सरकार ने 16 जून को स्पेन के माध्यम से जर्मनी से युद्ध-विराम की पेशकश की, परंतु हिटलर को युद्ध-विराम की कोई अनिवार्यता महसूस नहीं हुई, इसलिए उसने इस प्रस्ताव पर ध्यान नहीं दिया। जर्मन सेना का युद्ध अनवरत जारी था। 18 जून को जर्मन सेनाओं ने बेलफोर्ट, कोलमार और डिजान आदि शहरों पर अधिकार कर लिया। 21 जून, 1940 को कांपीन नामक स्थान पर रेल के उसी डिब्बे में, जिसमें सन् 1918 में जर्मनी ने युद्ध-विराम स्वीकार किया था, हिटलर ने अपने मंत्रिमंडल के साथियों सहित फ्रांस के प्रतिनिधिमंडल से भेंट की और संधि की शर्तों से अवगत कराया। 22 जून को बोर्दों में स्थित पेताँ सरकार ने युद्ध-विराम की शर्तें स्वीकार कर लीं। शर्तों के अनुसार, फ्रांस को अपना आधे से अधिक भू-भाग तथा अटलांटिक महासागर के समीप के सभी बंदरगाह जर्मनी को देने पड़े। फ्रांस ने जिस तरह प्रथम विश्व युद्ध के बाद जर्मनी पर दबाव बनाकर कई शर्तें मनवा ली थीं, उसी प्रकार अब पलड़ा जर्मनी का भारी था और वह हर तरह से फ्रांस को कमजोर करना चाहता था। फ्रांस को जर्मन-अधिकृत क्षेत्र में जर्मन सैनिकों का खर्च, आंतरिक व्यवस्था के लिए आवश्यक सेना के अतिरिक्त समस्त सेना का विघटन करने और

अपनी रक्षा-व्यवस्था एवं समस्त सैन्य सामग्री जर्मनी को सौंपने के लिए बाध्य होना पड़ा। फ्रांस का इस प्रकार जर्मनी से हार जाना बड़ी शर्मनाक बात थी। प्रथम विश्व युद्ध के बाद फ्रांस सबसे ताकतवर देश के रूप में उभरा था; परंतु जर्मनी को हिटलर का नेतृत्व मिल जाने के बाद से फ्रांस में प्राचीन ढंग की सैन्य-नीति फीकी पड़ गई थी। फ्रांस के अंदरूनी राजनीतिक हालात ठीक नहीं थे। वहाँ अनेक राजनीतिक दल थे, सबके अपने-अपने नेता थे, अलग सिद्धांत थे। परंतु जर्मनी में एक ही पार्टी थी। नाजी पार्टी और उसका एक ही नेता था–हिटलर। हिटलर का एक ही उद्देश्य था–जर्मनी को महाशक्तिशाली राष्ट्र बनाना।

फ्रांस की पराजय के कारण

जिस तरह फ्रांस प्रथम विश्व युद्ध के बाद यूरोप में सबसे शक्तिशाली देश के रूप में उभरा था, किसी को भी यह अंदेशा नहीं था कि सिर्फ एक माह के युद्ध में जर्मनी उसे इस तरह तबाह कर देगा कि वह उसकी किसी भी शर्त पर आत्मसमर्पण करने को तैयार हो जाएगा। फ्रांस की हार के कई महत्त्वपूर्ण कारण थे। उसके पास अत्याधुनिक हथियारों की कमी थी। फ्रांस नवीन शैली के युद्ध का जवाब देने को उस वक्त तैयार नहीं था। जर्मनी के पास हजारों शक्तिशाली टैंक थे, हजारों बमवर्षक विमान एवं लड़ाकू विमान थे; पर फ्रांस के पास उसके जवाब के लिए संसाधनों की बहुत कमी थी। युद्ध के शुरुआती दौर में फ्रांस के जनरल गैमलिन की युद्ध-नीति भी सफल नहीं मानी गई। उन्होंने मित्र राष्ट्रों की सेनाओं को हॉलैंड और बेल्जियम से आगे बढ़ने के आदेश देने से पूर्व संयुक्त मोरचे के कमजोर स्थानों जैसे मैगिनो लाइन के उत्तर-पूर्व में फ्रांसीसी एवं ब्रिटिश सेना के पीछे पर्याप्त संख्या में सुरक्षित सेना रखने की व्यवस्था नहीं की। वस्तुत: फ्रांस के राजनेताओं और सेनानायकों को अपनी सैन्य-शक्ति की उत्कृष्टता और मैगिनोट लाइन पर बनाई गई सुरक्षा-पंक्ति पर घोर विश्वास था। अचानक जर्मनी के हमले, उनके सैनिकों के धारदार प्रहार और उत्कृष्ट अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सेना के सामने फ्रांस की अभेद्य मानी जाने वाली मैगिनोट लाइन की किलेबंदी ध्वस्त हो गई, जिसका अंदाजा भी फ्रांसीसी सेनानायकों को नहीं था। इससे फ्रांसीसी सैन्य अधिकारियों का मनोबल गिर गया और उनकी सुरक्षा-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। फ्रांस में अंदरूनी राजनीतिक उठा-पटक भी उसे कमजोर

कर रही थी। रॉबर्ट फाब्रेल्यूस, लेस्का, लावाल एवं अन्य जर्मन समर्थक नेता फ्रांस की पराजय के कारण बने। इन बागी नेताओं की वजह से फ्रांस सरकार संगठित होकर सैन्य-क्षमता नहीं बढ़ा पाई, जिसका सीधा लाभ जर्मन सेना को हुआ।

संधि की शर्तें

21 जून, 1940 को मार्शल पेताँ सरकार के प्रतिनिधियों ने हिटलर से मुलाकात की। हिटलर के साथ हेस, रेबनट्रॉप, कैटल और जनरल ब्रोशिराश जैसे नाजी नेता थे। प्रथंम विश्व युद्ध में पराजय के बाद जिस रेलगाड़ी में संधि-वार्त्ता हुई थी उसी रेलगाड़ी में दोनों देशों के प्रतिनिधिमंडल संधि-शर्तों का निर्णय करने के लिए जुटे। पिछली संधि के दौरान जिस कुरसी पर मार्शल फॉच बैठा था, आज उस पर हिटलर काबिज था। संधि-शर्तों में फ्रांस को दो भागों में विभक्त किया गया। एक भाग जर्मनी के कब्जे में था और दूसरा स्वाधीन फ्रांस था। जर्मनी के कब्जेवाले फ्रांस में पेरिस भी सम्मिलित था। उत्तरी फ्रांस के अंतर्गत आनेवाले अधिकांश भूभाग, जिसमें पेरिस सम्मिलित था, उसे जर्मनी ने अपने अधीन कर लिया। वहीं दक्षिणी फ्रांस पर मार्शल पेताँ की सत्ता कायम हुई। अब दक्षिणी फ्रांस की राजधानी विशी बनाई गई। फ्रांस के पास जो भी युद्ध-सामग्री, जहाज और अन्य आवश्यक युद्धोपयोगी उपकरण बच गए थे, सभी जर्मनी को सौंप दिए गए। फ्रांस के पास देश की सुरक्षा के नाम पर बहुत कम सैनिक छोड़े गए। अधिकांश सैनिक टुकड़ियों को भंग कर दिया गया। संधि पर जब फ्रांस सरकार के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर कर दिए तो उस रेलगाड़ी को बर्लिन लागा गया और फ्रांस के जिस स्थान पर मार्शल फॉच के नेतृत्व में जर्मनी को भारी अपमान सहना पड़ा था, उसे हलों से जुतवा दिया गया। जर्मनी पर फ्रांस द्वारा वारसा की संधि में जिस प्रकार से अंकुश लगाए गए थे, जितना शोषण किया गया था, उन सबका बदला लेकर हिटलर पूर्णतः संतुष्ट था।

मार्शल पेताँ की नीति से सभी फ्रांसीसी खुश नहीं थे। जनरल द गॉल ने ब्रिटेन में उन सभी फ्रांसीसी सैनिकों को एकत्रित किया, जो डनकिर्क से बचकर इंग्लैंड पहुँचाए गए थे और आजाद फ्रांसीसी सेना का निर्माण किया। ये सैनिक जनरल द गॉल के नेतृत्व में जर्मनी के खिलाफ लड़ाई जारी रखना चाहते थे। फ्रांस का साम्राज्य इतना विशाल था कि उस पर जर्मनी का पूर्णतः

कब्जा कर लेना आसान नहीं था। जनरल गॉल ने इन प्रदेशों से आजाद फ्रांसीसी सरकार की सहायता के लिए कोशिश की। परंतु मार्शल पेताँ नहीं चाहता था कि फ्रांस अब किसी प्रकार के युद्ध में भाग ले। वह पूर्णतया तटस्थ रहना चाहता था और जर्मनी से हुई संधि-शर्तों को मानने के लिए कटिबद्ध था। मार्शल पेताँ ने तीन अध्यादेश जारी किए। प्रथम अध्यादेश द्वारा उसने स्वयं को राज्य का प्रधान घोषित कर दिया। दूसरे अध्यादेश द्वारा राज्य की समस्त कार्यकारी एवं विधायी शक्तियाँ अपने हाथ में केंद्रित कर लीं और तृतीय अध्यादेश द्वारा सीनेट एवं चेंबर ऑफ डेपुटीज को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया। इस प्रकार वह विशी में अधिनायक तंत्र स्थापित कर चुका था। ऐसी स्थिति में आजाद फ्रांसीसी सरकार को वह बढ़ने नहीं देना चाहता था। उधर जनरल द गॉल ने ब्रिटिश सरकार से मिलकर 'अस्थायी फ्रांसीसी राष्ट्रीय समिति' गठित की। फ्रांस के कई अफ्रीकी उपनिवेशों ने द गॉल के प्रति अपना विश्वास व्यक्त किया और हिटलर के विरुद्ध युद्ध में पूर्णतः सहयोग देने का आश्वासन दिया।

फ्रांस के विघटन के बाद ब्रिटिश सरकार को यह चिंता हो रही थी कि कहीं फ्रांसीसी नौसेना पर जर्मनी का अधिकार न हो जाए। युद्ध-विराम की

फ्रांस प्रमुख हेनरी फिलिप पीटेन और हिटलर, बीच में गोरिंग।

शर्तों के अनुसार फ्रांसीसी नौसैनिक जहाजों का जर्मनी और इटली के नियंत्रण में निरस्त्रीकरण किया जाना था। जर्मनी ने हालाँकि आश्वासन दिया था कि वह जहाजों का युद्ध में प्रयोग नहीं करेगा; परंतु उसके वचन पर भरोसा नहीं किया जा सकता था। फ्रांसीसी नौसेना अध्यक्ष एडमिरल दार्लान ने युद्ध-विराम के पूर्व ब्रिटिश उच्चाधिकारियों को यह आश्वासन दिया कि वह फ्रांसीसी नौसेना को ब्रिटेन या अमेरिका के बंदरगाहों में भेज देगा या नष्ट कर देगा। परंतु कुछ ही दिनों बाद यह स्पष्ट हो गया कि दार्लान अपने वचन का पालन नहीं करेगा। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश सरकार ने निर्णय किया कि फ्रांसीसी नौसेना सामग्री को या तो अपने नियंत्रण में ले लिया जाए या नष्ट कर दिया जाए। 3 जुलाई, 1940 को ब्रिटिश बंदरगाहों में पड़े सभी फ्रांसीसी जहाजों को ब्रिटिश नौसेना द्वारा कब्जे में ले लिया गया। परंतु अभी भी फ्रांसीसी जहाजी बेड़े का एक बड़ा भाग अल्जीरिया के ओरान एवं उसके करीब मर्स-अल-कबीर के बंदरगाह में पड़ा था। 3 जुलाई को ब्रिटिश नौसेना के वाइस एडमिरल ने उस बंदरगाह की घेराबंदी करके फ्रांसीसी नौसेना के वाइस एडमिरल गेन्सूल को अंतिम चेतावनी दी कि वह या तो ब्रिटिश नौसेना के नियंत्रण में आ जाए या अपने जहाजों को नष्ट कर दे। एडमिरल गेन्सूल ने ब्रिटिश नौसेना का सामना करने का निश्चय किया। परिणामत: ब्रिटिश नौसेना के संचालक सोमरविल को फ्रांसीसी बेड़े पर आक्रमण करना पड़ा। इस लड़ाई में 'स्ट्रासवर्ग' नामक जंगी जहाज को छोड़कर अन्य सभी फ्रांसीसी जहाजों को नष्ट कर दिया गया। इस प्रकार ब्रिटेन और फ्रांस के विवाद में हिटलर को फ्रांस के विशाल जहाजी बेड़े से वंचित रहना पड़ा।

फ्रांस प्रमुख हेनरी फिलिप पीटेन और हिटलर की वार्त्ता

युद्ध में हुई फ्रांस की पराजय ने उसे हिटलर के समक्ष घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया था। उस समय फ्रांस का राज्य-प्रमुख हेनरी फिलिप पीटेन था। इस युद्ध में हेनरी फिलिप पीटेन ने फ्रांस के हितों की परवाह किए बिना जर्मनी के साथ ऐसी संधि पर हस्ताक्षर किए, जो फ्रांस के गौरव व सम्मान को पूरी तरह मिटाने वाली थी। सीधे शब्दों में कहा जाए तो पीटेन ने फ्रांस को पूर्णतया कलंकित किया, जिसके लिए फ्रांस जनता उसे कभी माफ नहीं कर सकेगी।

फ्रांस की सत्ता पर पीटेन 16 जून, 1940 को काबिज हुआ और मात्र एक सप्ताह के भीतर उसने समूचे फ्रांस की जनता एवं राष्ट्र-सम्मान को ताक पर रखते हुए उन्हें जर्मनी के समक्ष बंधक रख दिया। इस संधि के उपरांत पीटेन 20 अगस्त, 1944 तक–पूरे चार वर्ष तक–फ्रांस की गद्दी पर जमा रहा। इस दौरान हिटलर ने भी फ्रांस को क्षति नहीं पहुँचाई।

परंतु पीटेन की सत्ता 20 अगस्त, 1944 तक ही सीमित रह गई। फ्रांस पर मित्र राष्ट्रों की बढ़त के बाद उसे हिटलर का साथ देने के जुर्म में सत्ता से बेदखल करते हुए मृत्युपर्यंत कैद की सजा सुना दी गई। गौरतलब था कि हिटलर से वफादारी निभाते हुए पीटेन ने 70 हजार यहूदियों तथा 6 लाख 50 हजार मजदूरों को जर्मनी भेज दिया था। पीटेन ने जो संधि की थी, उसके अंतर्गत फ्रांस स्थित सारे यहूदियों को जर्मनी को सौंपने की जिम्मेदारी उसे दी गई थी। इस युद्ध में होनेवाले सारे व्यय का भार फ्रांसीसी सरकार के ऊपर था। संधि से पूर्व फ्रांसीसी कैदियों को रिहा नहीं किया गया। इस प्रकार के संधि नियमों से फ्रांस जर्मनी के समक्ष अपंग हो चुका था।

❑

7

ब्रिटेन को जर्मन धमकी

''युद्ध और शांति नदी के दो किनारे हैं। इन्हें अलग ही बना रहने दो।''

—अज्ञात

फ्रांस पर अविस्मरणीय विजय के बाद हिटलर व उसकी सेना के हौसले बुलंदी के आसमान को छू रहे थे। इसी मद में चूर हिटलर ने 19 जुलाई, 1940 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री के नाम एक संदेश भेजा, जिसमें लिखा था–''जर्मनी और ब्रिटेन यूरोप के दो सबसे शक्तिशाली देश हैं। ब्रिटेन की यह सोच है कि वह जर्मनी को समाप्त कर पाएगा और साथ ही जर्मनी की सोच भी कुछ इसी प्रकार की है। परंतु आज स्थितियाँ काफी अलग हैं। ब्रिटेन के वश की बात नहीं कि वह जर्मनी को समाप्त कर पाए। जर्मनी की शक्तियों का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता। अब कोई भी देश हमारे सामने नहीं टिक सकता। जर्मनी इस युद्ध में विजय के लिए कृतसंकल्प हो चुका है। परंतु मुझे इस बात का पूरा-पूरा खयाल है कि जर्मनी और ब्रिटेन के युद्ध में बहुत बड़ी तबाही हो सकती है, जिसे रोकने के लिए मैं ब्रिटेन को सलाह दे रहा हूँ कि वह समझौता कर ले। इस समझौते में ऐसी सीमाएँ बनाए, जिनका पालन हम कर सकें। यहाँ ब्रिटेन यह कतई न सोचे कि यह शांति-प्रस्ताव मैं भयभीत होकर दे रहा हूँ। यह प्रस्ताव मैंने ब्रिटेन व आम जनता की भलाई के लिए भेजा है। ब्रिटेन यदि चाहे तो इस शांति समझौते को अपना सकता है।

यदि ब्रिटेन ने इस समझौते को नहीं माना तो हम खूनी संघर्ष का एक ऐसा इतिहास रच देंगे, जिसे आनेवाली पीढ़ियाँ याद रखेंगी।''

इस अपमान भरे संदेश को पढ़ने के बाद ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल ने अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट को ब्रिटेन पर छाए संकट से अवगत कराया। उन्होंने अमेरिका से सहायता माँगी। चर्चिल ने लिखा–''हमने निश्चय कर लिया है कि चाहे ब्रिटेन का कुछ भी हो जाए, हम हिटलर के समक्ष समर्पण नहीं करेंगे। ब्रिटेन का हर नागरिक, चाहे वह वयस्क हो या बच्चा, सभी इस युद्ध के लिए पूर्णतया तैयार हैं। हमें मात्र अमेरिकी सहायता चाहिए और हम जर्मनी को उसके अहं का मुँहतोड़ जवाब देने को तैयार हैं।''

ब्रिटिश सहायता की माँग को स्वीकार करते हुए अमेरिका ने मदद की तैयारियाँ आरंभ कर दीं। अमेरिका ने सर्वप्रथम अधिक-से-अधिक रसद और युद्ध-सामग्री भेजी, तत्पश्चात् अपनी सेना को जर्मनी के विरुद्ध ब्रिटिश फौज की सहायता के लिए भेजा।

ब्रिटेन की स्थिति

जर्मनी के हाथों फ्रांस बुरी तरह पिट चुका था। इससे पहले फ्रांस और ब्रिटेन की सेनाएँ सम्मिलित रूप से जर्मनी का मुकाबला करती थीं। ताजा स्थिति यह थी कि अब जर्मनी की विशाल सेना का ब्रिटेन को अकेले ही सामना करना था। हिटलर के पास उस समय 35 लाख सैनिकों की भारी-भरकम फौज थी, जबकि ब्रिटेन की सैन्य-शक्ति को फ्रांस में गंभीर आघात पहुँचा था। जर्मन साम्राज्य अब नॉर्वे से लेकर दक्षिणी स्पेन तक फैल चुका था। जर्मन सेना बेल्जियम और फ्रांस के रास्ते सुगमता से ब्रिटेन तक पहुँच सकती थी। इस रास्ते के खुल जाने से जर्मन तोपों और लड़ाकू विमानों को ब्रिटेन तक पहुँचने में आसानी हो गई। अब वे आसानी से ब्रिटेन पर गोलाबारी कर सकते थे। हवाई मार्ग द्वारा भी यूरोप के विभिन्न प्रदेशों से जर्मन विमान ब्रिटेन पर बमबारी कर सकते थे। ब्रिटेन से जर्मनी के युद्ध की स्थिति में एक बात उसे फ्रांस से अलग कर रही थी, ब्रिटेन और जर्मनी के बीच समुद्री चैनल विद्यमान थे। इनके कारण थल मार्ग से जर्मन सेना ब्रिटेन नहीं पहुँच सकती थी। उनके पास केवल दो उपाय थे–या तो जल मार्ग या वायु मार्ग। समुद्री मार्ग से आने पर ब्रिटिश सेना जर्मन सेना को रोकने में सक्षम थी, जबकि फ्रांस और जर्मनी के बीच ऐसा नहीं था। जर्मन सेना फ्रांस तक थल मार्ग से

सन् 1940 : जर्मन हवाई हमले से ध्वस्त हुआ लंदन। बम हमलों से बचने के लिए बम शेल्टर में शरण लिये कुछ बच्चे।

आसानी से आ गई थी। ऐसी स्थिति में हिटलर वायु मार्ग से ही हमला करने को प्राथमिकता देना चाहता था।

ब्रिटिश साम्राज्य के लिए यह अग्नि-परीक्षा का समय था। चर्चिल के लिए यह चुनौती का समय था। ब्रिटिश जनता को चर्चिल के कुशल नेतृत्व एवं अदम्य साहस पर पूरा विश्वास था। चर्चिल हिटलर के आक्रमण का मुँहतोड़ जवाब देने के लिए कृतसंकल्प थे। 4 जून, 1940 को हाउस ऑफ कॉमंस में चर्चिल ने बहुत महत्त्वपूर्ण एवं जोशीला भाषण दिया। उन्होंने कहा, ''यद्यपि यूरोप का विस्तृत क्षेत्र और अनेक प्राचीन एवं प्रतिष्ठित देश नाजी शासन तंत्र की अधीनता में चले गए हैं, पर हम जर्मनी के सामने न तो झुकेंगे और न ही हार मानेंगे। हम अंत तक संघर्ष करेंगे, चाहे इसकी कोई भी कीमत चुकानी पड़े। हम कभी आत्मसमर्पण नहीं करेंगे।''

प्रधानमंत्री चर्चिल ने न सिर्फ जोशीला भाषण दिया, वरन् ब्रिटेन की रक्षा के लिए पुख्ता इंतजाम भी किए। फ्रांस के जर्मनी के समक्ष आत्मसमर्पण के बावजूद ब्रिटेन ने एक दिन की लड़ाई में ही फ्रांस के अनेक जहाजी बेड़ों को

ध्वस्त कर दिया था और उन्हें जर्मनी के हाथों नहीं जाने दिया, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं।

चर्चिल ने जर्मनी से मुकाबले के लिए हरसंभव तैयारी की। यूरोप के अन्य देशों से भागकर आए लगभग 1 लाख विदेशी उस समय ब्रिटेन में रह रहे थे। इन लोगों पर विश्वास करना मुश्किल था। हो सकता था, इनमें से कुछ लोग नाजी पार्टी के समर्थक हों और पता नहीं कौन नाजी-विरोधी। अत: चर्चिल ने कड़ा फैसला करते हुए यह आदेश पारित किया कि 16 वर्ष से अधिक और 60 साल से कम आयु वर्ग के सभी नागरिकों को नजरबंद कर दिया जाए। इस फैसले से बहुत से निर्दोष लोगों को कठिनाई हुई, परंतु युद्ध को ध्यान में रखकर यह करना पड़ा। समुद्री किनारों पर काँटेदार बाड़ लगवाई गईं। सड़कों पर अनेक तरह के अवरोध पैदा किए गए, ताकि जर्मन सेना और तोपों को आने में असुविधा हो। खुले स्थानों की बिजली काट दी गई ताकि जर्मन छाताधारी! सैनिक नीचे न उतर पाएँ। हवाई मार्ग से उतरनेवाले सैनिकों को रोकने के भी पुख्ता इंतजाम किए गए।

हिटलर सोच रहा था कि फ्रांस के आत्मसमर्पण करने की स्थिति में ब्रिटेन भी उससे संधि की पहल करेगा, परंतु चर्चिल एक बहादुर और स्वाभिमानी पुरुष थे। उन्होंने ऐसा करना उचित नहीं समझा। 19 जुलाई, 1940 को हिटलर ने ब्रिटेन से युद्ध बंद करने की अपील की; किंतु ब्रिटिश सरकार ने इसका उत्तर देना उचित नहीं समझा, क्योंकि इसके तीन दिन पहले ही हिटलर ने ब्रिटेन पर आक्रमण का आदेश दिया था। किंतु ब्रिटिश सेना की जबरदस्त किलेबंदी से उसे हमला करने की योजना टालनी पड़ रही थी। जर्मनी को अपनी सेना ब्रिटेन तक पहुँचाने के लिए भारी संख्या में जहाजों की आवश्यकता थी। जर्मनी के पास अभी इतनी बड़ी संख्या में जहाज उपलब्ध नहीं थे। उसने यूरोप के अन्य प्रदेशों से जहाज मँगवाने की कोशिश की। परंतु ब्रिटेन की वायुसेना ने उनमें से अनेक पोतों को बंदरगाहों में ही नष्ट कर दिया। ब्रिटेन की नौसेना भी मजबूत थी। हिटलर उससे टकराने से पहले जीत के लिए आश्वस्त होना चाहता था।

द्वितीय विश्व युद्ध शुरू होने के समय लंदन से 10 लाख के करीब बच्चों एवं महिलाओं को लंदन से बाहर भेज दिया गया था। परंतु लंदन पर हमला न होने की स्थिति में लंदनवासी पुन: लंदन वापस आ चुके थे। अब चूँकि हमला करने की योजना जर्मनी बना चुका था, इसलिए प्रधानमंत्री

चर्चिल ने पुनः बच्चों एवं महिलाओं को लंदन से बाहर सुरक्षित स्थानों पर भेजना प्रारंभ कर दिया। पहले उन्हें अमेरिका या अन्य औपनिवेशिक क्षेत्रों में भेजने की योजना थी। परंतु उन्हें समुद्री मार्ग द्वारा भेजते वक्त जर्मनी द्वारा हमले की पूर्ण आशंका को ध्यान में रखते हुए यह योजना बदल दी गई। अब उन्हें ब्रिटेन के ही गाँवों एवं अन्य सुरक्षित स्थानों पर भेजने का प्रबंध किया गया। नागरिकों के साथ-साथ कई सरकारी दफ्तरों को भी अन्य सुरक्षित स्थानों पर स्थानांतरित कर दिया गया। बड़ी संख्या में होटलों को सरकार के अधीन लेकर उसमें कामचलाऊ दफ्तर खोले गए। छोटी से लेकर बड़ी कंपनियाँ लंदन से बाहर सुरक्षित स्थानों पर चली गईं।

प्रधानमंत्री चर्चिल ने अधिक-से-अधिक नागरिकों की युद्ध में भागीदारी के लिए होम गार्ड्स संगठन गठित किया। दो महीने के अंदर 10 लाख से अधिक होम गार्ड्स जवान देश की आंतरिक एवं बाह्य सुरक्षा से निबटने के लिए तैयार थे। उन्हें कई तरह की ट्रेनिंग देकर विपरीत परिस्थितियों में नागरिकों की सुरक्षा एवं उनके लिए आवश्यक वस्तुओं के इंतजाम हेतु प्रशिक्षित किया गया। देश के कई बड़े एवं छोटे कारोबारों में पुरुषों की कमी पड़ने लगी, क्योंकि भारी संख्या में ब्रिटिश पुरुष होम गार्ड्स में भरती हो गए थे। इनके स्थान पर स्त्रियाँ काम में दिलचस्पी दिखाने लगीं। देश के लिए लड़नेवाले बहादुर सैनिकों की सहायता के लिए स्त्रियाँ सामने आने लगीं।

जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, डनकिर्क की घटना के बाद अगर हिटलर ब्रिटेन पर हमला कर देता तो शायद उसकी लड़ाई आसान हो जाती। स्थिति अब स्पष्ट रूप से सामने थी कि उस वक्त के हमले की स्थिति में ब्रिटेन को इतना समय ही नहीं मिल पाता कि वह इतनी तैयारी कर पाता। परंतु अब ब्रिटेन युद्ध से निबटने की पूरी तैयारी कर चुका था।

ब्रिटेन की बढ़त

आखिर 8 अगस्त, 1940 को जर्मनी ने वायु मार्ग से ब्रिटेन पर हमला कर दिया। आक्रमण की योजना के अंतर्गत सर्वप्रथम वह ब्रिटिश वायु सेना का विनाश करना चाहता था। जर्मन वायु सेना के प्रधान गोरिंग को पूर्ण विश्वास था कि वह हजारों बमवर्षक विमानों के आक्रमण से ब्रिटिश विमानों को नेस्तनाबूद कर देगा। उनकी विमान पट्टियों को ध्वस्त कर देगा। साथ ही युद्ध के लिए आवश्यक सामग्री बनानेवाली औद्योगिक इकाइयों को भी ध्वस्त

कर देगा। पहले ही दिन जर्मनी ने 200 हवाई जहाजों के साथ हमला किया। इसके बाद यह संख्या निरंतर बढ़ती गई। जर्मन हवाई जहाज शुरुआत में समुद्री तट पर हमला कर रहे थे। 18-19 अगस्त को जर्मन बमवर्षक विमानों ने टेम्स नदी के किनारे और दक्षिणी इंग्लैंड के प्रमुख स्थानों पर बम बरसाए। जवाब में दूसरे दिन ब्रिटिश विमानों ने जर्मनी के महत्त्वपूर्ण औद्योगिक नगरों पर बम बरसाए। शुरुआती कुछ दिनों तक हमले की गति तीव्र नहीं थी। पर कुछ दिनों बाद बम-वर्षक विमानों की संख्या बढ़ा दी गई और साथ ही हमले की गति तीव्र हो गई। जर्मन बमवर्षक ब्रिटेन के बंदरगाहों, जहाजी ठिकानों और जहाजों पर बम-वर्षा करने लगे। 8 अगस्त से 18 अगस्त तक 10 दिन में हुए हमलों में कुल मिलाकर 1,000 से अधिक विमान नष्ट हुए। जर्मनी के हमले का जवाब देने में ब्रिटिश सेना भी पीछे नहीं थी। वह बहुत ही साहस और शक्ति के साथ जर्मन हमले का जवाब दे रही थी। जर्मनी से जो जहाज ब्रिटिश साम्राज्य पर बम गिराने भेजा जाता था, उसे ब्रिटिश विमान पीछा करते हुए जर्मन क्षेत्र में ही गिराने का प्रयास करते थे। 2 सितंबर को जर्मन लड़ाकू विमान लंदन पर बम बरसाने लगे। उनका उद्‍देश्य लंदन को नुकसान पहुँचाकर वहाँ के नागरिकों को त्रस्त एवं हतोत्साहित करना था। लंदन पर बड़ी संख्या में बम बरसाए गए, जिससे शहर का बड़ा भाग क्षतिग्रस्त हो गया। लंदन के अतिरिक्त अन्य महानगरों एवं बंदरगाहों पर भी बम बरसाए गए, जिससे ब्रिटेन को अपार क्षति हुई। परंतु ऐसी परिस्थिति में भी ब्रिटिश नागरिक एकजुट रहे। वे अदम्य साहस का परिचय देते हुए चर्चिल के नेतृत्व में हमलावरों को पस्त करने में लगे रहे। ब्रिटिश वायु सेना ने भी इस बीच जर्मनी में विभिन्न रेलवे लाइनों, कारखानों, बंदरगाहों, औद्योगिक इकाइयों, हवाई अड्‍डों और अन्य आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण स्थानों पर तबाही मचाई। लगातार तीन महीने, अगस्त से अक्तूबर 1940 तक, जर्मन हवाई हमला जारी रहा। अक्तूबर 1940 के अंत तक जर्मनी के 2,500 हवाई जहाज नष्ट हो चुके थे। उसे इस युद्ध में भारी नुकसान उठाना पड़ रहा था। अब उसे लगने लगा था कि ब्रिटेन को हराना आसान नहीं था। उसे हमला जारी रखने में लाभ के बजाय नुकसान ही नजर आने लगा। अक्तूबर 1940 के अंत तक जर्मन हमले की धार कम हो गई और उसकी पराजय निश्चित हो गई।

जर्मनी पस्त हो चुका था, जबकि उसके पास ब्रिटेन से बहुत अधिक संख्या में हवाई जहाज थे। लेकिन चर्चिल की युद्धनीति, ब्रिटिश सेना के

अदम्य साहस एवं रण-कुशलता, साथ ही ब्रिटिश नागरिकों का अपने नेतृत्व पर विश्वास और उसे हर स्थिति में मदद करना जर्मनी की कमजोरी के प्रमुख कारण थे। युद्ध में बढ़त मिलने के बाद चर्चिल ने अपने वायु सैनिकों के प्रति आभार व्यक्त किया और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। चर्चिल ने ब्रिटिश नागरिकों का भी धन्यवाद किया, जिन्होंने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में उनके नेतृत्व पर भरोसा रखा एवं उन्हें हर संभव सहायता प्रदान की।

ब्रिटेन अब दुनिया भर में जर्मनी के विरुद्ध प्रचार करने में जुट गया। परिणाम यह हुआ कि संसार के तमाम देश जर्मनी विरुद्ध आवाज मुखरित करने लगे। नॉर्वे, हॉलैंड, बेल्जियम, डेनमार्क और फ्रांस–जिन पर जर्मनी ने विजय हासिल की थी–ने भी ब्रिटेन के साथ अपने सुर मिला लिये। जर्मनी की नाजी तानाशाही के विरुद्ध ऐसा वातावरण बन गया, जिससे प्रभावित होकर अमेरिका भी लड़ाई में शामिल हो गया। अमेरिका ने सन् 1940 के अंत में ब्रिटेन से बरमूडा और वेस्टइंडीज में कुछ नौसैनिक एवं हवाई पट्टियों को लेकर उसे 50 पुराने विध्वंसक जहाज दे दिए, ताकि ब्रिटिश नौसेना की शक्ति में वृद्धि हो सके। साथ ही अमेरिका ने ब्रिटेन की विमान, टैंक, राइफल, गोला-बारूद आदि की माँगों की पूर्ति के लिए उत्पादन बढ़ाने का आश्वासन भी दिया।

ऑपरेशन सीलो

जर्मनी ने यह ठान लिया था कि वह किसी भी प्रकार से ब्रिटेन को परास्त करेगा। परंतु वह जमीनी लड़ाइयों में ब्रिटेन को मात दे पाने में सफल नहीं हो पा रहा था। अतः हिटलर ने जल मार्ग से उस पर नकेल कसने की योजना बनाई। अगस्त 1940 में इंग्लिश चैनल को पार करके उसने ब्रिटेन पर हमला बोल दिया। इस समुद्री लड़ाई में दोनों ही देशों की नौसेनाओं के मध्य जबरदस्त लड़ाई हुई। परंतु यहाँ भी जर्मन सेना को कोई बड़ी सफलता हासिल नहीं हुई और अंततः उसे पीछे हटना पड़ा। इस लड़ाई को 'ऑपरेशन सीलो' का नाम दिया गया।

ब्रिटेन को धराशायी न कर पाने के आरोप जर्मन सेनानायकों के मत्थे ही मढ़े जा रहे थे। जर्मन जनरल लुफ्तवेफ इससे काफी बेचैन था। अतः उसने लंदन शहर पर बमों की बौछार आरंभ कर दी। यह लड़ाई भी काफी दिनों

तक चली। जर्मन लड़ाकू विमान रात के अँधेरे का फायदा उठाकर अचानक बमों से हमला कर देते थे, जिसमें ज्यादातर बेकसूर मारे जाते थे। इस लड़ाई में 60 हजार से अधिक ब्रिटिश जनता मौत का निवाला बन गई, 87 हजार से अधिक लोग बुरी तरह घायल हुए और लगभग 2 लाख घर पूरी तरह बरबाद हो गए। लड़ाई में लंदन के 60 प्रतिशत भवन बरबाद हुए और तकरीबन इतने ही निर्दोष नागरिकों के मरने और घायल होने का प्रतिशत रहा। इस पूरी लड़ाई में समूचा लंदन बरबाद हो चुका था।

14 नवंबर, 1940 को भी जर्मन जंगी विमानों ने बहुत बड़ा हमला किया। इसमें जर्मन सेना के 449 जंगी विमान और 600 टन से अधिक विस्फोटक का इस्तेमाल हुआ। इस हमले में भी लंदन पर हजारों बमों की बारिश कर दी गई। लंदन पर यह जर्मन आक्रमण इतना भयानक साबित हुआ कि नवंबर माह आने तक वहाँ मरनेवालों की संख्या प्रति माह 6,000 से भी ऊपर जा रही थी।

❑

युद्ध का बढ़ता दायरा

"अमीरों के युद्ध में गरीब मरते हैं।"

—जीन पॉल सार्त्र

फ्रांस पर जर्मनी के आधिपत्य के बाद भू-मध्यसागर क्षेत्र में इटली अपनी नौसैनिक शक्ति बढ़ाने में लग गया था। उस क्षेत्र में इटली की स्थिति अच्छी हो गई थी। वह भू-मध्यसागर क्षेत्र में वायु सेना का प्रयोग करने तक में सक्षम हो गया था। इससे ब्रिटेन के लिए खतरा बढ़ गया था।

अफ्रीकी क्षेत्र में युद्ध

अगस्त 1940 में जब ब्रिटेन और जर्मनी युद्ध कर रहे थे, इटली का तानाशाह मुसोलिनी अफ्रीका में अपना साम्राज्य-विस्तार करने में लगा था। अगस्त 1940 में ही मुसोलिनी ने एओस्टा के ड्यूक के नेतृत्व में एक सैन्य टुकड़ी एरीट्रिया और इतालवी सोमालीलैंड से लाल सागर के तट पर स्थित ब्रिटिश सोमालीलैंड पर आक्रमण के लिए भेजी और उस पर कब्जा कर लिया। इसके बाद भी उसने भू-मध्यसागर पर ब्रिटेन के नियंत्रण को समाप्त करने के उद्देश्य से मिस्र एवं स्वेज नहर पर आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास किया। इसी बीच इटली ने ग्रीस पर भी आक्रमण कर दिया। ब्रिटेन ने ग्रीस को यथासंभव मदद पहुँचाई। ब्रिटेन ने क्रीट में नौसैनिक एवं हवाई अड्डे स्थापित किए, जिससे कुछ दिनों बाद ब्रिटिश एडमिरल कनिंघम ने इटली के
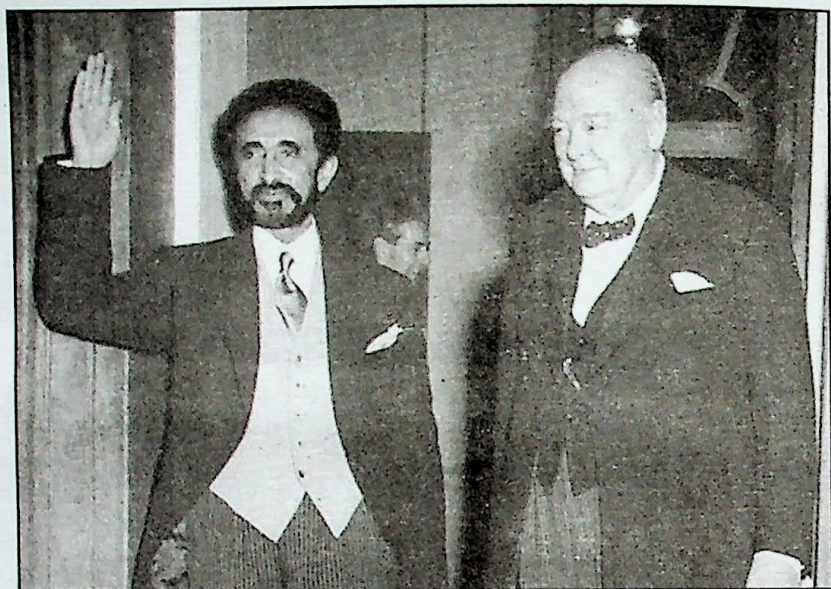
इथियोपियाई सम्राट् हेल सेलासी ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल के साथ।

बंदरगाह टोरंटो में उसके नौसैनिक युद्धपोतों पर विमानों से हमला किया और इटली के कई जहाजों को क्षतिग्रस्त कर दिया। दक्षिण अफ्रीका एवं ब्रिटेन के सैनिकों ने मिलकर इटली पर हमले शुरू कर दिए। दोनों के सम्मिलित हमले से इटली से लीबिया, सोमालीलैंड और अबीसिनिया मुक्त करा लिये गए। जनवरी 1941 तक बार्डिया और तोब्रुक पर भी ब्रिटिश सेना ने अधिकार कर लिया। अगले महीने बेंगाजी का बंदरगाह भी इटली के हाथ से निकल गया। यातायात एवं व्यापार की दृष्टि से बेंगाजी बंदरगाह अति महत्त्वपूर्ण था। महज ढाई से तीन महीनों के अंदर ब्रिटिश सेना ने इटली के 1.25 लाख सैनिकों को बंदी बनाया और उनके सैकड़ों टैंकों, तोपों और अन्य युद्ध-सामग्री को अपने अधिकार में ले लिया। ब्रिटिश सेना निरंतर इटली को करारी शिकस्त दे रही थी। मई में अंबा-अलाकी के युद्ध में पराजित होने के बाद इतालवी सेनानायक एओस्टा के ड्यूक ने आत्मसमर्पण कर दिया। इस तरह इथियोपिया पर सम्राट् हेल सेलासी का शासन पुनः स्थापित किया गया। 5 मई, 1941 को अबीसिनिया का पदच्युत सम्राट् अपनी राजधानी अदिस अबाबा वापस चला गया और ब्रिटेन ने अबीसिनिया के स्वतंत्र राज्य को हर तरह से सहायता देना स्वीकार किया।

इस तरह उत्तरी अफ्रीका में इटली की हार से हिटलर चिंतित था। उसने जनरल अरबिन रोमेल के नेतृत्व में जर्मन सेनाएँ भेजीं। रोमेल ने मार्च 1941 में ब्रिटिश सेना पर अचानक हमला कर दिया। ब्रिटिश सेना जवाब के लिए तैयार नहीं थी, नतीजतन उसे वहाँ हार का सामना करना पड़ा और मई तक उसे मिस्र की सीमा के अंदर तक पीछे हटना पड़ा। जनरल रोमेल के नेतृत्व में जर्मन सेना लगातार आगे बढ़ती गई। इस तरह उत्तरी अफ्रीका जर्मनी के हाथ में आ गया।

बालकन क्षेत्र में युद्ध

28 अक्तूबर, 1940 को तड़के मुसोलिनी ने ग्रीस पर आक्रमण कर दिया। आक्रमण से सिर्फ 3 घंटे पहले उसने ग्रीस सरकार को अल्टीमेटम देकर युद्ध के लिए सूचित किया। इटली ने यह फैसला हिटलर से बिना परामर्श किए ही लिया था।

युद्ध के शुरुआती दिनों में इतालवी सैनिकों को सफलता मिल रही थी; परंतु कुछ ही दिनों में यूनानियों ने उन्हें करारी टक्कर देनी शुरू कर दी। 22 नवंबर को इटालियनों ने कोरित्सा पर अधिकार कर लिया, पर दिसंबर के अंत तक यूनानियों ने इटली की सेना को पीछे हटने को विवश कर दिया, इस युद्ध में ब्रिटेन की वायुसेना एवं जहाजी बेड़े ने यूनानी विमानों एवं पनडुब्बियों के सहयोग से एड्रियाटिक सागर से इटली की सेना के लिए भोजन सामग्री एवं युद्ध में प्रयुक्त होनेवाली वस्तुओं को ले जानेवाले जहाजों का विध्वंस कर ग्रीस की भरपूर मदद की। ग्रीस पर इटालियनों की जीत का स्वप्न अधूरा रह गया। इटालियनों की हार से हिटलर खुश नहीं था। वह बालकन प्रदेशों पर अधिकार चाहता था, जिससे आगे चलकर रूस के विरुद्ध आक्रमण के समय उनका सामरिक प्रयोग कर सके। ऐसी स्थिति में हिटलर सहित कई अन्य जर्मन सेनाध्यक्ष ग्रीस को परास्त करने के लिए सेना भेजने पर विचार करने लगे। इस कार्य के लिए जर्मनी ने हंगरी और रूमानिया को भी अपने साथ मिला लिया। हिटलर ने रूमानिया के शासक कैरोल को मजबूर किया कि वह हंगरी, बुल्गारिया और रूस को अपने राज्य के विभिन्न भाग सौंप दे। रूमानिया के विभाजन से यह राज्य काफी संकुचित हो गया और राजा कैरोल ने सिंहासन त्याग दिया। तब हिटलर ने शेष रूमानिया की अखंडता की गारंटी

देकर कैरोल के उत्तराधिकारी माइकल को शासन सौंपकर अपना अनुयायी बना लिया।

उधर हंगरी और बुल्गारिया की बुनियादी माँगें पूरी कर हिटलर ने उन्हें अनुगामी बना लिया। इस तरह हंगरी, बुल्गारिया और रूमानिया जर्मनी के पक्षधर हो गए। हिटलर चाहता था कि यूगोस्लाविया भी उससे इसी प्रकार की संधि कर ले, ताकि जर्मन सेनाएँ निर्बाध उस राज्य में आ-जा सकें।

जर्मन सेना को ग्रीस पर हमला करने के लिए यूगोस्लाविया होकर ही गुजरना था। इसी को ध्यान में रखकर 10 मार्च, 1941 को जर्मनी ने यूगोस्लाविया सरकार के सामने संधि की शर्तें पेश कीं और यूगोस्लाविया ने निर्विरोध संधि स्वीकार कर ली। यूगोस्लावियाई सरकार इससे अवगत थी कि जर्मन सेना से युद्ध उसके वश की बात नहीं थी; परंतु यूगोस्लावियाई जनता इसे अपना अपमान समझ बैठी। उसे इस तरह जर्मनी के समक्ष घुटने टेकना गवारा नहीं हुआ और 27 मार्च को जनता एवं कुछ सैन्य अधिकारियों ने रीजेंट पॉल की सरकार को अपदस्थ करके राजा पीटर द्वितीय के नेतृत्व में नई सरकार का गठन किया।

यूगोस्लाविया पर जर्मन आक्रमण

नई सरकार ने जर्मनी का मुकाबला करने का निश्चय किया। इससे क्रुद्ध होकर हिटलर ने यूगोस्लाविया के सर्वनाश का आदेश दे दिया। 6 अप्रैल, 1941 को जर्मन सेना ने यूगोस्लाविया में प्रवेश किया और उसी दिन उसकी राजधानी बेलग्रेड तक पहुँच गई। बेलग्रेड पर जबरदस्त बमबारी की गई। इस युद्ध में तीन दिनों के भीतर लगभग 20 हजार सैनिक मारे गए। बेलग्रेड के साथ-साथ यूगोस्लाविया के अन्य नगरों पर भी जर्मन सेना ने आसानी से अधिकार कर लिया। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जर्मनी के लिए यह इकतरफा युद्ध बल्कि खुंदक निकालने जैसा था। हालात यहाँ तक बिगड़े कि राजा पीटर और उसके मंत्रियों को लंदन भागना पड़ा। 17 अप्रैल को यूगोस्लाविया के प्रधान सेनापति नेडिच ने जर्मन सेना के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। समर्पण के बाद यूगोस्लाविया का विभाजन कर दिया गया। जर्मनी ने सर्बिया का भाग अपने आधिपत्य में रखा। क्रोशिया में स्वतंत्र शासन तंत्र स्थापित कर दिया गया, परंतु उसका संचालन जर्मनी के हाथों में ही था। शेष

भाग को इटली, हंगरी और बुल्गारिया के बीच बाँट दिया गया। इस प्रकार यूगोस्लाविया का अंत हो गया।

यूगोस्लाविया पर जीत के बाद ग्रीस पर हमले की योजना बनी। ग्रीस की सहायता के लिए ब्रिटेन ने सेना भेजी थी। ब्रिटेन के 60 हजार सैनिकों के साथ मिलकर यूनानियों ने जर्मन सेना से मुकाबले की कोशिश की; परंतु उनकी एक नहीं चली। इस युद्ध में ब्रिटेन के लगभग 15 हजार सैनिक मारे गए और शेष सैनिकों को किसी प्रकार बचाकर ब्रिटेन वापस बुलाया गया। 24 अप्रैल को ग्रीस सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया। ग्रीस के शासक जॉर्ज द्वितीय और उसके मंत्रिमंडल के सदस्य किसी तरह जान बचाकर क्रीट के द्वीप में आ गए। क्रीट ग्रीस का एक प्रदेश था। जर्मन सेना ने वहाँ तक उनका पीछा किया। 20 मई, 1941 को 1,500 जर्मन वायु सैनिक क्रीट में उतारे गए। इनके अतिरिक्त कई हजार सैनिकों को हवाई जहाजों द्वारा क्रीट में लगातार लाया जा रहा था। ब्रिटेन के हवाई जहाजों ने यहाँ कड़ा मुकाबला किया, परंतु जर्मन सेनाओं को क्रीट पर कब्जा करने से नहीं रोका जा सका। क्रीट के आधिपत्य से हिटलर को ब्रिटिश नौसेना पर आक्रमण करने का अड्डा मिल गया।

सीरिया, ईरान और इराक की स्थिति

जब जर्मनी यूगोस्लाविया और क्रीट पर अधिकार करने में व्यस्त था, उस समय मित्र राष्ट्रों द्वारा सीरिया और इराक की ओर से स्वेज नहर की ओर बढ़ने की आशंका उत्पन्न हुई। जर्मनी चाहता था कि सीरिया, ईरान और इराक पर उसका कब्जा हो जाए, ताकि उसी रास्ते से आगे बढ़ते हुए वह ब्रिटिश साम्राज्य तक पहुँच सके। यूगोस्लाविया और ग्रीस पर आक्रमण का भी यही उद्देश्य था कि जर्मनी को वहाँ से ब्रिटेन तक जाने का रास्ता मिल सके। सीरिया फ्रांसीसी सरकार के अधीन था। सीरिया का फ्रांसीसी उच्चायुक्त विशी सरकार की हिटलर के साथ सहयोग नीति का समर्थक था। जर्मनी के लोग सीरिया पर अपना दबदबा बढ़ा रहे थे। जर्मन सेना ने सीरिया का उपयोग सामरिक कार्यों के लिए करना प्रारंभ कर दिया था। इसे रोकने के लिए ब्रिटिश सेनाएँ फिलिस्तीन से सीरिया में प्रवेश कर गईं। ब्रिटिश शासक चाहते थे कि सीरिया के फ्रांसीसी शासक उसके साथ मिल जाएँ, परंतु ऐसा नहीं हो पाया। अंततः जून 1941 में ब्रिटेन का सीरिया पर संपूर्ण अधिकार हो गया।

ऐसी ही मिलती-जुलती स्थिति इराक की भी थी। जर्मन लोग यहाँ भी अपना प्रभाव बढ़ा रहे थे। 4 अप्रैल, 1941 को राशिद अली गिलानी ने ब्रिटेन समर्थक सरकार का इराक में तख्तापलट कर दिया। इससे इराक पर जर्मन प्रभुत्व स्थापित होने की संभावना बढ़ गई। राशिद अली जर्मनी का प्रबल समर्थक था। इसके जवाब में ब्रिटिश सरकार ने तुरंत इराक के प्रमुख बंदरगाह बसरा पर अपने सैनिक उतारने प्रारंभ कर दिए। सन् 1932 में ब्रिटेन और इराक के बीच संधि हुई थी, जिसके अनुसार ब्रिटेन को इराक के कुछ सामरिक महत्त्व के क्षेत्रों में अतिरिक्त सैनिक भेजने का अधिकार था। बावजूद इसके राशिद अली ने ब्रिटिश सेना का विरोध किया और मौके का लाभ उठाते हुए जर्मनी से मदद माँगी।

हिटलर इस समय क्रीट पर हमले की तैयारी में व्यस्त था, इसलिए उसने थोड़े से हवाई जहाज राशिद अली की सहायता हेतु भेज दिए। साथ ही विशी सरकार से सीरिया के माध्यम से इराक को मदद करने का अनुरोध किया। ब्रिटिश सैनिकों ने 19 मई को हब्बानिया के करीब इराकी सेना पर आक्रमण कर उसे परास्त कर दिया। राशिद अली ब्रिटिश सेना का मुकाबला नहीं कर पा रहा था। 30 मई, 1941 तक ब्रिटिश सेनाएँ बगदाद पहुँच गईं। राशिद अली और उसके सहयोगियों को जान बचाना मुश्किल हो गया था। बच-बचाकर वे ईरान भाग गए। इस तरह इराक में पूर्ववत् ब्रिटिश समर्थक सरकार स्थापित की गई। इराक के प्रमुख शहरों पर ब्रिटेन का आधिपत्य हो गया।

ब्रिटिश सेना अब स्वतंत्र फ्रांसीसी सेना से मिलकर सीरिया पर हमले की योजना बनाने लगी। दोनों ने सीरिया पर आक्रमण किया; सीरिया में विशी सरकार के उच्चायुक्त हेनरी डेंज ने पूरी ताकत से मुकाबला किया, परंतु उसका अधिक देर तक डटे रहना मुश्किल था। 12 जुलाई को हेनरी डेंज ने युद्ध-विराम के लिए ब्रिटिश सेना के सम्मुख प्रस्ताव पेश किया। अंततः सीरिया के सभी प्रमुख ठिकानों पर ब्रिटेन का आधिपत्य हो गया। इस तरह मित्र राष्ट्रों को सीरिया और इराक में महत्त्वपूर्ण सफलता मिल गई, जिससे मध्य-पूर्व में उनकी सामरिक स्थिति सुदृढ़ हो गई।

जिस तरह जर्मनी सीरिया और इराक में अपने पैर पसारना चाहता था, उसी तरह ईरान में भी अपनी सामर्थ्य बढ़ाना चाहता था। ईरान की सरकार पर जर्मनी का अच्छा प्रभाव था। इस स्थिति को देखते हुए ब्रिटेन ने दक्षिणी ईरान पर हमला कर दिया। उधर रूस नहीं चाहता था कि ईरान पर किसी विदेशी

मुल्क का अधिकार हो। रूस की दक्षिणी सीमा ईरान से लगती थी, इसलिए उसने भी उत्तरी ईरान पर हमला कर दिया। ईरान इतना शक्तिशाली नहीं था, जो रूस और ब्रिटेन के सामूहिक हमलों का मुकाबला कर सके। ईरान ने हार मान ली व रूस और ब्रिटेन के समक्ष समर्पण कर दिया। अगस्त 1914 में ईरान में ऐसी सरकार स्थापित की गई, जो जर्मनी के नाजीवादियों के विचार से तालमेल नहीं रखती थी। ईरान के नए प्रधानमंत्री के रूप में अल फारनकी का चयन हुआ। अल फारनकी ने ब्रिटेन और रूस से संधि करके भविष्य में शांति की पहल और जर्मन गुप्तचरों एवं पक्षपातियों के विरुद्ध भी कार्रवाई का आश्वासन दिया। ईरान के पास प्रचुर मात्रा में मिट्टी का तेल था, जिसे उसने ब्रिटेन और रूस को देने का वचन दिया।

इस प्रकार ब्रिटेन सीरिया, इराक और ईरान पर अपना वर्चस्व बहाल कर चुका था। ब्रिटेन की व्यक्तिगत तौर पर इराक या ईरान से कोई दुश्मनी नहीं थी। उसने जर्मनी पर अंकुश लगाने के लिए यह सब किया था।

❑

रूस पर जर्मनी का हमला

"लड़ाई चाहे दो व्यक्तियों के बीच हो या दो गुटों–राष्ट्रों के बीच, वह अपनी तह में बर्बादी छिपाए आगे बढ़ती है।"

—महात्मा गांधी

रूस और जर्मनी के मध्य 23 अगस्त, 1939 को समझौता हुआ था। इस समझौते के बाद दोनों ही देशों के बीच 1940 के मध्य तक दोस्ताना संबंधों का निर्वहन होता रहा। किंतु जर्मनी की महत्त्वाकांक्षी नीति से रूस परेशान हो रहा था। हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी पश्चिमी यूरोप में लगातार सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था। इससे परेशान होकर रूस ने जून 1940 में एस्टोनिया, लातीविया एवं लिथुआनिया पर कब्जा कर लिया और कुछ ही दिनों में इन देशों को अपने राज्य का अंग बना लिया। इस पर जर्मनी ने किसी प्रकार की प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की। इस जीत के बाद रूस और जर्मनी दोनों ही बालकन क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व बढ़ाने की बाट जोहने लगे। यहीं से इन दोनों देशों के बीच प्रतिद्वंद्विता की भावना जाग्रत् होने लगी। रूस ने रूमानिया को प्रभावित कर बिसराविया और उत्तरी बुकोविना क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। इसके बाद जर्मनी ने भी रूमानिया पर दबाव बनाना शुरू किया और रूमानिया को अपने कुछ प्रदेश हंगरी व बुल्गारिया को देने पड़े। इसके साथ ही जर्मनी ने रूमानिया को उसके बचे हुए राष्ट्र की अखंडता एवं स्वतंत्रता की गारंटी भी दी। यहीं से रूस और जर्मनी के मैत्रीपूर्ण संबंधों में दूरियाँ बढ़ने

रूसी विदेश मंत्री मोलोतोव और जर्मन विदेश मंत्री रिबेनट्रॉप।

लगीं। दोनों देशों के बीच तनाव बढ़ना शुरू हो गया। हिटलर अपनी सेना को बता चुका था कि वह रूस पर हमला करेगा और इसके लिए सारी तैयारियाँ पूरी कर ली जाएँ। इधर जर्मनी लगातार बालकन प्रदेशों पर अपनी बढ़त बना रहा था। बुल्गारिया और हंगरी पर तो जर्मन प्रभाव था ही, हिटलर ने फिनलैंड सरकार से वार्त्ता करके वहाँ भी जर्मन सेनाएँ भेजनी शुरू कर दीं। इस बीच 27 सितंबर, 1940 को त्रिदेशीय समझौता हुआ। यह समझौता जर्मनी, जापान और इटली के बीच हुआ। इसके अनुसार ये तीनों देश हमले की स्थिति में एक-दूसरे को राजनीतिक, आर्थिक और सैन्य सहायता प्रदान करेंगे। समझौते के खिलाफ रूसी सरकार ने जर्मन सरकार को विरोध-पत्र लिखे। तत्कालीन जर्मन विदेश-मंत्री रिबेनट्रॉप ने फिनलैंड से समझौते का कारण बताते हुए लिखा कि वहाँ जर्मन सेनाएँ इसलिए भेजी गई थीं ताकि नॉर्वे में ब्रिटिश हवाई आक्रमणों के विरुद्ध सुदृढ़ सामरिक व्यवस्था की जा सके और स्पष्ट किया कि यह समझौता अमेरिका के संभावित हस्तक्षेप को ध्यान में रखकर किया गया था। किंतु रूसी विदेश मंत्री मोलोतोव इस उत्तर से संतुष्ट नहीं हुए। पुनः 18 अक्तूबर को जर्मन विदेश मंत्री रिबेनट्रॉप ने रूसी विदेश मंत्री मोलोतोव को एक पत्र लिखा। उस पत्र के अनुसार–जर्मनी, जापान, इटली और रूस पारस्परिक दीर्घकालिक समझौता वार्त्ता करने के लिए बर्लिन में मिलें। मोलोतोव

ने वार्त्ता के लिए सहमति दे दी।

समझौता वार्त्ता की शर्तों को जानने के लिए 12 नवंबर, 1940 को बर्लिन में मोलोतोव ने रिबेनट्रॉप और हिटलर से बातचीत की। हिटलर ने मोलोतोव को यह विश्वास दिलाया कि ब्रिटिश साम्राज्य का विभाजन एवं पतन निश्चित है। इसके बाद जर्मनी, इटली, जापान और रूस मिलकर उसके विस्तृत क्षेत्र का विभाजन करेंगे। हिटलर ने मोलोतोव को सभी आपसी मतभेदों को भुलाकर आपसी सामंजस्य बरकरार रखने के लिए कहा और पारस्परिक सहयोग की नीति अपनाते हुए चारों देशों के लाभ की बात बताई। मोलोतोव को रिबेनट्रॉप ने जर्मनी, इटली और जापान की संधि में शामिल होने का प्रस्ताव दिया। इस संधि के अंतर्गत सभी देशों के प्रभाव-क्षेत्र निर्धारित किए जाने की बात स्पष्ट रूप से उल्लिखित थी। प्रभाव-क्षेत्र के लिए जर्मनी को यूरोपीय क्षेत्रों के अतिरिक्त मध्य अफ्रीका, इटली को यूरोपीय भूभागों के साथ उत्तर-पूर्व अफ्रीका, जापान को दक्षिण-पूर्व एशिया और रूस को फारस की खाड़ी से भारत तक अपना प्रभाव बढ़ाने की आजादी थी। रूस हिंद महासागर क्षेत्र में भी अपने साम्राज्य-विस्तार के लिए स्वतंत्र था। रूस की तरफ से स्तालिन ने कुछ और विषयों पर हिटलर से स्पष्टीकरण चाहा, जिनमें रूमानिया, हंगरी, ग्रीस, स्वीडन आदि से संबंधित बातें थीं; किंतु जर्मनी ने इन सवालों के संतोषजनक उत्तर नहीं दिए। अंततः स्तालिन ने इन चारों देशों द्वारा प्रस्तावित समझौता वार्त्ता को कुछ और शर्तों के साथ स्वीकार करना तय किया। वे शर्तें थीं–

- फिनलैंड से जर्मन सरकार अपनी सेना वापस बुला ले, क्योंकि अब वह रूसी सरकार के अधिकार-क्षेत्र में मान लिया गया था।
- बाटुम और बाकू के दक्षिणी भाग में फारस क्षेत्र में रूस को अपना प्रभाव बढ़ाने का अधिकार दिया जाए।
- बुल्गारिया और रूस के बीच परस्पर संधि द्वारा डार्डनलीज के जलडमरूमध्य में सोवियत संघ की सुरक्षा की व्यवस्था की जाए और उस क्षेत्र में सोवियत सरकार को जल एवं थलसेना रखने का अधिकार मिले।
- जापान उत्तरी सखालिन (रूस) में कोयला एवं प्राकृतिक तेल का अधिकार छोड़ दे।

बारबरोसा अभियान

हिटलर ने रूस की इन शर्तों का कोई उत्तर देना मुनासिब नहीं समझा। उसे लगा कि रूस को इस समझौता वार्त्ता में शामिल नहीं करना चाहिए। अत: उसने रूस पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। 18 दिसंबर, 1940 को हिटलर ने आदेश दिया कि जर्मन सेना रूस पर आक्रमण करने के लिए इस प्रकार तैयार हो कि ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध समाप्त होने से पूर्व ही रूस को बुरी तरह से पराजित कर उस पर नियंत्रण किया जा सके। इसे 'बारबरोसा अभियान' नाम दिया गया। हिटलर ने अपने जांबाज सिपाहियों को इस योजना की पूर्ति के लिए 15 मई, 1941 तक का समय दिया।

रूस के विरुद्ध युद्ध में हिटलर ने रूमानिया और फिनलैंड को अपना प्रमुख सहयोगी बनाया। इन दोनों देशों में उसने अपनी सेना के महत्त्वपूर्ण गढ़ स्थापित किए, ताकि रूस के विरुद्ध आक्रमण में वहाँ से हरसंभव आवश्यकता की पूर्ति होती रहे। फरवरी 1941 तक रूमानिया में लगभग 7 लाख जर्मन सैनिक डेरा डाल चुके थे। उधर 1 मार्च को बुल्गारिया से भी वार्त्ता कर हिटलर ने उसे भी रूस के विरुद्ध युद्ध में अपने साथ कर लिया था। अब बुल्गारिया में भी जर्मन सैनिक ठिकाने बनने लगे। वहाँ भी लाखों की संख्या में जर्मन सैनिक भेजे जाने लगे। हिटलर की मंशा थी कि वह रूस का यूक्रेनियाई विस्तृत उपजाऊ क्षेत्र, युराल पर्वतमाला के कीमती खनिज पदार्थ और काकेशस के तेल-भंडार पर सबसे पहले कब्जा कर ले। जर्मनी के बुल्गारिया से मैत्रीपूर्ण संबंध रूस को रास नहीं आ रहे थे। उसने इसका कड़ा विरोध किया एवं इसके जवाब में 5 अप्रैल को उसने यूगोस्लाविया से मैत्री कर ली, परंतु अगले ही दिन जर्मनी और इटली ने मिलकर यूगोस्लाविया पर आक्रमण कर दिया। 1941 के अंत तक यूगोस्लाविया एवं ग्रीस पर जर्मनी का आधिपत्य स्पष्ट रूप से स्थापित हो चुका था, जिसका उल्लेख हम पूर्व में कर चुके हैं। इस बीच 13 अप्रैल को रूस ने जापान से एक समझौता कर जर्मनी के आक्रमण की स्थिति में उसके मोरचे न खोलने की सहमति ले ली।

जून 1941 तक विश्व युद्ध में ब्रिटेन अकेला पड़ चुका था। पहले ब्रिटेन को फ्रांस से सहायता मिलती थी, परंतु उसकी पराजय के बाद वह अकेला ही जर्मनी व इटली से मुकाबला कर रहा था। यूरोप पर एकच्छत्र राज्य कायम कर चुके जर्मनी व इटली साम्राज्य नॉर्वे से स्पेन तक और अटलांटिक

समुद्र-तट से इगियन सागर तक अपना विस्तार कर चुका था। ब्रिटेन को केवल अपने औपनिवेशिक राज्यों से सहायता मिल रही थी। अमेरिका बीच-बीच में उसे युद्ध-सामग्री के रूप मे सहायता भेज रहा था। हालाँकि वह युद्ध-सामग्री देने के एवज में ब्रिटेन से पहले उसका मूल्य वसूल करता था। बाद में 4,000 करोड़ रुपए तक की युद्ध-सामग्री उधार दिए जाने की व्यवस्था की गई। परंतु अमेरिका जो युद्ध-सामग्री भेजता था, जर्मनी रास्ते में ही उसे डुबो देने की कोशिश करता था। बाद में अमेरिकी जहाज जर्मन जहाजों से डटकर मुकाबला करने लगे। इस प्रकार ब्रिटेन की सहायता करते-करते सन् 1942 में अमेरिका स्पष्ट रूप से जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में उतर चुका था।

अगर जर्मनी अमेरिका के लड़ाई में शामिल होने से पूर्व अपनी सारी शक्ति ब्रिटेन के विरुद्ध लगा देता तो शायद उसे सम्मिलित रूप से अमेरिका और ब्रिटेन से नहीं जूझना पड़ता। हिटलर का ब्रिटेन से कोई वैर नहीं था। लगभग संपूर्ण यूरोप पर वह अपना आधिपत्य स्थापित कर चुका था। ब्रिटेन का अधिकांश साम्राज्य चूँकि यूरोप से बाहर था, इसलिए हिटलर के हित ब्रिटेन के हित से नहीं टकराते थे।

हिटलर रूस पर भी केवल इसलिए आक्रमण करना चाहता था, ताकि उसे अपने साम्राज्य-विस्तार का मौका मिले और यूरोपियन सभ्यता एवं ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार पाए। जर्मनी की सोच थी कि रूस अंदर से बहुत कमजोर है। वहाँ साम्यवादी विचारधारा चल रही थी। रूस का साम्राज्य विशाल था, जिसमें विभिन्न जातियों के लोग रहते थे। विभिन्न जातियों की राष्ट्रीयता की अवधारणा अलग-अलग थी। जर्मनी इसका लाभ लेकर रूस को विखंडित करना और रूसी जनमानस को अपने पक्ष में करना चाहता था।

हिटलर पूरी तैयारी से आक्रमण करना चाहता था, ताकि कुछ ही महीनों में रूस को परास्त कर दिया जाए। रूस से प्राप्त धन-संपत्ति का उपयोग वह अमेरिका और ब्रिटेन के खिलाफ युद्ध में करना चाहता था।

आखिरकार 22 जून, 1941 को जर्मन सेना ने रूस पर आक्रमण कर दिया। उसने आरोप लगाया कि रूस ने जर्मनी की सीमा पर भारी संख्या में सेना एकत्रित कर जर्मन सीमाओं का उल्लंघन किया था। जर्मन सेना ने उस पर आक्रमण करने के दो कारण बताए। पहला, रूस 1941 की ग्रीष्म ऋतु से जर्मनी पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था और दूसरा, ब्रिटेन, रूस एवं अमेरिका के हस्तक्षेप के कारण ही पराजय स्वीकार करने को तैयार नहीं था।

इसलिए उसने ब्रिटेन को परास्त करने से पहले रूस से दो-दो हाथ करने का फैसला किया। रूस पर विजय के बाद पूरी शक्ति के साथ ब्रिटेन पर आक्रमण कर दिया जाएगा।

इस युद्ध में जर्मनी के साथ फिनलैंड, हंगरी और रूमानिया भी शामिल थे। इनके अतिरिक्त कई अन्य यूरोपियन देश भी जर्मनी के साथ मिलकर रूस पर आक्रमण कर रहे थे। इटली और स्लोवाकिया ने भी रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी थी, साथ ही डेनमार्क और विशी की फ्रांसीसी सरकार ने उससे संबंध विच्छेद कर लिये थे। युद्ध शुरू होते ही 22 जून को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल ने रूस को यथासंभव सहायता देने का आश्वासन दिया। 24 जून को अमेरिका ने भी हिटलर के विरुद्ध रूस को सहायता का आश्वासन दिया। 22 जुलाई को ब्रिटेन और रूस के मध्य पारस्परिक सहयोग के मसौदे पर समझौता हो गया और अगस्त में अमेरिका ने रूस को पूर्ण आर्थिक सहयोग का वचन दिया।

युद्ध के शुरुआती दिनों में जर्मन सेना बड़ी रफ्तार से रूस में आगे बढ़ रही थी। उत्तरी क्षेत्र में दो माह के अंदर लिथुआनिया, लातीविया, एस्टोनिया और फिनलैंड रूस के प्रभाव से मुक्त होकर जर्मनी के अधिकार में आ गए थे। सितंबर के आरंभ तक जर्मन सेना लेनिनग्राद तक पहुँच गई। किंतु रूसी
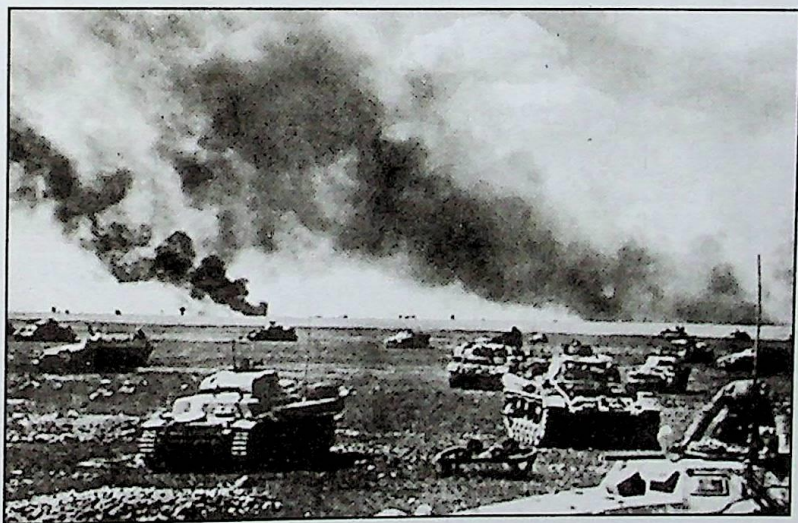
22 जून, 1941 : जर्मन सेना का रूस पर आक्रमण।

सेना के अदम्य साहस एवं वीरतापूर्ण लड़ाई से जर्मनी को लेनिनग्राद पर अधिकार करने में सफलता नहीं मिली। पोलैंड के जिस पूर्वी हिस्से में सन् 1939 में रूस ने कब्जा किया था, वह भी उसकी अधीनता से आजाद होकर जर्मनी के नियंत्रण में चला गया। जर्मन सेना रूस पर तीन तरफ से हमला कर रही थी-

- बाल्टिक सागर की ओर से लेनिनग्राद की ओर।
- स्मोलनस्क की ओर से मॉस्को की ओर।
- यूक्रेन की ओर से दक्षिणी क्षेत्र में।

वानरंडस्टेर के नेतृत्व में जर्मन सेना ने कीव के दक्षिण में रूसियों को जबरदस्त शिकस्त दी। इस युद्ध में रूस के 1.5 लाख सैनिकों को बंदी बनाया गया। 20 सितंबर को कीव पर जर्मनों का अधिकार हो गया। मध्य क्षेत्र में वानबाक की सेनाएँ एक माह में 500 मील तक आगे बढ़ गईं, परंतु स्मोलनस्क में रूसी सेनाओं ने इनका डटकर मुकाबला किया और जर्मन सेनाओं को तीन माह तक यहीं रोके रखा। यहाँ हिटलर और उसके प्रधान सेनापति ग्राखित्स एवं हाल्डर के बीच मतभेद उत्पन्न हो गए। हिटलर चाहता था कि पहले उत्तर में लेनिनग्राद और दक्षिण में रूस के औद्योगिक एवं कृषि-प्रधान क्षेत्र यूक्रेन पर पूर्ण आधिपत्य हो जाए, जबकि उसके सेनापति चाहते थे कि पहले मॉस्को पर अधिकार किया जाए। अक्तूबर के अंत तक जर्मन सेनाएँ मॉस्को पहुँचीं; परंतु तब तक परिस्थिति बदल चुकी थी। मॉस्को के लिए जर्मन और रूसी सेना के मध्य नवंबर में संघर्ष आरंभ हो गया। उसी समय दक्षिणी क्षेत्र में जर्मनी ने डॉन नदी के मुहाने पर रोस्तोव नगर पर अधिकार कर लिया।

जर्मन सेना यूक्रेनिया भी पहुँची, जहाँ रूसी सेना पीछे हट गई। इस तरह युक्रेनिया पर भी जर्मनी का कब्जा हो गया।

इस युद्ध में रूसी सरकार को देश की जनता से पूरा समर्थन मिल रहा था। उसे लग रहा था कि वह न सिर्फ अपने देश की रक्षा के लिए, बल्कि अपने सिद्धांतों, अधिकारों एवं नई व्यवस्था के लिए युद्ध कर रही थी। इसलिए जर्मन सेना को न सिर्फ सैनिकों से, बल्कि रूस की जनता से भी युद्ध करना पड़ रहा था।

सर्दी की मार

नवंबर में रूस में जबरदस्त सर्दी और बर्फ पड़नी शुरू हो गई। ऐसी स्थिति में जर्मन सेना को रूस में आगे बढ़ना मुश्किल लग रहा था। कहाँ तो वह मॉस्को पर अधिकार चाहती थी और कहाँ उसे लेनिनग्राद पर भी पूर्ण सफलता नहीं मिल पाई थी। इन क्षेत्रों पर विजय की कोई संभावना न देखते हुए हिटलर ने क्रीमिंया पर हमले की योजना बनाई। नवंबर 1941 में सेबस्टापुल किले के अतिरिक्त क्रीमिया का अधिकांश हिस्सा जर्मनी के आधिपत्य में आ गया। बाद में सेबस्टापुल इलाके पर भी उसका कब्जा हो गया।

लगातार छह महीने के घमासान युद्ध में हिटलर की सेना ने रूस की 5 लाख वर्ग मील भूमि पर अधिकार कर लिया था। लेकिन जहाँ वह रूस को नेस्तनाबूद करना चाहता था, वहीं अब तक उसे मॉस्को और लेनिनग्राद पर भी विजय हासिल नहीं हुई थी। स्तालिन ने युद्ध के दौरान हमेशा यह ध्यान रखा कि उनकी रक्षा-पंक्ति न टूटने पाए। रूस के पास बहुत विस्तृत भू-क्षेत्र था। इससे रूसी सेना को पुन: संगठित होने के लिए पर्याप्त स्थान मिल जाता था। स्तालिन ने रूसी सेना को कभी जर्मन सेना के घेरे में नहीं फँसने दिया। उधर जर्मन सेना को खाने-पीने की व्यवस्था में भी दिक्कतें आ रही थीं। ऐसा खासकर इसलिए भी हो रहा था, क्योंकि रूसी सेना जिस किसी क्षेत्र से पीछे
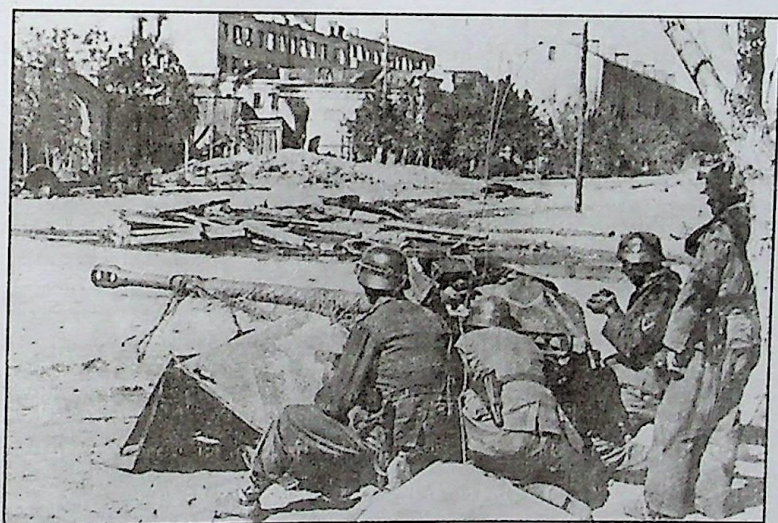
8 अक्तूबर, 1942 : रूस के स्टालिनग्राद में जर्मन मोरचा।

हटती थी, उसे जब लगता कि वह क्षेत्र अब दुश्मनों के हाथ चला जाएगा तो वह उसे स्वयं ही उजाड़ देती थी। इसका मतलब साफ था कि उनके संसाधनों का उपयोग जर्मन सेना न कर पाए। रूसी सेना के अधिकांश कारखाने, जिनका उपयोग युद्ध के लिए किया जाता था, वे सभी यूराल क्षेत्र में स्थित थे, जिससे सेनाओं को पर्याप्त मात्रा में अस्त्र-शस्त्र एवं अन्य युद्धोपयोगी सामान उपलब्ध होते रहते थे।

जर्मनी और रूस के युद्ध ने एक बात स्पष्ट कर दी थी कि अब रूस मित्र राष्ट्रों के साथ था। ब्रिटेन और अमेरिका ने मान लिया था कि उन्हें रूस की सहायता करनी चाहिए, ताकि जर्मनी पर उसकी जीत दर्ज हो सके। इस युद्ध से पहले अमेरिका और ब्रिटेन साम्यवाद के विरोधी थे। इन दोनों देशों के शासनाध्यक्षों को लगता था कि स्तालिन एक क्रूर शासक है और ईसाई धर्म का विरोधी है। परंतु अब यह विचार बदलने लगा था। अब यही दोनों देश स्तालिन की मदद को तैयार थे और यह भी कहने लगे थे कि हिटलर की अमानवीय और क्रूर मानवता-विरोधी नीति के विरुद्ध उन्हें रूस का साथ जरूर देना चाहिए। अब उन्हें रूस के साम्यवाद से कोई मतलब नहीं था। उसे अब उसका निजी मामला बताया जा रहा था।

अब स्तालिन के समर्थन में गिरजाघरों में प्रार्थनाएँ होने लगीं। उसे एक महापुरुष का दर्जा दिया जाने लगा। गिरजाघरों में रूस की रक्षा एवं जीत के लिए प्रार्थनाएँ होने लगीं। रूसी साम्यवाद की हर तरफ प्रशंसा की जाने लगी। रूस को ब्रिटेन और अमेरिका से हथियार व अन्य युद्ध-सामग्री मिलने लगी। उधर पश्चिमी क्षेत्रों में युद्ध का नया मोरचा खोल दिया गया, जहाँ जर्मन सैनिकों को कड़ा मुकाबला करना पड़ रहा था। इससे जर्मन सैनिकों की रूस के विरुद्ध मोरचाबंदी ढीली पड़ने लगी। रूस यही तो चाहता था कि जर्मन सैनिकों को कहीं और युद्ध में उलझाया जाए।

सन् 1941-42 के शीतकाल में जब जर्मनी मॉस्को और लेनिनग्राद में युद्धरत था, उस समय अगर पश्चिमी क्षेत्र में ब्रिटेन तैयार होता तो जर्मनी की नाक में नकेल कसने का शायद यह अच्छा अवसर होता। परंतु ब्रिटेन ने उस वक्त वैसा नहीं किया। हालाँकि छिटपुट तरीके से वह हवाई जहाजों से जर्मनी पर गोलाबारी अवश्य कर रहा था, पर उसकी धार उतनी तीव्र नहीं थी कि जर्मनी का लेनिनग्राद से ध्यान हटता। उस वक्त रूस की सहायता के लिए युद्ध-सामग्री भी अधिक नहीं भेजी जा रही थी। अमेरिका ईरान की खाड़ी

और हिंद महासागर के रास्ते अपने जहाज रूस भेज सकता था पर यह रास्ता बहुत लंबा था। ब्रिटेन युद्ध-सामग्री नॉर्वे के रास्ते भेज सकता था, पर यहाँ जर्मनी के हमले का खतरा था। ऐसी स्थिति में दिसंबर 1941 में रूसी सेना ने जिस अदम्य साहस और वीरता से जर्मन सेनाओं को पीछे धकेलना शुरू किया, वह इतिहास में 'महान् वीरता के साथ युद्ध' के तौर पर जाना जाता रहेगा।

जर्मन सैनिकों ने जिन-जिन रूसी क्षेत्रों पर अधिकार किया था, वहाँ घोर अत्याचार किए। मासूम लोगों के साथ ज्यादती की गई। बच्चों, वृद्धों और स्त्रियों से बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया गया। महिलाओं से बलात्कार किया, वयस्क लड़कियों के साथ दुर्व्यवहार किया। विरोध करने की स्थिति में घोर अमानवीय कार्रवाइयाँ की गईं। लाखों लोगों की गिरफ्तारी हुई। सर्द व खुले आसमान के नीचे शिविरों में उन्हें बंदी बनाकर रखा गया। बंदियों को कड़ी यातनाएँ दी गईं। जर्मनी ने रूस के साथ लड़ाई में यह स्पष्ट कर दिया था कि वह सचमुच मानवता का दुश्मन था, यह युद्ध न सिर्फ दो देशों के लड़ाई थी, बल्कि यहाँ दो विचारधाराएँ एवं दो धर्म परस्पर शत्रुतापूर्ण नहीं बल्कि मानवता-विरोधी व पक्षधर युद्ध कर रहे थे।

❑

अमेरिकी प्रतिक्रिया

"सभी युद्ध धोखे पर आधारित होते हैं।"

—सुन त्जु

अमेरिका में हुए राष्ट्रपति चुनाव में फ्रेंकलिन डी. रूजवेल्ट 5 नवंबर, 1940 को तीसरी बार चुन लिये गए। अमेरिका में लगातार तीसरी बार चुने जाने वाले रूजवेल्ट प्रथम व्यक्ति थे। निर्वाचित होने के उपरांत प्रथम रेडियो भाषण में ही रूजवेल्ट ने विश्व युद्ध में फासीवादियों के बढ़ते खतरे से आगाह करते हुए देश के लिए अधिक-से-अधिक युद्ध-सामग्री निर्माण की बात कही, जिससे वे निकट भविष्य में आनेवाले खतरों से निपटने में पूरी तरह सक्षम हों। पहले अमेरिकी राष्ट्रपति यूरोप की इस लड़ाई से बचकर रहने की नीति अपना रहे थे, वारसा की संधि से वे सहमत नहीं थे। अमेरिका नहीं चाहता था कि कोई उसके लैटिन अमेरिकी विशाल धन के भंडार, स्वर्ण, अन्य बेशकीमती धातुओं तथा द्रव्यों की लालसा में उस पर हमला करे, जिससे अकारण किसी प्रकार का संकट उत्पन्न हो। अमेरिका ने विश्व युद्ध के प्रारंभ से पर्ल हार्बर पर हमले तक युद्ध में अपनी प्रत्यक्ष भागीदारी नहीं की; परंतु वह मित्र राष्ट्रों को अप्रत्यक्ष रूप से युद्ध-सामग्री की आपूर्ति बराबर करता रहा।

रूजवेल्ट ने पहली बार सन् 1933 में राष्ट्रपति निर्वाचित होते ही सोवियत संघ को मान्यता प्रदान की, साथ ही विश्व में शांति व्यवस्था कायम

करने के लिए सामूहिक सुरक्षा को बढ़ावा दिया। सन् 1937 में जब जर्मनी में नाजीवाद अपना कद बढ़ा रहा था, उसी वक्त अक्तूबर में अपने भाषण में उन्होंने शांतिप्रिय राष्ट्रों से एकजुट होकर विश्व में अराजकता व अशांति फैलानेवालों का विरोध करने की अपील की थी। परंतु विश्व युद्ध के समय अमेरिकी नागरिकों का मत तीन भागों में विभक्त था। सर्वाधिक लोगों का मानना था कि अमेरिका को युद्ध से दूर रहना चाहिए; दूसरा मत था कि मित्र राष्ट्रों को सहायता देते हुए अपने को सीमित रखा जाए और तीसरे मत के लोगों का मानना था कि देश की सुरक्षा के लिए अमेरिका को भी युद्ध में भाग लेना चाहिए। रूजवेल्ट तीसरे मत के पक्षधर थे, परंतु वे बहुमत की उपेक्षा नहीं करना चाहते थे। अत: उनका ध्यान रखते हुए रूजवेल्ट ने कानून में फेर-बदल कर अस्त्र संवरण नीति से अलग 'धन लेकर सामान देने' की नीति को अपनाते हुए मित्र राष्ट्रों को अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्रदान की।

उधर फ्रांस पर आधिपत्य के बाद जर्मनी ने ब्रिटेन पर बमबारी आरंभ कर दी और 'रॉयल नेवी' के कई जंगी जहाजों को नष्ट कर दिया। यूरोप के कई देशों पर आधिपत्य कायम करने के उपरांत जर्मनी को रूस पर आक्रमण करते देख विभिन्न देशों में हिटलर समर्थक नाजीवादी ताकतों का मनोबल बढ़ने लगा, जिससे लैटिन अमेरिंकी देशों और अमेरिकी आम नागरिकों के मन में शंका के बादल मँडराने लगे। इससे अमेरिकी राजनीति में काफी फेर-बदल हुआ। जहाँ पहले लोग युद्ध में हिस्सा न लेने के पक्ष में थे, वहीं अब वे युद्ध कर जर्मनी को परास्त करने को कह रहे थे। रूजवेल्ट ने तत्काल अपने रक्षा बजट को दुगुना कर दिया। युद्ध के पूर्व के वर्षों में प्रत्येक वर्ष जहाँ 1,000 विमान बनते थे, अब 1,200 तक बनने लगे। इसे वर्ष 1941 में और बढ़ाकर अगले तीन वर्ष में 50,000 विमान बनाने का लक्ष्य रखा गया, जो युद्ध-समाप्ति के समय तक 60,000 को पार कर चुका था। इसके साथ-साथ 28 हजार करोड़ डॉलर की राशि से 200 जंगी जहाजों का निर्माण भी जारी था। प्रत्येक जंगी जहाज की अधिकतम क्षमता 55 हजार टन रखी गई थी। रूजवेल्ट ने लैटिन अमेरिका में नाजीवाद के प्रभाव पर रोक लगाने के लिए आचार-संहिता तैयार की, जिसे 'मुनरो डॉक्टरीन' कहा गया।

रूजवेल्ट इस बात से भली-भाँति अवगत थे कि वर्तमान में किसी अंतरराष्ट्रीय कानून-व्यवस्था से किसी देश को पूर्णतया सुरक्षित नहीं समझा जा सकता। युद्ध में प्रयुक्त अत्याधुनिक उपकरणों एवं यातायात की सुविधाओं

से देशों के बीच के फासले काफी सिमट गए थे। अमेरिकी नाविक सचिव नोक्स ने विदेश मंत्रालय को एक रिपोर्ट दी, जिसमें यूरोपीय अटलांटिक महासागर में प्रवेश के तीन द्वार बताए–पहला उत्तरी सागर, दूसरा इंग्लिश चैनल तथा तीसरा जिब्राल्टर। नोक्स के अनुसार, ये तीनों ही द्वार ब्रिटेन के नाविक बेड़ों की निगरानी के कारण सुरक्षित माने जा रहे थे। परंतु अमेरिकी विदेश सचिव कॉर्डल हॉल को यह चिंता सता रही थी कि ब्रिटेन की पराजय के उपरांत यह सब सुरक्षित नहीं रह पाएगा। रूजवेल्ट के अनुसार, आजाद रहने की चार मुख्य शर्तें थीं–पहली, मत व्यक्त करने की आजादी; दूसरी, धर्म की आजादी; तीसरी, गरीबी से मुक्ति तथा चौथी, भय से पूर्ण मुक्ति। रूजवेल्ट ने इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए नाजीवादियों से सुरक्षा के लिए मित्र राष्ट्रों की प्रत्यक्ष मदद करना मंजूर कर लिया। सीनेट ने भी इसे मंजूरी दे दी।

रूजवेल्ट-चर्चिल बैठक

हिटलर जून 1941 से अपना ध्यान रूस के विरुद्ध युद्ध में केंद्रित किए हुए था; परंतु उस वक्त भी ऐसा कतई नहीं था कि शेष विश्व उसकी दृष्टि से ओझल था। रूस से युद्ध के साथ-साथ उसकी पनडुब्बी-सेना ब्रिटिश मालवाहक जहाजों और नौसैनिक यानों को नष्ट करने में लगी थी। जर्मन पनडुब्बियों ने सैकड़ों ब्रिटिश जहाज डुबो दिए थे। ऐसी विकट स्थिति में अमेरिका ने कुछ तात्कालिक उपाय किए। उसने डेनमार्क से समझौता करके ग्रीनलैंड में वायु सेना एवं नौसेना के अड्डे स्थापित किए। 9 जून को जर्मन पनडुब्बियों ने एक अमेरिकी मालवाहक जहाज को डुबो दिया। उस वक्त राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने कड़ा रुख अख्तियार करते हुए जर्मनी, इटली एवं उनके अधीन आठ देशों की स्थानीय संपत्ति के अवरोधन का आदेश दिया। कुछ दिन बाद अमेरिका ने आइसलैंड में सेना भेजकर लगभग 3,000 मील के अटलांटिक क्षेत्र की देखरेख अपने हाथों में ले ली। इस तरह, ब्रिटेन और अमेरिका एक ही तरह की समस्याओं से जूझ रहे थे। दोनों ही देशों के जहाज डुबोए जा रहे थे। अतः दोनों ही देश नाजियों के उत्कर्ष का दमन चाहते थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अमेरिका और ब्रिटेन निकट आ रहे थे।

उधर रूस के साथ इस युद्ध में कई परिवर्तन हो रहे थे। दूसरी ओर जापान के बिगड़ते रवैए ने भी चर्चिल और रूजवेल्ट को सकते में डाल दिया था। अतः दोनों देशों को आपसी बातचीत कर रणनीति बनाने की आवश्यकता
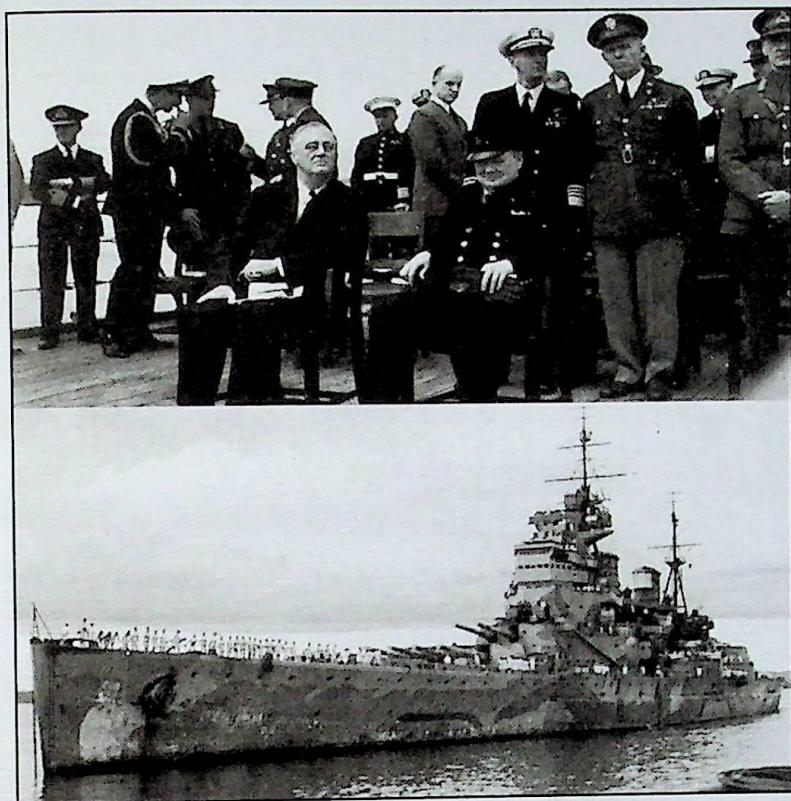
जंगी जहाज 'प्रिंस ऑफ वेल्स' पर रूजवेल्ट-चर्चिल बैठक, जहाँ 'अटलांटिक आचार-संहिता' का प्रारूप तैयार हुआ (ऊपर)। नीचे उस जहाज का चित्र।

महसूस हुई। इससे पूर्व उनके बीच पत्रों द्वारा विचारों का आदान-प्रदान होता रहा था। परंतु यह ऐसी पहली चर्चा थी, जिसमें दोनों आमने-सामने थे। इस बैठक के लिए चर्चिल अपने सुरक्षा दस्ते के साथ प्रख्यात जंगी जहाज 'प्रिंस ऑफ वेल्स' पर सवार हुए। इस युद्धपोत की सुरक्षा के लिए अनेक डेस्ट्रॉयर तैनात किए गए। सुरक्षा के मद्देनजर सभी रेडियो सिग्नल तोड़ दिए गए। उधर अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट 'ऑगस्टा' नामक जंगी जहाज से न्यू फाउंडलैंड के पास अटलांटिक सागर में चर्चिल से मिले। इस महत्त्वपूर्ण बैठक में रूजवेल्ट के सहयोगी हैरी हॉपकिंस भी शामिल थे। यहाँ ऐतिहासिक अटलांटिक आचार-संहिता के प्रारूप को जन्म दिया गया। इसी आचार संहिता को संयुक्त राष्ट्र संघ का भ्रूण माना जाता है। अगले तीन दिन दोनों राष्ट्राध्यक्षों के बीच

वार्त्ता चली। इस वार्त्ता में युद्ध के उद्देश्य, जर्मनी से निबटने के लिए साझा कार्यक्रम और युद्ध के बाद की व्यवस्था पर चर्चा हुई। वार्त्ता के मूल स्वरूप पर एक संयुक्त घोषणा-पत्र तैयार किया गया। इस घोषणा-पत्र को 'अटलांटिक चार्टर' कहा गया। इस साझा घोषणा-पत्र में जर्मनी द्वारा जीते गए विभिन्न यूरोपीय राज्यों की जनता में हिटलर के झूठे प्रचार के विरुद्ध पश्चिमी राज्यों के पक्ष को अधिक प्रामाणिकता से रखकर उनका सहयोग प्राप्त करना था। इस घोषणा-पत्र में निम्नलिखित प्रमुख बातें उल्लेखित थीं–

- ब्रिटेन और अमेरिका साम्राज्य-विस्तार नहीं चाहते।
- दोनों ही देश ऐसा कोई भी प्रादेशिक परिवर्तन नहीं चाहते, जिससे उस देश की जनता की स्वतंत्रता का हनन हो।
- दोनों देश अपने देश की शासन-पद्धति की डोर सीधे तौर पर जनता के हाथों सौंपने का सम्मान करते हैं तथा यह भी चाहते हैं कि जिन लोगों के स्वशासन के अधिकार छीन लिये गए हैं, वे उन्हें पुनः प्राप्त हों।
- दोनों देश इस बात का प्रयास करेंगे कि जो भी छोटे या बड़े देश, चाहे वे विजित देश हों या विजेता, उनकी आर्थिक उन्नति के लिए व्यापार, कच्चे माल एवं अन्य सुविधाएँ समान रूप से मुहैया कराने के प्रयास हों।
- दोनों देश चाहते हैं कि सभी देशों के बीच पूर्ण आर्थिक सहयोग विकसित हो, ताकि आम जनता, मजदूर और श्रमिकों की दशा में सुधार हो; उनका आर्थिक विकास हो एवं उनमें सुरक्षा की भावना जाग्रत् हो।
- दोनों देश मिलकर मानवता-विरोधी नाजियों का विनाश करेंगे और उसके बाद शांति-स्थापना के लिए सारे दरवाजे खोल दिए जाएँगे। सभी राष्ट्रों को अपनी सीमाओं में सुरक्षा प्रदान करेंगे और सभी देशों के लोग निर्भय होकर जीवन व्यतीत कर सकेंगे।
- दोनों देश मिलकर ऐसी व्यवस्था लाएँगे, जिसमें सभी मनुष्यों को महासागरों एवं समुद्रों में बेरोक-टोक आवागमन की सुविधा प्राप्त होगी।
- दोनों देश मिलकर भविष्य में यह प्रयास करेंगे कि सभी देश अंतरराष्ट्रीय शांति स्थापित करने के लिए निरस्त्रीकरण पर बल दें।

❑

11

अमेरिका पर जापान का हमला

''अँधेरा अँधेरे को समाप्त नहीं कर सकता, केवल प्रकाश वह काम कर सकता है। नफरत नफरत को दूर नहीं कर सकती, केवल प्रेम वह काम कर सकता है।''

—मार्टिन लूथर किंग जूनियर

जापान पिछले कुछ वर्षों से पूर्वी एशिया में अपनी अहमियत बढ़ाने के प्रयास में लगा था। वह ऐसी नवीन राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करने के प्रयास में था, जिसमें उसकी राजनीतिक और आर्थिक आकांक्षाओं की पूर्ति होती रहे। दूसरा विश्व युद्ध शुरू होने से जापान की महत्त्वाकांक्षाओं को बल मिला। जून 1940 में फ्रांस की पराजय के बाद जापानी नेता इंडोचाइना और डच ईस्ट इंडीज में अपना प्रभाव बढ़ाने की योजना में लग गए। उधर, ब्रिटेन इस समय सुरक्षित नहीं था। जापान जर्मनी और इटली के साथ था। जिस तरह जर्मनी यूरोप में और इटली अफ्रीका में अपनी प्रभुता बढ़ाने के लिए प्रयासरत था, उसी प्रकार जापान पूर्वी एशिया और प्रशांत महासागरीय क्षेत्र में अपने साम्राज्य-विस्तार की योजना बना रहा था। इस योजना में अमेरिका और रूस बाधक थे। अमेरिका चीन की मदद कर रहा था। उधर रूस की तरफ से जापान कभी निश्‍चिंत नहीं रह सकता था। ऐसी स्थिति में जापान ने जर्मनी के साथ गठबंधन के प्रयास शुरू कर दिए। नतीजतन सितंबर 1940 में जर्मनी, इटली और जापान के बीच त्रिदेशीय संधि हो गई। इस संधि के अनुसार, तीनों

राज्य आक्रमण की स्थिति में एक-दूसरे को राजनीतिक, आर्थिक, सैन्य एवं अन्य सभी प्रकार की मदद करेंगे।

इसके अलावा जापान ने यूरोप की नई व्यवस्था स्थापित करने में जर्मनी और इटली के नेतृत्व को मान्यता दे दी। बदले में जर्मनी और इटली ने ग्रेटर ईस्ट एशिया की नई व्यवस्था में जापान की प्रधानता को स्वीकृति दे दी। इस त्रिदेशीय संधि के बाद जापान ने नवंबर 1940 और जुलाई 1941 के बीच कई बार अमेरिका से समझौते की कोशिश की; परंतु इन वार्त्ताओं का कोई परिणाम नहीं निकला। जिस समय जर्मनी रूस पर आक्रमण कर रहा था, जापान परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए दक्षिण-पूर्वी एशिया में अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयास कर रहा था। साथ ही उसने विशी की फ्रांसीसी सरकार पर अपने वर्चस्व की धौंस जमाकर जुलाई 1941 में दक्षिणी इंडोचाइना क्षेत्र में अपने वायु एवं नौसैनिक अड्डे स्थापित कर लिये। अमेरिका जापान की इस कार्रवाई से खिन्न था। उसने इसका विरोध भी किया। कुछ दिन बाद अमेरिका और ब्रिटेन ने अपने देशों में जापान की संपत्ति का अवरोधन कर दिया। इसके साथ ही आपसी व्यापार पर भी प्रतिबंध लगा दिया। जापान को तेल की आपूर्ति अमेरिका से होती थी। अमेरिका ने तेल की आपूर्ति पर भी प्रतिबंध लगा दिया, जिससे जापान सरकार का चिंतित होना स्वाभाविक था। अब जापानी नेताओं ने पुनः अमेरिका से समझौते के प्रयास किए; किंतु जापानी सरकार अपनी विस्तारवादी नीति से पीछे हटने को तैयार नहीं थी।

इस तरह अमेरिका से समझौता-वार्त्ता का कोई परिणाम नहीं निकला। अमेरिका और ब्रिटेन ने संयुक्त रूप से जापान की विस्तारवादी नीति पर अंकुश लगाने की योजना बनाई। उधर जापान में 16 अक्तूबर, 1941 को कोनोयी मंत्रिमंडल का पतन हो गया और सैनिकों के नेतृत्व में जनरल तोजो की सरकार बनी। अमेरिका पर अब जापानी आक्रमण की आशंका बढ़ने लगी।

7 दिसंबर, 1941 को जिस तरह की आशंका थी, उसी के अनुरूप जापान ने बिना किसी पूर्व सूचना के पर्ल हार्बर पर आक्रमण कर दिया। पर्ल हार्बर बंदरगाह प्रशांत महासागर में हवाई द्वीप समूह स्थित अमेरिका की सामुद्रिक सेना का प्रधान केंद्र था। अमेरिका की जापान से सीधे तौर पर कोई दुश्मनी नहीं थी, इसलिए इस तरह के हमले से वह सकते में था। जिस दिन पर्ल हार्बर पर हमला हुआ, उसी दिन शंघाई, मलाया और सिंगापुर पर भी बम बरसाए
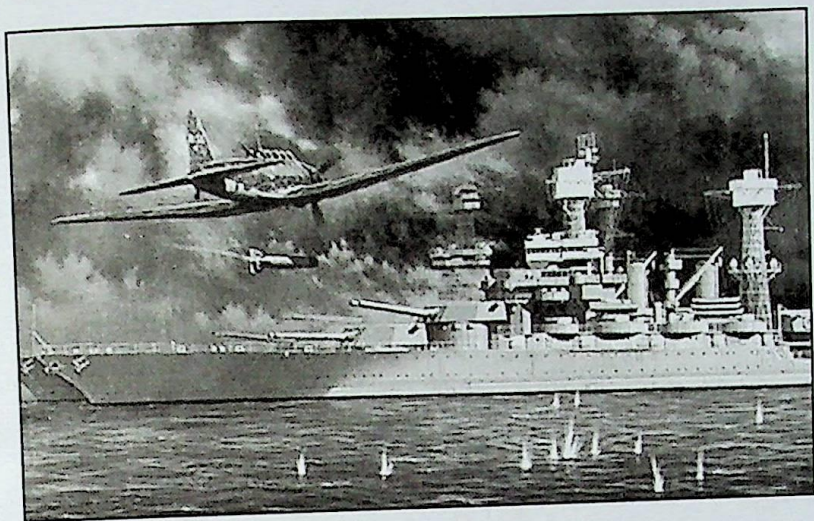
जापान का पर्ल हार्बर पर हमला।

गए। इस प्रकार जापान द्वारा अमेरिका को खुली चुनौती दे दी गई थी। अब अमेरिका का भी जापान के विरुद्ध खुलकर युद्ध में उतरना स्वाभाविक था।

8 दिसंबर को अमेरिकी कांग्रेस ने जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने का प्रस्ताव मंत्रिमंडल के समक्ष रखा और तत्काल उसे पारित कर दिया गया। इसके तीन दिन बाद 11 दिसंबर को जर्मनी और इटली ने भी अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इससे द्वितीय विश्व युद्ध की विकरालता अकस्मात् ही बहुत बढ़ गई।

पर्ल हार्बर की सफलता के बाद जापान ने दक्षिण-पूर्व एशिया और प्रशांत महासागर क्षेत्र में ब्रिटिश उपनिवेशों एवं अमेरिकी द्वीपों पर हमले प्रारंभ कर दिए। उसे सफलता भी प्राप्त हुई। ब्रिटेन के दो बड़े जंगी जहाजों 'प्रिंस ऑफ वेल्स' और 'रिपल्स' को जापानी सेना ने डुबो दिया। 7 दिसंबर को जापानी विमानों ने फिलिपींस में मनीला के समीप प्रमुख अमेरिकी हवाई अड्डों पर अचानक हमला करके सैकड़ों अमेरिकी विमानों को नष्ट कर दिया। जापानी आक्रमण की गति इतनी तीव्र थी कि महज तीन दिनों के अंदर उसने पूर्वी एशिया में ब्रिटेन और अमेरिकी वायुसेना को अपंग कर दिया। वर्ष 1942 के शुरुआती दिनों में संपूर्ण फिलिपींस द्वीप समूह जापानियों के नियंत्रण में चला गया था। इस क्षेत्र में जापानी वायु सैनिक और नौसैनिक मजबूत स्थिति में थे। इसका लाभ उठाते हुए जापानी सेना ने हांगकांग पर भी
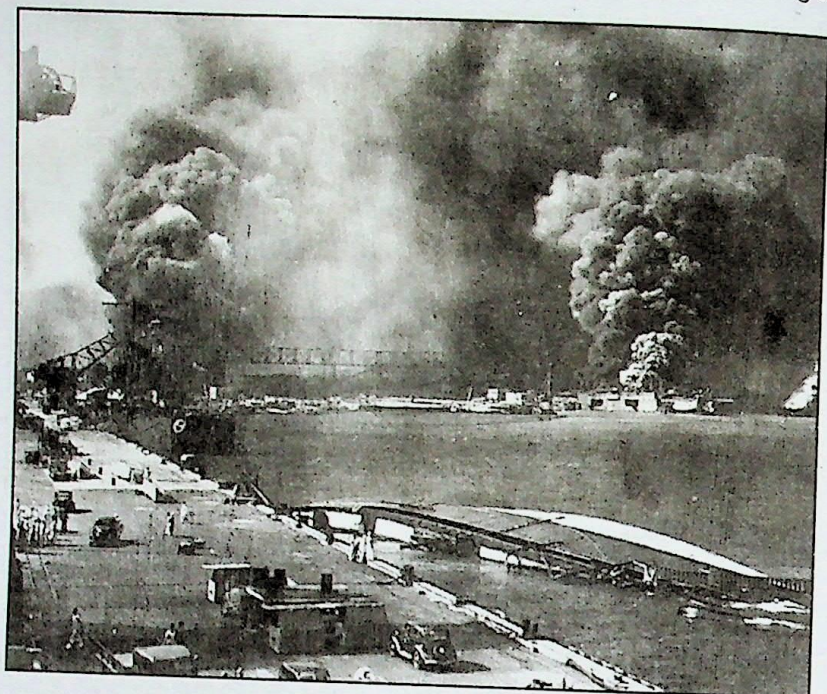
जापानी हमले के बाद धुएँ के गुबार में डूबा पर्ल हार्बर।

हमला कर दिया और विजय हासिल की। अमेरिकी कब्जेवाले गुआम पर भी जापानी सेना का कहर टूटा। वेक आइलैंड नामक महत्त्वपूर्ण द्वीप और सैनिक अड्डे भी अमेरिका के हाथों से निकल गए।

जापान का पर्ल हार्बर पर हमला

अमेरिका का हवाई द्वीप समूह। दिन रविवार, तारीख 7 दिसंबर, 1941; समय सुबह 8 बजकर 15 मिनट। एक युवा सैनिक होनोलूलू से पर्ल हार्बर की ओर तेजी से बढ़ रहा था, उत्तरी प्रशांत महासागर में अमेरिका का सबसे बड़ा नाविक अड्डा था पर्ल हार्बर। उस युवा सैनिक के पास वाशिंगटन से भेजा गया एक आवश्यक संदेश था। जिसमें अमेरिकी सेना प्रमुख जॉर्ज मार्शल के लिए संदेश था कि जापान से चल रही वार्त्ता समाप्त हो चुकी है, जिसे ध्यान में रखते हुए पर्ल हार्बर को सावधान किया जाता है। खराब मौसम के कारण सेना के रेडियो ट्रांसमीटर द्वारा वह संदेश नहीं भेजा जा सका। अत: वाशिंगटन से होनोलूलू होकर कोरियर के माध्यम से इसे पहुँचाने की जिम्मेदारी उस युवा

सैनिक को सौंपी गई थी। परंतु इससे पहले कि वह पर्ल हार्बर पहुँचता, उसने देखा कि अनगिनत बमवर्षक विमान बमों की बौछार किए जा रहे थे। युवा सैनिक सड़क के किनारे बने शेल्टर में छुपकर इस विध्वंसकारी दृश्य का मूकदर्शक बनकर रह गया। इसके पूर्व उसी दिन सुबह 6.45 बजे पर्ल हार्बर से कुछ ही दूरी पर अमेरिकी डिस्ट्रॉयर ने एक छोटी जापानी पनडुब्बी को मार गिराया था; परंतु सैनिक यह नहीं समझ सके थे कि यह मात्र एक पनडुब्बी नहीं थी, जापानी आक्रमणकारी बेड़ों का एक हिस्सा भर थी।

उसी दिन सुबह 7 बजे होनोलूलू में लगे राडार ने कुछ विमानों के पर्ल हार्बर की ओर बढ़ने के संकेत दिए। राडार के अनुसार, तकरीबन 137 मील के फासले पर विमानों का एक समूह निरंतर उस ओर बढ़ रहा था। राडार परिचालक ने इस बात की जानकारी तुरंत मुख्य टॉवर को दी; परंतु कंट्रोल टॉवर के इंचार्ज लेफ्टिनेंट कॉर्मिट टेलर ने सोचा कि वह लॉस एंजिल्स से अमेरिकी विमानवाहिनी के बमवर्षक बी-17 का समूह है। इस घटना को अभी आधा घंटा भी नहीं हुआ था कि 189 युद्धक विमानों ने पर्ल-हार्बर पर एक साथ, बिना रुके बमों की बौछार कर दी।

जापान ने इस हमले की योजना 5 नवंबर को ही बना ली थी। इसे अंजाम देने के लिए 25 नवंबर को एक विशाल नाविक बेड़ा क्यूरैल द्वीपों के बीच से बिना शोर-शराबे के उत्तरी प्रशांत महासागर की तरफ बढ़ा। इस हमले का ब्लू प्रिंट जापानी नौसेना प्रमुख एडमिरल इशोरोकू यामामातू ने स्वयं तैयार किया था। उसी दौरान अमेरिकी नौसेना विभाग टोकियो, बर्लिन एवं रोम में हुई बातों के संकेतों को प्राप्त कर उसे डिकोड कर स्थिति से अवगत होने की कोशिश में लगा था। उसने 3 दिसंबर को टोकियो के एक संकेत को पकड़ा, जिसमें कहा गया था कि 'अमेरिकी दूतावास के गुप्त दस्तावेजों को जला दिया जाए' और ठीक उसी समय दूसरी तरफ जापान के वाइस एडमिरल च्वीची नोगूमोर के नेतृत्व में 72 जंगी जहाजों का विशाल बेड़ा पर्ल हार्बर पर हमला करने चल पड़ा।

जापानी नौसेना लगभग 3,500 मील का समुद्री सफर तय कर पर्ल हार्बर पहुँची थी। 7 दिसंबर को प्रशांत महासागर में अवस्थित सबसे बड़े अमेरिकी नौसैनिक अड्डे में रविवार का दिन और सुहाना मौसम होने की वजह से काफी सारे सैनिक या तो छुट्टी पर थे या फिर अपने-अपने शिविरों में आराम कर रहे थे। उन्होंने सपने में भी नहीं सोचा था कि इस प्रकार किसी

हमले को अंजाम दिया जा सकता है। कोई प्रतिक्रिया न होने के कारण बड़ी संख्या में सैनिक व अधिकारी मारे गए एवं घायल हुए। हमले के समय पर्ल हार्बर पर 70 जंगी जहाज थे, जिनमें 8 पर्याप्त अधिक मारक क्षमता के थे। हमले के बाद केवल 1 जंगी जहाज सलामत बचा। एक घंटे के इस हमले में पर्ल हार्बर तहस-नहस हो चुका था। चारों ओर जहाजों का मलबा फैला था।

इस हमले के बारे में मेजर जनरल फुलर ने कहा कि यह हमला तीन चक्रों में किया गया। हमले के प्रथम चक्र में ही 19 अमेरिकी जंगी जहाज, 177 विमान और लगभग 2,800 सैनिक एवं अफसरों की जानें गईं; तकरीबन 2,000 सैनिक घायल या लापता हो गए। इस हमले में 6 बड़े जापानी जंगी जहाजों के 360 बमवर्षक विमानों ने भाग लिया। इनमें से लगभग 60 विमानों से जापान को भी हाथ धोना पड़ा। इस हमले में हुए नुकसान के विषय में कहा गया कि प्रथम विश्व युद्ध में हुए पूरे नुकसान से कहीं अधिक नुकसान इस एक घंटे के जापानी हमले से हो चुका था।

पूर्वी एशिया पर जापानी विजय अभियान

जापान अब पर्ल हार्बर, फिलिपींस एवं हांगकांग पर जीत हासिल कर चुका था। इससे उसकी सेना के हौसले बुलंद थे। अमेरिकी और ब्रिटिश अधीनस्थ कई द्वीप समूहों को अपने अधीन करने में जापान सफल रहा। अब वह पूर्वी एशियाई अन्य क्षेत्रों पर भी अपना परचम लहराने को बेताब था। पूर्वी एशिया में ब्रिटिश शक्ति का प्रधान केंद्र सिंगापुर, मलाया प्रायद्वीप के दक्षिण में एक छोटे से द्वीप पर स्थित है। ब्रिटिश सैनिकों की वहाँ जबरदस्त मोरचाबंदी और जंगी जहाजों का बड़ा जमावड़ा था। ब्रिटेन के विशाल साम्राज्य में पश्चिम से पूर्व और पूर्व से पश्चिम जानेवाले जहाजों को सिंगापुर में अपनी स्थिति सुरक्षित लगती थी। सिंगापुर में सैनिकों की मोरचाबंदी ऐसी थी कि कोई भी शत्रु समुद्री-मार्ग से वहाँ आक्रमण नहीं कर सकता था। परंतु ब्रिटिश सैनिकों ने यह नहीं सोचा था कि वहाँ स्थल भाग से भी आक्रमण किया जा सकता है। स्थल मार्ग मलाया से जुड़ता था। मलाया वास्तव में जंगली इलाका था। उस इलाके में घने व कँटीले जंगल थे। वहाँ तरह-तरह के जंगली एवं विषैले मच्छर पाए जाते थे। ब्रिटिश सेना ने कभी नहीं सोचा था कि किसी देश का सैनिक जान जोखिम में डालकर उस रास्ते से सिंगापुर आ पहुँचेगा। परंतु जापानी सेना उसी रास्ते से 31 जनवरी, 1942 को सिंगापुर

पहुँच गई। वहाँ खूब लड़ाई चली। 15 दिनों तक चली इस लड़ाई में ब्रिटिश सेना ने जापानियों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। सिंगापुर के समर्पण के बाद जापानियों ने डच ईस्ट इंडीज में सुमात्रा, बाली आदि द्वीपों पर अधिकार कर लिया और फरवरी के अंत में उसने मित्र राष्ट्रों के एक बड़े नौसैनिक बेड़े को, जिसमें कई क्रूजर एवं विध्वंसक जहाज सम्मिलित थे, लगभग नष्ट कर दिया। इस प्रकार जापानियों का जावा पर अधिकार हो गया। मार्च तक जापानी सैनिकों ने जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, बाली आदि कई द्वीपों पर अधिकार कर लिया। ये द्वीप पहले हॉलैंड के अधीन थे। जापानी सेना की स्थिति यह थी कि उसके वायुयान स्वच्छंद तरीके से पूर्वी एशिया में जहाँ-तहाँ विचरण कर सकते थे। उन्हें रोकने-टोकनेवाला वहाँ कोई नहीं था। इस प्रकार जल एवं वायु मार्ग से आक्रमण कर मार्च 1942 में जावा पर अधिकार कर लेने के बाद संपूर्ण डच साम्राज्य अब जापान के अधीन हो गया था।

इतने पर भी जापानी सेना संतुष्ट नहीं हुई। निरंतर जीत से उसके हौसले सातवें आसमान को छू रहे थे। अब वह बर्मा की तरफ बढ़ने लगी और निर्बाध रंगून तक पहुँच गई। 8 मार्च, 1942 को रंगून के पतन से संपूर्ण बर्मा पर जापान का अधिकार होना सुनिश्चित हो गया। ब्रिटिश सेना ने कुछ चीनी सैनिकों से मिलकर ऊपरी बर्मा में जापानी सैनिकों का प्रतिरोध करने का प्रयास किया, पर उन्हें सफलता नहीं मिली। अप्रैल के अंत तक मांडले (बर्मा) पर जापानियों ने अधिकार कर लिया, जिससे बर्मा-चीन सड़क बंद हो गई। सिंगापुर, बर्मा आदि जगहों पर हजारों की संख्या में ब्रिटिश सैनिक और नागरिक फँसे हुए थे। उन्हें वहाँ से निकाल पाना आसान नहीं था। बहुत से लोगों को वायु मार्ग से भारत लाया गया। किंतु बर्मा पर जापान का अधिकार हो जाने के कारण भारत की पूर्वी सीमा पर जापान के हमले का खतरा बढ़ गया था। अप्रैल में जापानी सेना ने श्रीलंका पर हमले की योजना बनाई, परंतु ब्रिटिश नौसैनिकों की सतर्कता के कारण यह योजना फलीभूत नहीं हो पाई। इन्हीं दिनों जापान ने अमेरिकी सेना को बाहान एवं कारेगिडोर क्षेत्रों से बाहर निकाल दिया और तिमोर, न्यू गिनी एवं सोलोमन द्वीप समूह पर अधिकार कर लिया। ये द्वीप ऑस्ट्रेलिया से सिर्फ 400 मील की दूरी पर थे, अतः वहाँ भी हमले का खतरा बढ़ गया।

संक्षेप में, जापान ने सिर्फ 6 महीनों में दक्षिण-पूर्व एशिया में ब्रिटिश साम्राज्य तथा पश्चिमी प्रशांत महासागर में डच एवं अमेरिकी साम्राज्य को

समाप्त करके अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की थी। इसका एक प्रमुख कारण यह था कि पूर्वी एशिया के निवासियों की सहानुभूति उनके शासकों के प्रति नहीं थी। अमेरिकी एशियाई लोगों को हीन समझते थे। उनका मानना था कि ईश्वर ने उन्हें उन पर शासन करने के लिए ही पैदा किया था। ऐसी स्थिति में जब सर्वगुण-संपन्न जापानी सैनिकों से मुकाबला हो तो स्वाभाविक था कि बिना नागरिक समर्थन के उनसे पार पाना नामुमकिन था। अमेरिकी और ब्रिटिश शासकों ने एशियाई लोगों से सहयोग की कोशिश भी नहीं की थी।

जापान को बर्मा पर विजय प्राप्त हो चुकी थी। अब वह भारतीय सीमा तक पहुँच गया था। उस वक्त जापान अगर भारत पर हमला कर देता तो ब्रिटिश शासकों के लिए उसे रोक पाना आसान नहीं होता। सिंगापुर, मलाया और बर्मा से सैनिकों एवं नागरिकों को भारत लाया जा रहा था। ब्रिटिश शासक जी-जान से इसमें जुटे हुए थे। इस दौरान भारत में स्वतंत्रता संग्राम चरम पर था। भारतीय जनमानस में ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध घृणा के भाव थे। राष्ट्रीय स्तर पर असहयोग आंदोलन चल रहा था। भारतीय नागरिकों में स्वराज्य-प्राप्ति की लौ जल रही थी। इसके लिए भारतीय बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी देने को तैयार थे। वैसी स्थिति में जापान अगर भारत पर आक्रमण करता तो स्थिति शायद कुछ और ही होती। परंतु, सौभाग्य से जापान ने वैसा नहीं किया, बल्कि अपने विजित क्षेत्रों को सँभालने में जुट गया।

जापान पर अमेरिकी अंकुश

जापाम ने मई 1942 में जब पोर्ट मोर्सबी और सोलोमन द्वीप समूह पर स्थित तुलागी नामक स्थान पर अधिकार करने के उद्‌देश्य से एक जहाजी बेड़ा और कुछ वायुयान कोरल सागर में भेजे, तब अमेरिकी नौसैनिकों ने उनसे कड़ा मुकाबला किया और जापानी सैनिकों को पीछे हटने को विवश कर दिया। हालाँकि इस युद्ध में अमेरिका के भी कुछ जहाज और वायुयान नष्ट हुए। इसके बाद जून 1942 में जापानी सेना 11 जंगी जहाज और 8 विमानवाहक पोत लेकर मिडवे द्वीप पर आक्रमण के लिए बढ़ी और 4 जून को वहाँ आक्रमण कर दिया। तब अमेरिकी नौसैनिकों ने इसका कड़ा जवाब दिया और जापान के 40 विमानों को नष्ट कर दिया। तीन दिन तक चले इस युद्ध में अमेरिका ने 24 बड़े विमानवाहक पोतों, 1 बड़े क्रूजर जहाज और

322 अन्य विमानों को नष्ट कर जापान को काफी क्षति पहुँचाई। अमेरिका की यह जीत मित्र राष्ट्रों के लिए उम्मीद की एक किरण बनकर सामने आई। ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने अमेरिका की इस जीत को मित्र राष्ट्रों के लिए महत्त्वपूर्ण करार दिया।

उधर ब्रिटिश नौसैनिकों ने अफ्रीकी तट के समीप फ्रांस की विशी सरकार के अधीन मेडागास्कर द्वीप के प्रमुख बंदरगाहों पर अधिकार कर लिया। अगस्त 1942 में अमेरिका ने सोलोमन द्वीप समूह के गडेल केनाल के महत्त्वपूर्ण हवाई अड्डों को अपने कब्जे में कर लिया। जापानी सैनिकों ने उन पर दुबारा कब्जे की कोशिश की, परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली। इसके अतिरिक्त अमेरिकी एवं ऑस्ट्रेलियाई सेनाओं ने मिलकर न्यू गिनी में जापानियों को काफी दूर तक पीछे धकेल दिया। इस तरह, अमेरिकी सैनिकों ने जापान को मात देना शुरू कर दिया और मित्र राष्ट्रों के आक्रमण की गति तीव्र हो गई।

❑

रूस में युद्ध की गति

"आत्मरक्षा हेतु मारने की शक्ति से बढ़कर मरने की हिम्मत होनी चाहिए।"

—महात्मा गांधी

जर्मनी को वर्ष 1941 की शीत ऋतु में रूस से पीछे हटना पड़ा था। वहाँ की सर्दी में जर्मन सैनिक विवश हो गए थे। शीत-विराम के बाद वर्ष 1942 की ग्रीष्म ऋतु में जर्मन सैनिक पुनः आगे बढ़ने लगे। इस बार भी उन्होंने रूस पर तीन ओर से आक्रमण किया। एक सैनिक टुकड़ी वोल्गा नदी की ओर से आगे बढ़ी, ताकि उसका स्टालिनग्राद पर कब्जा हो सके। दूसरी टुकड़ी अक्त्रखन की ओर से आगे बढ़ते हुए कैस्पियन सागर तक पहुँचने के प्रयास में थी। तीसरी टुकड़ी काला सागर तक पहुँचना चाहती थी। इधर जर्मन सेना का काकेशस पर भी अधिकार हो गया था। मई-जून के महीनों में उसने क्रीमिया और सेबास्टफेल पर अधिकार कर लिया। जुलाई के अंत में रोस्तोव पर अधिकार कर लिया। यह वह समय था, जब रूसी सेना का मनोबल गिरने लगा था। उसकी स्थिति निराशाजनक हो गई थी। लगातार युद्ध में मैकोप के विशाल तेल क्षेत्रों पर जर्मनी का कब्जा हो चुका था। अगस्त 1942 के अंत में जर्मन सेना काला सागर तक पहुँच गई और अनाया का प्रदेश अपने कब्जे में कर लिया। सितंबर में जर्मन सेना ने स्टालिनग्राद पर भी आक्रमण कर दिया। यहाँ जर्मन और रूसी सेना के मध्य घमासान युद्ध हुआ। स्टालिनग्राद को बचाने के

लिए रूस ने अपनी पूरी ताकत झोंक दी थी। उसी समय अमेरिका और ब्रिटेन ने उत्तरी अफ्रीका में जर्मनों के विरुद्ध लड़ाई जीतने के लिए योजना तैयार की। ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल ने वर्ष 1942 के अगस्त महीने में रूस जाकर स्तालिन को मित्र राष्ट्रों की योजना समझाई और उनकी स्वीकृति प्राप्त कर ली। इससे रूस को अमेरिका और ब्रिटेन से मदद मिलने की उम्मीद जगी।

स्टालिनग्राद जीतने के लिए सितंबर 1942 में हिटलर ने बड़े अभियान के साथ घोषणा की, ''स्टालिनग्राद अवश्य जीत लिया जाएगा। इसमें किसी प्रकार के संदेह की गुंजाइश नहीं है।'' उधर रूसी सेनापति किसी भी कीमत पर स्टालिनग्राद की रक्षा के लिए कृतसंकल्प थे। वे उसे बचाने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ना चाहते थे। वोल्गा नदी पार कर रूसी सेना लगातार स्टालिनग्राद पहुँचती रही। वहाँ महीनों तक जर्मन और रूसी सेना के बीच घमासान चलता रहा। 19 नवंबर, 1942 को रूसी सेना ने जर्मन सेना के विरुद्ध प्रबल तरीके से युद्ध करना प्रारंभ कर दिया। न केवल गलियों और बाजारों में, बल्कि मकानों में घुसकर भी युद्ध चलता रहा। तब जनरल पौलस के नेतृत्व में जर्मन सेना ने स्टालिनग्राद से पीछे हटने की योजना बनाई। परंतु हिटलर को यह प्रतिष्ठा में हनन जैसी बात लगी। उसने सेना को पीछे हटने से रोक दिया। अब तक जर्मन सेना के 22 डिवीजन रूसी सेनाओं से बुरी तरह घिर चुके थे। जर्मन सेना रूसी कवच को तोड़ने का लगातार प्रयास कर रही थी; किंतु रूसी सेना उसे लगातार मात दे रही थी। अंतत: जर्मन सेना ने काकेशस के उत्तरी भाग से पीछे हटना शुरू कर दिया। 31 जनवरी, 1943 को रूसी सरकार ने घोषणा की, ''छठी जर्मन सेना पौलस के नेतृत्व में पूर्ण रूप से समर्पण कर चुकी है और स्टालिनग्राद को बचा लिया गया है।''

इस पराजय से हिटलर को गहरा आघात पहुँचा और उसने रूस पर अधिकार की आकांक्षा हमेशा के लिए त्याग दी। इस युद्ध में रूसी सरकार के धन एवं जन की अपार क्षति हुई। रूसी जनता इस समय यही चाहती थी कि ब्रिटेन और अमेरिका पश्चिम की तरफ नया मोरचा खोल दें, ताकि जर्मन सेना उधर भी बँट जाए। परंतु छोटे-छोटे हमलों के अतिरिक्त ऐसा कुछ ब्रिटेन की तरफ से नहीं किया गया, जिससे कि जर्मनी पर अतिरिक्त युद्ध का दबाव पड़ता। हालाँकि समय-समय पर अमेरिका और ब्रिटेन रूस को आवश्यक युद्ध-सामग्री मुहैया कराते रहे, परंतु रूस के अनुसार वह अपर्याप्त थी।

स्टालिनग्राद में जर्मन सैनिकों का घटता कद

हिटलर के स्टालिनग्राद पर पूर्ण फतह के हठ ने उसे काफी नुकसान पहुँचाया। द्वितीय विश्व युद्ध में यह लड़ाई निर्णायक साबित हुई। यहाँ हिटलर की मंशा पूरी तरह चकनाचूर होकर रह गई। स्टालिनग्राद में चली इस साढ़े छह महीने की भयानक भिड़ंत में 20 लाख से अधिक सैनिकों, 26 हजार तोपों, 2 हजार से भी अधिक टैंकों तथा 2 हजार विमानों ने जौहर दिखाया।

युद्ध के शुरुआती दौर में रूसी सेना की कमजोर संरचना, अत्याधुनिक हथियारों की कमी, उचित प्रशिक्षण का अभाव, नाजी फौजों के समक्ष स्वयं को कमजोर समझना जैसे तथ्य रूसी सैनिकों के मनोबल को कमजोर कर रहे थे। परंतु जैसे-जैसे लड़ाई रफ्तार पकड़ती गई, रूसी सेना की जबरदस्त तैयारी की बदौलत उसकी कमियाँ दूर होती गईं और उसका मनोबल बढ़ता गया। रूसी सेना के सुयोग्य नेतृत्व, आम नागरिकों में नाजीवाद के विरुद्ध अप्रत्याशित मनोभाव एवं राष्ट्रीयता की भावना का उत्कर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुके थे। इसके जीवंत उदाहरण थे रूस के 18-19 साल के वे युवक, जो स्वयंसेवक के तौर पर देश की सेवा के लिए आगे आए और आत्मस्फूर्त रूप से सेना में शामिल हो गए। देश की रक्षा के लिए 10 लाख महिला 'मुक्ति योद्धा' सक्रिय रूप से युद्ध में सहभागिता प्रदान कर रही थी।

जर्मन सेना 23 अगस्त, 1942 को डॉन नदी तट पर रूसी अवरोधों को तोड़कर स्टालिनग्राद के उत्तर में वोल्गा नदी तट तक पहुँच गई। इस मोरचे की कुल चौड़ाई महज 5 मील थी। स्टालिनग्राद पर उसी दिन हजारों जर्मन विमानों ने बमों की बरसात कर दी, जिसमें उस एक ही दिन में तकरीबन 40 हजार असैनिक स्त्री-पुरुष मारे गए। 30 वर्ग मील में फैला यह शहर महज एक दिन के भीतर ही जर्मन बमों के असंख्य धमाकों से जलकर राख हो चुका था। इस भयानक तबाही को देख लोग वोल्गा नदी तैरकर या अन्य तरीकों से तत्काल शहर छोड़कर भागने लगे। स्टालिनग्राद की इस लड़ाई में भाग लेने के लिए 10 लाख जर्मन सैनिक, 3,000 टैंक तथा 3,000 विमानों की विशाल पलटन मौजूद थी। इस लड़ाई में हिटलर ने एक घोषणा करवाई कि जो भी सैन्य अधिकारी, सैनिक या रेजीमेंट पहले स्टालिनग्राद में घुसेंगे, उन्हें 7 दिनों की छुट्टी दे दी जाएगी। 15 सितंबर, 1942 को उत्तर-पश्चिम तथा पश्चिम-दक्षिण वोल्गा नदी के विपरीत क्षेत्र को जर्मन सेना ने पूरी तरह से घेर लिया और लगातार चार

हफ्तों तक हमला जारी रखा। परंतु यहाँ रूसी सैनिकों का मनोबल अत्यधिक उफान पर था। जितने जोर का प्रहार जर्मन सेना उन पर करती, वे भी उसी गति से प्रत्युत्तर देते। जर्मन सेना जितनी अंदर घुसती, रूसी सेना उसे वापस उतना पीछे खदेड़कर दम लेती। जर्मन सेना का वह दंभ वहाँ चूर हो चुका था, जो एक दिन में 300 मील तक की दूरी पर कब्जा करने में माहिर थी। ध्वस्त हो चुके स्टालिनग्राद को बचाने के लिए रूसी सेना अदम्य साहस के साथ डटी हुई थी। इसी बीच एक नीतिगत फैसला लिया गया, जो युद्ध के लिए बहुत सहायक साबित हुआ। धर्माचार्यों की विरोधी रही रूसी सरकार ने एक मौखिक समझौता किया, जिसमें हर प्रकार के धर्माचरण की छूट प्रदान की गई। इसे इसलिए माना गया, ताकि आपसी एकता को बल मिल सके। शहर के सभी घरों, इमारतों एवं कल-कारखानों को आत्मरक्षा की छूट दे दी गई। स्थानीय नागरिकों को सैन्य प्रशिक्षण भी दिया गया। परिणामतः महिलाओं ने भी इस लड़ाई में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। शहर की सुरक्षा के लिए शहर के चारों ओर पिल बॉक्स, लैंड माइंस, टैंक विध्वंसक तथा विध्वंसक तोपें लगाई गईं। साथ-ही-साथ स्टालिनग्राद को लोहे, कंक्रीट तथा अस्त्र-शस्त्रों से भी अभेद्य बनाने की सफल कोशिश की गई। इसकी सुरक्षा के लिए कारखानों में अर्धनिर्मित टैंकों को जमीन में गाड़ दिया गया, जिनके ऊपरी हिस्से व नालें जमीन के बाहर रखे गए और उन्हें पेड़-पौधों से ढक दिया गया। शहर के चारों ओर कोने-कोने में लगे लाउडस्पीकरों पर स्तालिन अपने जन-बल को उद्वेलित करनेवाले भाषणों से उनमें साहस एवं उत्साह का संचार करता रहता था।

इस भीषण लड़ाई के तीन हफ्तों के उपरांत ही ऐसा प्रतीत होने लगा था कि युद्ध अपने निर्णायक मोड़ पर आ पहुँचा है और अब जल्दी ही दोनों में से एक पक्ष हथियार डाल देगा। परंतु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। जर्मन रेडियो अपनी जीत की घोषणा करने का आदी हो चुका था, परंतु यह पहला अवसर था जब अपने सैनिकों का मनोबल बनाए रखने के लिए उसे प्रचार कौशल में परिवर्तन के लिए मजबूर होना पड़ा। स्टालिनग्राद में चल रहे इस संघर्ष की सूचना देते हुए जर्मन रेडियो ने कहा कि 'अब तक लड़ाई में यह सबसे जटिल घड़ी है, जिसका सामना जर्मन सेना कर रही है। इस लड़ाई में रूसी सैनिक हमें बराबर की टक्कर दे रहे हैं। परंतु इसमें कोई शक नहीं कि अंतिम विजय हमारी ही होगी।' परंतु स्टालिनग्राद पर विजय की यह घोषणा इतनी सरल नहीं थी। 30 सितंबर, 1942 को हिटलर ने स्वयं अपने देशवासियों को स्टालिनग्राद पर पूर्ण

विजय का भरोसा दिलाया। लेकिन जर्मनवासियों को इस भरोसे में पहले जैसी धार महसूस नहीं हुई। स्टालिनग्राद में रोजाना हजारों जर्मन सैनिकों की मौत की खबर आम हो चुकी थी। अब मोरचे पर जर्मन सेनानायक फॉबवॉक को पदच्युत कर दिया गया और उसकी जगह फॉनहॉथ को भेजा गया। सेनानायकों की इस अदला-बदली ने जर्मन नागरिकों को और भ्रम में डाल दिया।

अंततः इस युद्ध ने करवट बदली। रूस के नायक स्तालिन ने जर्मन सेना को रूसी सरजमीं से अपने पाँव खिसकाने को मजबूर कर दिया और 29 नवंबर, 1942 तक जर्मन सेना पूर्णतया हताश हो चुकी थी। अब वह केवल अपनी जान बचाने के लिए लड़ रही थी। हालात पूरी तरह रूसी सेना के पक्ष में थे।

जर्मन सैनिक खाना, कपड़ा, पेट्रोल एवं गोला-बारूद जैसी आवश्यक चीजों के अत्यधिक अभाव के बाद मौत की राह देखने के सिवा और क्या कर सकते थे। उन लाखों सैनिकों में विशेषकर घायल सैनिकों की चिकित्सा-व्यवस्था पूरी तरह चौपट हो गई थी। परिस्थितियों को भाँपते हुए रूस के लिए जल्दी-से-जल्दी युद्ध समाप्त कराना आसान हो चुका था। जर्मन सेना के आत्मसमर्पण की पूरी जिम्मेदारी रूसी जनरल वैस्लोवोस्की को दे दी गई। साथ ही घायल जवानों के लिए चिकित्सा-व्यवस्था के साथ साथ गरम कपड़े, खाने-पीने के सामान इत्यादि जल्दी-से-जल्दी उपलब्ध कराने की विशेष हिदायत दी गई।

इधर जर्मन सेनानायक जनरल पॉवेल ने जनरल वैस्लोवोस्की के पास एक संदेश भेजा, जिसमें हिटलर के निर्देशानुसार आत्मसमर्पण न करते हुए युद्ध जारी रखने की मंशा जाहिर की, जिसके बाद वैस्लोवोस्की ने जर्मन सेना पर जोरदार हमले किए और 17 जनवरी को एक बार पुनः आत्मसमर्पण करने को कहा। उधर जर्मन सेना के कुछ अन्य जनरल अब आत्मसमर्पण के लिए जनरल पॉवेल पर दबाव डाल रहे थे। परंतु हिटलर के डर से उसने आत्मसमर्पण से इनकार कर दिया। अब तक जर्मन सेना का मनोबल काफी हद तक गिर चुका था। युद्ध से बचने के लिए सैनिक जान-बूझकर घायल होने का बहाना करने लगे थे। वे युद्ध से ऊब चुके थे। यहाँ तक कि कुछ जर्मन अधिकारी युद्ध क्षेत्र से भाग खड़े हुए। अब तक रूसी सेना ने अपना शिकंजा कस लिया था, जिसे देख जनरल पॉवेल भयभीत था। अंततः वह आत्मसमर्पण के लिए मजबूर हो गया। 2 फरवरी, 1943 को स्टालिनग्राद युद्ध की आधिकारिक तौर पर समाप्ति की घोषणा कर दी गई। रूसी जनता खुशी से झूम उठी। इसके साथ ही हिटलर का अहंकार चूर-चूर होकर रूसी धरती पर छितरा चुका था। ❑

13

युद्ध में नया मोड़

"युद्ध समाप्त करने का सबसे तेज तरीका है, युद्ध को हार जाना।"

–जॉर्ज ऑरवेल

उधर उत्तरी अफ्रीका में जर्मन सैनिकों को लगातार सफलताएँ मिल रही थीं। सन् 1942 के पूर्वार्द्ध तक यूरोप, अफ्रीका एवं पूर्वी एशिया में धुरी राष्ट्रों को लगातार विजयश्री मिल रही थी। जर्मन सेना जनरल रोमेल के नेतृत्व में संपूर्ण उत्तरी अफ्रीका पर कब्जा कर चुकी थी। इन विजयों के बाद जर्मन सेना मिस्र और स्वेज नहर पर आक्रमण की योजना बना रही थी। उधर जापान पूर्वी एशिया में ब्रिटिश साम्राज्य के अनेक भागों पर अधिकार के बाद पश्चिमी प्रशांत महासागर में अमेरिका से फिलिपींस एवं सोलोमन द्वीप समूह तक का क्षेत्र छीन चुका था। जर्मनी और जापान की पनडुब्बियों ने मित्र राष्ट्रों के सैकड़ों नौसैनिक एवं मालवाहक जहाजों को डुबोकर भारी नुकसान पहुँचाया था।

परंतु अब धुरी राष्ट्रों को शिकस्त मिलने का समय आ गया था। जनरल रोमेल की जिस सेना ने मिस्र और स्वेज नहर पर आक्रमण किया, उसे ब्रिटेन की सैन्य-शक्ति से मुँहतोड़ जवाब मिला। जनरल मॉण्टगोमरी के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना ने मिस्र में रोमेल को परास्त किया और पश्चिम की ओर बढ़ने से रोक दिया। 12 नवंबर, 1942 तक मिस्र से जर्मन सेना को खदेड़ दिया गया। महज आठ दिनों में ब्रिटिश सेना पश्चिम की ओर वंगाजी तक पहुँच

जनरल मॉण्टगोमरी उत्तरी अफ्रीका में।

गई। जर्मन सेनापति रोमेल लगातार पीछे भाग रहा था। उसके पास अब केवल एक ही उपाय था कि त्रिपोली को आधार मानकर वह ब्रिटेन का सामना करे। त्रिपोली में सिसली के समुद्री मार्ग से उसे युद्ध-सामग्री भेजी जा सकती थी। पर इस नीति में भी रोमेल असफल रहा और ब्रिटिश जनरल मॉण्टगोमरी के सफल नेतृत्व में जर्मन सेना को त्रिपोली से भी खदेड़ दिया गया। फरवरी 1943 तक विश्व युद्ध की स्थिति में नया मोड़ आ गया।

युद्ध के शुरुआती तीन वर्षों में धुरी राष्ट्रों को लगातार सफलताएँ प्राप्त हुईं। इसका मुख्य कारण यह था कि इन राष्ट्रों के पास अत्याधुनिक हथियार थे। उनके पास वायुयानों, टैंकों, तोपों और अन्य अस्त्र-शस्त्रों की कोई कमी नहीं थी। उनके सैनिक मित्र राष्ट्रों की तुलना में अधिक प्रशिक्षित थे। प्रथम विश्व युद्ध के बाद सर्वाधिक शक्तिशाली देश के रूप में उभरकर सामने आनेवाला फ्रांस कुछ ही महीनों की लड़ाई में जर्मन सेना के समक्ष ताश के पत्तों की तरह ढेर हो गया। इसका मुख्य कारण यही था कि फ्रांस के पास आधुनिक हथियारों एवं आधुनिक युद्ध-सामग्री की कमी थी। इसके अतिरिक्त जर्मनी और जापान अपनी सुविधानुसार आक्रमण का क्षेत्र चुन रहे थे, जबकि

मित्र राष्ट्रों की तरफ से सभी देश सिर्फ रक्षात्मक युद्ध लड़ रहे थे। उन्होंने कहीं किसी मोरचे पर आक्रमण नहीं किया। जब वर्ष 1941 के अंत में पर्ल हार्बर की घटना के बाद अमेरिका भी युद्ध की चपेट में आ गया तो यह युद्ध विश्व युद्ध की श्रेणी में आ गया। ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल और अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने तब यह योजना बनाई कि धुरी राष्ट्रों को पराजित करने के लिए उनके विरुद्ध जो भी राष्ट्र संलग्न हैं, सभी मिलकर एक संयुक्त मोरचा बनाएँ तथा एक विश्वव्यापी युद्ध-नीति अपनाएँ। इस तरह 1 जनवरी, 1942 को अमेरिका, ब्रिटेन, रूस सहित 26 राष्ट्रों ने मिलकर संयुक्त घोषणा की, जिसमें 14 अगस्त, 1941 के 'अटलांटिक चार्टर' के सिद्धांत को स्वीकृति प्रदान की गई और अनुमोदन किया कि वे धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध संगठित रूप से युद्ध करें, आर्थिक संसाधनों का प्रयोग शत्रुओं के साथ न करें और किसी प्रकार की गुप्त संधि न करने का वचन दें।

संयुक्त घोषणा-पत्र का असर प्रारंभिक दिनों में व्यावहारिक रूप से सामने नहीं आया; परंतु इससे इस बात का स्पष्टीकरण हुआ कि मित्र राष्ट्रों के साथ कौन-कौन से राष्ट्र हैं और समय पड़ने पर किस राष्ट्र से सहायता ली जा सकती है।

उस वक्त ब्रिटेन और अमेरिकी सरकार के उच्च सैन्य अधिकारियों ने मिलकर एक 'युद्ध परिषद्' का गठन किया, जिससे सभी सेनाध्यक्ष मिलकर संयुक्त युद्ध नीति की रूपरेखा तैयार कर सकें। इस नीति के अंतर्गत रूस और चीन सरकार से अधिक-से-अधिक संपर्क बनाए रखने का प्रयास किया गया। मित्र राष्ट्रों के आपसी सहयोग को बढ़ाने के लिए चार बड़े राज्यों के अध्यक्ष वाशिंगटन, कासाब्लांका, क्यूबेक, मॉस्को, तेहरान आदि जगहों पर मिलते रहे। इन सम्मेलनों में उत्तरी अफ्रीका, सिसली, इटली और जर्मनी के विरुद्ध आक्रमण की विस्तृत योजनाएँ बनाई गईं। इन आक्रमणों को सजीव रूप देने के लिए विशेष एवं अधिक संख्या में विमानों, तोपों, नौसैनिक जहाजों एवं विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों की आवश्यकता थी। इसके लिए ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा और रूस ने उत्पाद तैयार किए; परंतु असरदार उत्पादन अमेरिका के विशाल कारखानों से ही हो पाया। सिर्फ अमेरिका ने राष्ट्रपति रूजवेल्ट के नेतृत्व में सन् 1942 में 60 हजार वायुयानों, 45 हजार टैंकों, 20 हजार विमानभेदी तोपों और 8 लाख टन के व्यापारिक जहाजों का निर्माण किया। इसके अतिरिक्त अमेरिका के 15 लाख सैनिक मित्र राष्ट्रों की सहायता

के लिए विभिन्न मोरचों पर भेजे गए। इसी समय अमेरिका और ब्रिटेन के वैज्ञानिकों ने महत्त्वपूर्ण आविष्कार भी किए जिससे मित्र राष्ट्र के सैनिकों की शक्ति बढ़ी। इन आविष्कारों में राडार का आविष्कार अति महत्त्वपूर्ण रहा। राडार का प्रयोग जर्मन हवाई हमलों से बचने के लिए किया गया। साथ ही जर्मन पनडुब्बियों को डुबोने में भी राडार से काफी मदद मिली। इसके बाद मित्र राष्ट्रों ने परमाणु शक्ति का भी विकास कर लिया। परमाणु शक्ति के विकास से धुरी राष्ट्र आविष्कार एवं आधुनिकता में काफी पीछे चले गए।

उधर रोमेल को त्रिपोली से खदेड़ने के बाद अमेरिका और ब्रिटेन जर्मनी के विरुद्ध दूसरा मोरचा तैयार करने की योजना बनाने लगे। इस वक्त फ्रांस, बेल्जियम या जर्मनी में सेना उतारना उतना आसान नहीं था, इसलिए मित्र राष्ट्रों ने अपनी सेना उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका में उतारने की रणनीति बनाई। जर्मनी का फ्रांसीसी उत्तरी अफ्रीका पर उतना अधिक प्रभाव नहीं था। ब्रिटिश सेना यह जानती थी कि इस इलाके में उसका कड़ा विरोध नहीं होगा। वह चाहती थी कि जर्मनी को अफ्रीका से खदेड़कर इटली पर आक्रमण करना आसान होगा, क्योंकि इटली जर्मनी की तरह शक्तिशाली नहीं था। इस तरह 8 नवंबर, 1942 को जनरल आइजनहॉवर के नेतृत्व में अमेरिकी एवं ब्रिटिश सेना सम्मिलित रूप से फ्रांसीसी उत्तरी अफ्रीका पहुँच गई। विशी सरकार ने उसका कुछ खास विरोध नहीं किया। उधर मॉण्टगोमरी की सेना रोमेल को हराकर आगे बढ़ ही रही थी। इस प्रकार मॉण्टगोमरी और आइजनहॉवर के प्रयासों से अफ्रीका जर्मनी के कब्जे से मुक्त हो गया। अब स्थिति ऐसी बन गई थी कि मित्र राष्ट्रों की सेना यूरोप पर आक्रमण कर सकती थी।

उत्तरी अफ्रीका की स्थिति

रोमेल के नेतृत्व में जर्मन सेना, अल अलामीन में ब्रिटिश मोरचे को तोड़ने के लिए संघर्षरत थी। यह घटना जुलाई 1942 की थी। इस हमले में अल अलामीन से जर्मन सैनिकों को पीछे हटना पड़ा। ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने अपनी मध्य-पूर्व की सेना को सेनापति जनरल अलेक्जेंडर को सौंपा और जनरल मॉण्टगोमरी को अफ्रीका में आठवीं सेना की कमान दे दी। आठवीं सेना को शक्तिशाली बनाने के लिए नई सैनिक टुकड़ियाँ, विभिन्न आधुनिक हथियार और तोपें भेजी गईं।

मॉण्टगोमरी ने अपनी पुनर्गठित सेना के साथ 23 अक्तूबर, 1942 को रोमेल की सेना पर आक्रमण किया और सिर्फ 12 दिनों के युद्ध के बाद निर्णायक स्थिति आ गई। इस युद्ध में जर्मनी बुरी तरह पराजित हुआ। 20 हजार जर्मन सैनिक बंदी बनाए गए। लगभग 400 टैंक, 400 तोपें और बड़ी मात्रा में युद्ध-सामग्री ब्रिटिश सेना के हाथ लगी। इस जीत से ब्रिटिश सेना के हौसले बुलंद थे और जर्मन सेना के पाँव उखड़ने लगे थे। अल अलामीन की जीत के तुरंत बाद मॉण्टगोमरी के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना ने जर्मन सेनाओं को मिस्र की सीमा से भी खदेड़ दिया।

ब्रिटेन और अमेरिका का संयुक्त 'टॉर्च अभियान'

मई 1942 में रूस फ्रांस में दूसरा मोरचा खोलने की माँग कर रहा था, किंतु पर्याप्त सैनिकों एवं युद्ध-सामग्री के अभाव में वर्ष 1943 तक ऐसा नहीं हो पाया। अब ब्रिटेन और अमेरिका के सेनानायकों एवं राजनीतिज्ञों ने एक योजना बनाई कि दोनों के सम्मिलित सैनिक फ्रांसीसी उत्तरी अफ्रीका की ओर से आक्रमण करेंगे और जर्मनी एवं उसके सहयोगी राष्ट्रों के सैनिकों को उत्तरी अफ्रीका से बाहर खदेड़ेंगे। इस प्रकार वे उत्तरी अफ्रीका से होकर इटली के रास्ते यूरोप में प्रवेश करेंगे। इस योजना का नामकरण 'टॉर्च अभियान' किया गया। इस युद्ध के लिए कई महीनों तक तैयारियाँ की गईं और 8 नवंबर, 1942 को जनरल आइजनहॉवर के नेतृत्व में ब्रिटेन अमेरिका की संयुक्त सेनाओं के जहाज कासाब्लांका, अल्जीयर्स तथा औरान बंदरगाह पहुँच गए। दोनों देशों को विश्वास था कि फ्रांस सरकार उनका स्वागत करेगी और उन्हें हर तरह की सहायता प्रदान करेगी। परंतु वैसा नहीं हुआ। उसी वक्त फ्रांस की विशी सरकार के सेनाध्यक्ष एडमिरल दार्लान ने फ्रांसीसी सैन्य अधिकारियों को मित्र राष्ट्रों के सैनिकों का प्रतिरोध करने का आदेश दिया। ब्रिटेन और अमेरिका इससे हतप्रभ थे। उन्हें इसकी कतई उम्मीद नहीं थी। तीनों ही स्थानों पर दोनों देशों की संयुक्त सेना ने फ्रांसीसी सेना से संघर्ष किया। अंत में अमेरिकी एवं ब्रिटिश सेनानायकों और दार्लान के बीच समझौता हुआ। फलस्वरूप 10 नवंबर, 1942 को फ्रांसीसी सैन्य टुकड़ियों ने युद्ध बंद कर दिया। इसके बाद मित्र राष्ट्रों की सेना ने जल्दी ही मोरक्को एवं अल्जीरिया में अपनी स्थिति मजबूत कर ली और ट्यूनीशिया की ओर बढ़ने

लगी। इस बीच हिटलर ने फ्रांस के अनधिकृत हिस्से पर कब्जा कर लिया। वहाँ फ्रांसीसी नौसैनिक बेड़ों को अपने कब्जे में करने का प्रयास किया, किंतु स्थानीय फ्रांसीसी नौसैनिक अधिकारियों को अपने बेड़ों को हिटलर के हाथों में जाने देने से स्वयं ही डुबो देना बेहतर लगा।

आइजनहॉवर के नेतृत्व में मित्र राष्ट्रों की संयुक्त सेना उत्तरी भाग स्थित बिजार्टा और ट्यूनिस पर अधिकार करना चाहती थी। नवंबर, 1942 के अंत तक मित्र राष्ट्रों की सेना ट्यूनिस के करीब पहुँच चुकी थी, परंतु हिटलर की निगाहें सभी क्षेत्रों पर टिकी थीं। उसकी सेना ने सेनापति वान आर्नीम के नेतृत्व में एक सैन्य टुकड़ी भेजकर ट्यूनिस के उत्तरी भाग पर अधिकार कर लिया। उधर दक्षिणी ट्यूनिस में रोमेल का अधिकार था। ऐसी स्थिति में आइजनहॉवर को कुछ समय के लिए अपनी रणनीति में परिवर्तन कर ट्यूनिस विजय के अभियान को रोकना पड़ा। पूर्व की तरफ मॉण्टगोमरी की आठवीं सेना रोमेल को पीछे धकेलती आगे बढ़ रही थी। मॉण्टगोमरी की सेना लीबिया के करीब पहुँच चुकी थी। फरवरी, 1943 में जर्मन सैनिकों ने अमेरिकी सैनिकों पर आक्रमण किया। इसमें जर्मन सैनिकों को काफी नुकसान उठाना पड़ा और हासिल कुछ नहीं हुआ। जर्मन सेना अमेरिकी सेना के समक्ष नहीं टिक पाई और पीछे हट गई।

आखिर मार्च 1943 में मॉण्टगोमरी की सेना रोमेल की रक्षा-पंक्ति तोड़ने में सफल हुई। उधर अमेरिकी सेना भी ट्यूनिस की तरफ बढ़ रही थी। अप्रैल 1943 में जर्मनी और इटली की सेनाएँ ट्यूनिस एवं बिजार्टा में मॉण्टगोमरी और आइजनहॉवर की सेनाओं के घेरे में फँस गईं। इस तरह दोनों ही सेनाओं ने 5 मई को ट्यूनिस पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। इसके बाद जर्मन सेनापति वान आर्नीम और इतालवी सेनापति जनरल मेस ने आत्मसमर्पण कर दिया। आगामी एक सप्ताह के अंदर संपूर्ण ट्यूनीसिया पर मित्र राष्ट्रों का अधिकार हो गया। मित्र राष्ट्रों की इस विजय से उत्तरी अफ्रीका पर धुरी राष्ट्रों की पकड़ समाप्त हो गई। अब इस रास्ते सिसली और इटली पर आक्रमण सुलभ हो गया। जर्मनी की उत्तरी अफ्रीका में हार से हिटलर का मनोबल टूट गया। इतालवी सेना भी पस्त हो गई थी। अब अल्जीरिया, मोरक्को और ट्यूनिस पर स्वतंत्र फ्रांसीसी सरकार की स्थापना कर दी गई। उत्तरी अफ्रीका में जीत मिलने से मित्र राष्ट्रों की एकता मुखरित हो पाई। उन्हें एक ही नेतृत्व में युद्ध की कमान सौंपने और सम्मिलित युद्ध नीति बनाकर धुरी राष्ट्रों को परास्त करने की सीख मिली।

❑

रूस में जर्मनी की करारी हार

"युद्ध की कला बेहद सरल है। अपने दुश्मनों को ढूँढ़ें, उन तक तपाक से पहुँचें और जितनी गहरी चोट पहुँचा सकते हैं, पहुँचाएँ तथा आगे बढ़ जाएँ।"

—उलेसेस एस. ग्रांट

रूसी सेना वर्ष 1942-43 के वसंत में फिर से आक्रमण शुरू कर चुकी थी। स्टालिनग्राद से जर्मन सेना 1 नवंबर, 1942 को पीछे हटना शुरू कर चुकी थी। स्टालिनग्राद के युद्ध में जर्मन सेना को जबरदस्त प्रत्याक्रमण का सामना करना पड़ा था। इस लड़ाई में 1 लाख से अधिक जर्मन सैनिक मारे गए और कुल 90 हजार सैनिकों को बंदी बनाया गया। स्टालिनग्राद की जीत रूस एवं सभी मित्र राष्ट्रों के लिए अद्‌भुत खुशी का क्षण था। रूसी राष्ट्रपति स्तालिन की चर्चा प्रत्येक राष्ट्र में होने लगी थी। मित्र राष्ट्रों के सैनिकों में इस जीत से स्फूर्ति और आशा का संचार हुआ। इस जीत से खुश होकर ब्रिटेन के राजा जॉर्ज छठे ने एक रत्नजड़ित तलवार बनवाई और दिसंबर 1943 में चर्चिल और स्तालिन की मुलाकात में चर्चिल द्वारा स्तालिन को यह तलवार उपहारस्वरूप भेंट की गई।

इस जीत के बाद जर्मन सेना को काफी पीछे खदेड़ दिया गया था। स्टालिनग्राद के बाद रूसी सेना काकेशस और काला सागर के प्रदेशों में आगे बढ़ने लगी। रूस का विशाल मैकोप क्षेत्र, जो जर्मन हाथों में चला गया था,

स्टालिनग्राद में शवों के ढेर।

पुनः रूस के कब्जे में आ गया। जर्मन सेना का लेनिनग्राद में डेरा था। वहाँ अब रूसी सेना ने हमला प्रारंभ कर दिया था। वहाँ भी रूसी सेना को सफलता मिली। रूसी सेना के आक्रमण के जवाब में जर्मन सेना शिथिल पड़ चुकी थी। अब उनके आक्रमण में वह धार नहीं थी। रूस और जर्मन युद्ध में मौसम का बड़ा योगदान रहा। जहाँ जर्मन सेना रूस की सर्दियों को झेलने में समर्थ नहीं थी, वहीं रूसी सेना अत्यधिक गरमी में कठिनाई महसूस करती थी। परंतु इस बार की ग्रीष्म ऋतु में रूसी सेना ने उम्मीद से बेहतर प्रदर्शन किया और हर मोरचे पर जर्मन सेना को कड़ी शिकस्त दी। फिर वर्ष 1943-44 की शीत ऋतु आई, जहाँ से जर्मन सेना की मुसीबतें बढ़ने लगीं। वहीं रूसी सेना सर्दियाँ झेलने की अभ्यस्त थी। इस तरह सर्दियों में 25 सितंबर, 1943 को स्मोलनस्क पर रूस का फिर से अधिकार हो गया। अब रूसी सेना लगातार अपने खोए प्रदेश जर्मनी से वापस प्राप्त कर रही थी। अगले महीने अक्तूबर में रूसी सेनाओं ने काकेशस को वापस अपने

ऑपरेशन एपेस्ट के संचालक बोर कुमारोवस्की।

अधिकार में कर लिया। नवंबर में क्रीमिया रूसियों को वापस मिल गया। उसी महीने कीव प्रदेश भी रूसी सेना को मिल गया। जर्मन सेना क्षत-विक्षत हो गई थी। रूसी सेना लगातार उसे पीछे खदेड़ रही थी। वह अब बाल्टिक सागर के तट पर एस्टोनिया तक पहुँच चुकी थी। सन् 1944 की ग्रीष्म ऋतु आते-आते संपूर्ण रूस से जर्मन सेना को बाहर खदेड़ दिया गया था। इस महासमर में सरकार और सेना को रूसी जनता समर्थन एवं सहयोग का अद्भुत परिणांम था कि जर्मनी को इतने कम समय में रूसी क्षेत्र से बाहर खदेड़ दिया गया। विश्व युद्ध के इतिहास में रूस और जर्मनी का यह युद्ध बहुत महत्त्वपूर्ण रहा। इस युद्ध में 78 लाख जर्मन हताहत हुए। शहीद रूसी जनता और सैनिकों की कुल संख्या भी 53 लाख के करीब थी। स्वाभाविक है कि जहाँ इतनी बड़ी संख्या में व्यक्ति मारे जा रहे हों या कैदी बने हों, वहाँ कितनी विशाल मात्रा में युद्ध-सामग्री नष्ट हुई होगी। अनुमानतः इस युद्ध में जर्मनी के 70 हजार टैंक और रूस के 49 हजार टैंक, जर्मनी के 60 हजार वायुयान और रूस के 30 हजार वायुयान, जर्मनी की 90 हजार तोपें और रूस की 48 हजार तोपें क्षतिग्रस्त हुईं।

वारसा विद्रोह

रूसी सेना जर्मनी पर हावी हो चुकी थी। वह निरंतर जर्मनी को युद्ध में पीछे धकेल रही थी। जिस प्रकार रूसी सेना आगे बढ़ रही थी, पोलैंड को लगा कि वह जल्द ही वारसा तक पहुँच जाएगी और पोलैंड रूस का हिस्सा हो जाएगा। पोलैंडवासी निश्चित रूप से जर्मनी से स्वतंत्रता चाहते थे। परंतु उनकी यह इच्छा हरगिज नहीं थी कि जर्मनी से छुटकारा उन्हें रूस की अधीनता पाकर मिले। पोल लोग आत्म-स्वतंत्रता चाहते थे। अगस्त 1944 में लंदन स्थित पोल सरकार ने अखबारों के माध्यम से एक संदेश प्रकाशित करवाया कि इससे पहले कि रूसी सेना वारसा पर कब्जा करे, सभी पोल देशभक्त वारसा पहुँच जाएँ और उस पर अपना अधिकार स्थापित करें।

ऑपरेशन एंपेस्ट

पोलैंड की राजधानी वारसा में अब नाजी फौज तथा गेस्टापो (जर्मन खुफिया पुलिस) के बर्बर अत्याचार से पीड़ित पोलिस जनता ने बड़े स्तर पर
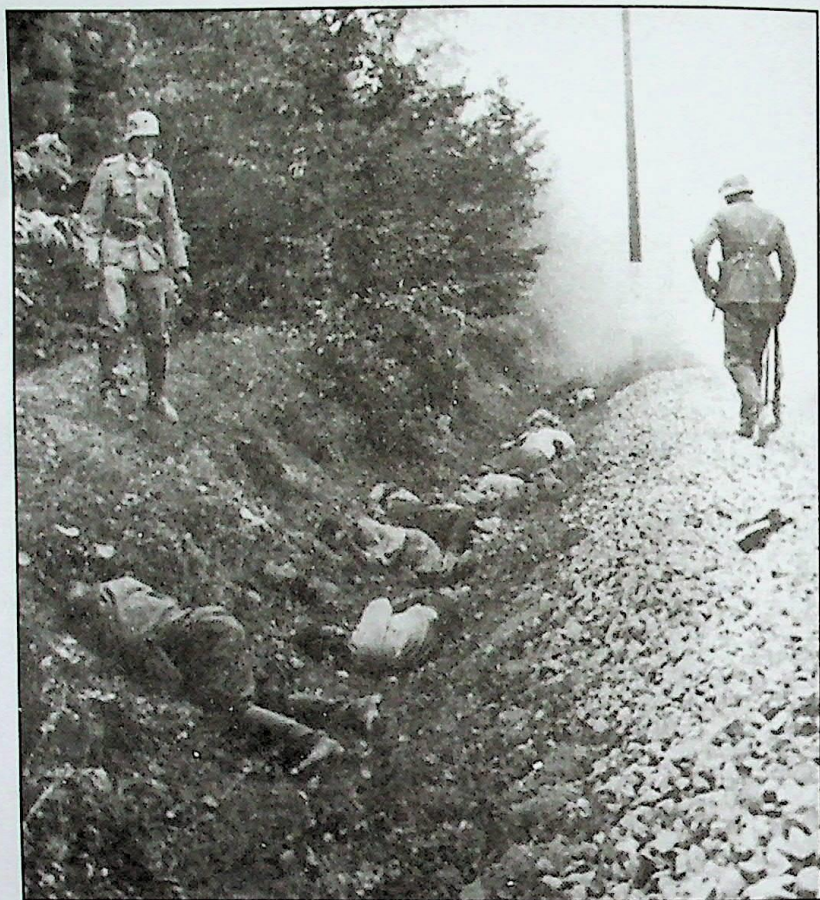
वारसा में नाजी सेना के अमानवीय उत्पात को दरशाता एक चित्र।

भूमिगत संगठन बनाकर प्रतिरोध शुरू कर दिया था। इस संगठन का संचालक बोर कुमारोवस्की था। लंदन में बनी अस्थायी पोलैंड सरकार के प्रधानमंत्री मेकॉलजी ने रूस के साथ सीमा संबंधी मामलों को सुलझाने के लिए मॉस्को जाने के दौरान बोर को निर्देश दिया कि अब पोलैंड में जर्मन सेना के खिलाफ नागरिक विद्रोह आवश्यक हो चुका है। इस विद्रोह का गुप्त नाम 'ऑपरेशन एंपेस्ट' रखा गया और इस प्रकार ब्रिटेन में पोलैंड की अस्थायी सरकार ने बोर एवं उसकी विद्रोही सेना को अपने पक्ष में कर लिया, जो कि रूस-विरोधी थी। बोर ने सोचा कि रूसी सेना पोलैंड के पूर्वी हिस्से में घुस चुकी है और अब वह वारसा पहुँचकर उसके मुक्त होने का सारा श्रेय स्वयं

लेकर राजधानी को लिबरेशन पार्टी के हाथों सौंप देगी। इसी सोच के साथ उसने बिना किसी पूर्व तैयारी के रूसी सेना की सहायता के लिए 1 अगस्त को जर्मन सेना के खिलाफ विद्रोह की घोषणा कर दी। विशाल जर्मन सेना की अपेक्षा बोर की इस मुक्ति सेना में महज 40 हजार अप्रशिक्षित लोग थे, जिनके पास लड़ाई के घटिया दर्जे के अस्त्र-शस्त्रों के साथ अधिकतम एक हफ्ते तक चलनेवाला गोला-बारूद मौजूद था। बोर द्वारा पोलैंड के नागरिकों से इस लड़ाई में शामिल होने की पुकार पर लाखों पोल नागरिक उसके साथ हो गए। बोर द्वारा छेड़ी गई यह लड़ाई लगभग दो महीने तक चली, जिसमें 3 लाख पोल मारे गए। अंतत: बोर ने 2 अक्तूबर को जर्मन सेना के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। ब्रिटेन स्थित पोल सरकार के साथ-साथ ब्रिटेन व अमेरिका ने भी इस घटना के लिए रूस को जिम्मेदार ठहराया। चर्चिल ने तो रूस की सेना पर विश्वासघात का आरोप तक जड़ दिया। अस्थायी पोल सरकार ने कहा कि रूस ने अपनी सेना के जान-बूझकर वारसा पहुँचने के निर्णय को स्थगित कर दिया। विरोध में रूस ने जवाब देते हुए कहा कि वारसा की सत्ता की लालसा में चर्चिल ने रूस के विरुद्ध अपने चाटुकारों से विद्रोह करवाया, जिसका दुष्परिणाम यह निकला कि 3 लाख बेकसूर नागरिकों को अपनी जान गँवानी पड़ी।

वारसा के इस विद्रोह के बाद नाजी सेना ने वहाँ भीषण अमानवीय उत्पात मचाया। उसने आम नागरिकों की हत्या तो की ही, उससे भी मन नहीं भरा तो अस्पतालों में जाकर बीमार एवं घायल बूढ़ों-बच्चों और यहाँ तक कि औरतों के पेट एवं गुप्तांगों में संगीनें घुसेड़कर उनकी हत्या कर डाली। जर्मन सेना के इस आतंक से डरकर लोग गटरों में जा छुपे थे; परंतु वे वहाँ भी अपनी जान नहीं बचा सके। जर्मन सेनाओं ने उन्हें वहाँ से खदेड़-खदेड़कर मारा। वे गटरों के ढक्कन खोलकर उन्हें जहरीली गैसों से भर मौत का तांडव देखते रहते थे।

इस वीभत्स घटना को रोका जा सकता था, यदि अस्थायी पोल सरकार ने रूसी सेना को पूरी तरह अपने विश्वास में लेने के बाद इस विद्रोह को अंजाम दिया होता। क्योंकि अपनी अनदेखी के बावजूद 14 सितंबर से 1 अक्तूबर के दौरान बिना किसी माँग के रूस ने 2 हजार बार विमानों द्वारा बोर एवं उसके विद्रोहियों को अस्त्र-शस्त्र, गोला-बारूद और खाद्य सामग्री उपलब्ध कराई थी।

अन्य आंदोलन

न सिर्फ पोलैंड जैसे देश स्वतंत्र होना चाहते थे, बल्कि जर्मनी ने जिन यूरोपीय देशों को अपने अधीन कर लिया था, प्राय: सभी देश स्वतंत्रता पाने के लिए आंदोलित थे। नाजी शासकों से सभी यूरोपीय देश तंग आ चुके थे और अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए प्रयासरत थे। उधर रूस, ब्रिटेन और अमेरिका की सेनाएँ जर्मनी एवं इटली सहित उनके समर्थित देशों की सीमाएँ निर्धारित करने में लगी थीं। इससे इन यूरोपीय देशों को भी अपने आंदोलन को गति देने का बल मिला।

फ्रांस, बेल्जियम, हॉलैंड, डेनमार्क, नॉर्वे, चेकोस्लोवाकिया, ग्रीस, पोलैंड आदि सभी देश गुप्त रूप से नाजी सेनाओं के विरुद्ध तैयार हो रहे थे। ये सभी देश इन्हें सबक सिखाना चाहते थे। वे सभी किसी अन्य राष्ट्र की आस देख रहे थे, जो उन्हें नाजियों से मुक्ति दिला सके। परंतु उनकी यह आकांक्षा भी थी कि कहीं नाजी शासकों से मुक्त होकर वे अन्य देशों के अधीन न चले जाएँ। इसके लिए वे मित्र राष्ट्रों के लिए गुप्तचर का काम करते थे। वे जर्मन सैनिकों की अग्रिम कार्रवाई एवं उनकी ताजा स्थिति का समाचार मित्र राष्ट्रों को देते थे। इन देशों में भी सभी नागरिक लोकतंत्र की बहाली के पक्षधर नहीं थे। कुछ देशों के देशभक्तों का साम्यवाद पर भरोसा था तो कुछ लोकतंत्र की बहाली चाहते थे। युद्ध-समाप्ति के पश्चात् भी यह धारणा एक नहीं हो पाई

आजाद हिंद फौज के संस्थापक नेताजी सुभाषचंद्र बोस हिटलर के साथ।

और कुछ देशों में गृहयुद्ध छिड़ गया। मित्र राष्ट्रों में भी कुछ देश अमेरिकी-ब्रिटिश नीति के पक्षधर थे तो कुछ देशों को रूसी नीति पर भरोसा था।

भारत में स्वतंत्रता आंदोलन

सन् 1942 में जापान ने पूर्वी एशिया पर कब्जा कर लिया था। उस समय भारत में असहयोग आंदोलन चरम पर था। भारतवासी ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध प्रदर्शन कर रहे थे। उस वक्त जापान ने भारत पर आक्रमण नहीं किया था। अब दो वर्ष बाद मार्च 1944 में जापान ने भारत पर आक्रमण शुरू कर दिया। यह आक्रमण आजाद हिंद फौज के संस्थापक सुभाषचंद्र बोस के सहयोग से हो रहा था। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अग्रदूत सुभाषचंद्र बोस को अंग्रेजी हुकूमत ने नजरबंद कर लिया था। इस नजरबंदी से मुक्त होकर किसी प्रकार वे जर्मनी पहुँच गए थे। वे चाहते थे कि इस लड़ाई में ब्रिटेन पराजित हो जाए तो भारत को आजादी मिलने में आसानी होगी। उन्होंने जर्मनी पहुँचकर यूरोपीय देशों में रहनेवाले भारतीयों का एक संगठन बनाया और जर्मनी को युद्ध-संबंधी कार्य में मदद करने लगे।

जापान जब बर्मा को जीतकर भारतीय सीमा तक पहुँच गया तो बोस जापान आ गए। सिंगापुर और मलाया में लाखों की संख्या में भारतीय रहते थे। बोस ने उन्हें राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाया। यहाँ ब्रिटेन की जो सेना जापानियों की कैद में थी, उनमें भी हजारों भारतीय सैनिक मौजूद थे। वे अच्छे पारिश्रमिक एवं समृद्धि के लिए भारत में रहकर भी ब्रिटिश सेना में शामिल थे। सुभाषचंद्र बोस ने इन्हें देशभक्ति का पाठ पढ़ाया, जिससे प्रभावित होकर भारी संख्या में भारतीय आजाद हिंद फौज में शामिल हुए। बोस के नेतृत्व में उन्होंने भारत को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने का प्रण किया। जापानी सेना की सहायता से असम की पूर्वी सीमा पर मणिपुर में आजाद हिंद फौज ने हमला भी किया; परंतु वर्ष 1942 से 1944 तक जापान के भारत पर हमला न करने की स्थिति में ब्रिटिश सेना भारत में पुनर्संगठित हो चुकी थी। उन्हें आशंका थी कि जापान कभी भी भारत पर आक्रमण कर सकता था। इसके लिए ब्रिटिश सरकार तैयारी भी कर चुकी थी।

मणिपुर में जापान एवं आजाद हिंद फौज को सफलता नहीं मिली और उन्हें वापस पीछे हटना पड़ा। अब ब्रिटिश सेना बर्मा की ओर बढ़ने लगी थी,

जिससे भारत पर जापानी आक्रमण का कोई भय नहीं रह गया था। ब्रिटिश सेना निरंतर आगे बढ़ने लगी। जनवरी 1945 तक उत्तरी बर्मा ब्रिटिश सेना के अधीन हो गया। 3 मई, 1945 को बर्मा का प्रमुख नगर रंगून भी जापानियों से मुक्त होकर मित्र राष्ट्रों के अधीन हो गया। इस प्रकार संपूर्ण बर्मा पर धीरे-धीरे मित्र राष्ट्रों की सेना ने कब्जा कर लिया। उधर जनवरी 1945 में अमेरिकी सेना ने फिलिपींस पर हमले शुरू कर दिए। सैकड़ों जहाजों द्वारा लाखों अमेरिकी और ब्रिटिश सैनिक लुजोन के टापू पर उतारे गए। देखते-देखते मनीला पर उनका कब्जा हो गया और संपूर्ण फिलिपींस जापान साम्राज्य का अंग न रहकर मित्र राष्ट्रों की झोली में आ गया। इस प्रकार जितनी तीव्र गति से जापान का उत्कर्ष हुआ था, उससे भी अधिक तीव्र गति से उसका पतन हो गया।

❑

मुसोलिनी का पतन

"हजारों लोगों द्वारा कुछ की हत्या करना बहादुरी नहीं है। यह कायरता से भी बदतर है। यह किसी भी राष्ट्रवाद और धर्म के विरुद्ध है।"

—महात्मा गांधी

मित्र राष्ट्रों को लगातार सफलता मिल रही थी। उधर रूसी सेना को जीत हासिल हुई, इधर उत्तरी अफ्रीका में अमेरिका और ब्रिटेन की सम्मिलित सेना ने जर्मनों को उत्तरी अफ्रीका से खदेड़ दिया।

सिसली पर हमला

जीत के इस क्रम को जारी रखने के लिए 14 जून, 1943 को कासाब्लांका में मित्र राष्ट्रों के सेनाध्यक्षों की गोष्ठी हुई। उसमें धुरी राष्ट्रों द्वारा बिना शर्त समर्पण किए जाने तक संघर्ष जारी रखने का निश्चय किया गया। इसी गोष्ठी में यह निर्णय भी लिया गया कि उत्तरी अफ्रीका पर जीत पर जीत के बाद अब सिसली और इटली पर आक्रमण कर मित्र राष्ट्र यूरोप में प्रवेश करें। अभी यूरोप पर नाजियों और फासिस्टों का साम्राज्य था। मित्र राष्ट्र यूरोप को नाजियों और फासिस्टों से मुक्त कराना चाहते थे। इससे पूर्व अफ्रीका में मित्र राष्ट्रों की स्थिति मजबूत हो चुकी थी। इस प्रकार सबसे पहले 11 जून, 1943 को ट्यूनिस और सिसली के बीच पेंटीलेरिया द्वीप के इतालवी सैनिकों

बेनिटो मुसोलिनी और पत्नी रेचेल अपने पाँच बच्चों के साथ।

ने मित्र राष्ट्रों की युद्ध तैयारियाँ देखकर ही आत्मसमर्पण कर दिया। इसके बाद 9 जुलाई, 1943 को ब्रिटिश और अमेरिकी सैनिकों को हवाई मार्ग से सिसली के तट पर उतारा गया। सैनिकों की संख्या हजारों में थी। अगले दिन यानी 10 जुलाई, 1943 को तड़के 4 बजे सिसली पर मित्र राष्ट्रों की सेना ने आक्रमण कर दिया। इतालवी सेना देर तक मुकाबला नहीं कर पाई। मित्र राष्ट्रों की सेना निरंतर आगे बढ़ती रही और 17 अगस्त को मेसीना के महत्त्वपूर्ण बंदरगाह पर अधिकार कर लिया। यह युद्ध 39 दिनों तक चला और युद्ध-समाप्ति तक संपूर्ण सिसली मित्र राष्ट्रों के अधीन हो चुका था।

इटली पर आक्रमण

मित्र राष्ट्रों की सेना जब सिसली में युद्ध कर रही थी, तब इटली में मुसोलिनी के प्रति स्थानीय जनता का असंतोष बढ़ता जा रहा था। मुसोलिनी के नेतृत्व में इटली कहीं भी महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर पाया था। उत्तरी अफ्रीका और सिसली में मित्र राष्ट्रों की जीत के बाद इटली की जनता
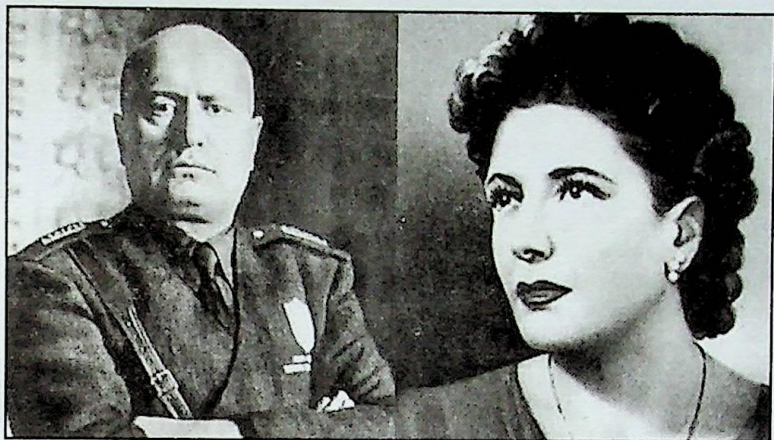
बेनिटो मुसोलिनी प्रेमिका क्लारा पेताची के साथ।

समझ गई थी कि अब इटली पर आक्रमण अवश्यंभावी है। इटली के सैन्य अधिकारी निराश हो चुके थे। मुसोलिनी समझ गया था कि इटली की रक्षा अब उसके वश की बात नहीं। उसने हिटलर से सहायता की माँग की; परंतु जर्मन सेना भी उस स्थिति में नहीं थी कि इटली की सुरक्षा के लिए अपनी सैन्य टुकड़ियाँ भेज पाती। हिटलर की सेना कई मोरचों पर रूस से उलझकर हार चुकी थी। उसकी सेना में अब वह धार नहीं बची थी कि वह एक साथ कई मोरचों पर युद्ध कर पाती। मुसोलिनी को टका सा जवाब मिला। इटली में जनता और सेना आक्रोशित थी। ऐसी स्थिति में 24 जुलाई, 1943 को फासिस्ट ग्राउंड काउंसिल ने मुसोलिनी पर त्यागपत्र देने का दबाव डाला; लेकिन वह इसके लिए राजी नहीं हुआ। वह इतालवी जनता को फुसलाने की कोशिश कर रहा था, परंतु कोई भी उसकी बात सुनने को तैयार नहीं था। ऐसे में 25 जुलाई, 1943 को इटली के शासक एमेनुएल ने मुसोलिनी को अपदस्थ कर दिया। उसे गिरफ्तार कर अज्ञात स्थान पर नजरबंद कर दिया गया। तदनंतर मार्शल बोदोग्लियो को प्रधानमंत्री नियुक्त कर उसके नेतृत्व में नई सरकार बनाई गई। बोदोग्लियो 75 वर्षीय वृद्ध था। युद्ध के दौरान कई बार उसने कुशल नेतृत्व क्षमता प्रदर्शित की थी। वह दिल से फासिस्ट नहीं था। प्रधानमंत्री पद ग्रहण करने के बाद उसने घोषणा की कि वह युद्ध जारी रखेगा, परंतु वस्तुस्थिति से वह अवगत था। इतालवी जनता और सेना युद्ध के पक्ष में नहीं थी। उन्हें ज्ञात था कि मित्र राष्ट्रों की विशाल सेना के समक्ष

बुरे का अंत बुरा : फासीवाद के प्रवर्तक मुसोलिनी और उसकी प्रेमिका क्लारा पेताची का खौफनाक अंत।

इतालवी सेना बिलकुल नहीं टिक पाएगी। वह भी तब जब हिटलर का साथ इटली को न मिल रहा हो। परिणामस्वरूप 3 सितंबर, 1943 को आइजनहॉवर के पास बोदोग्लियो ने अपना शांतिदूत भेजा और संधि का प्रस्ताव रखा।

मित्र राष्ट्रों की सेना अभी इटली में नहीं घुसी थी। मुसोलिनी के पतन से हिटलर वैसे ही चिंतित था और बोदोग्लियो के मित्र राष्ट्रों के समक्ष घुटने टेक देने से वह और उखड़ गया। ऐसी स्थिति में उसने इटली में अपनी सेना भेजनी प्रारंभ कर दी। मुसोलिनी को 25 जुलाई को बंदी बनाया गया था और मित्र राष्ट्रों की सेना 2 सितंबर को इटली में प्रवेश कर रही थी। इस बीच हिटलर अपनी कई सैन्य टुकड़ियाँ इटली की सुरक्षा के लिए भेज चुका था। हालाँकि बोदोग्लियो संधि चाहता था, परंतु उसकी अनदेखी करते हुए हिटलर मित्र राष्ट्रों की सेना से टक्कर लेने लगा। जर्मन सेना से मित्र राष्ट्रों को प्रबल प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा था। हालाँकि इटली के दक्षिणी हिस्सों में उन्हें आसानी से सफलता मिल गई, परंतु उत्तरी हिस्से में कड़ा संघर्ष जारी रहा।

फासीवादी विचारधारा के प्रवर्तक मुसोलिनी का पतन यूरोपीय इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण था। मुसोलिनी भी हिटलर की तरह अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी और साम्राज्य-विस्तार की होड़ में शामिल था। अगर वह अपने अधिकृत भूभाग को सँवारने में लग जाता तो इटली का उत्कर्ष चरम पर होता और इतिहास में उसका दर्जा कुछ और होता।

आखिर 29 अप्रैल, 1945 को उत्तरी इटली की मुक्तिवाहिनी ने बेनिटो मुसोलिनी, उसकी प्रेमिका क्लारा पेताची तथा कुछ अन्य फासीवादी साथियों को मारकर मिलान में उलटा लटका दिया।

❑

मित्र राष्ट्रों का फ्रांस में विजय अभियान

''परमाणु युद्ध जीतने का तरीका है यह सुनिश्चित करना कि यह कभी शुरू ही न हो।''

—ओमर ब्रेडले

हिटलर की शक्ति की समाप्ति के लिए मित्र राष्ट्र सन् 1942 में ही फ्रांस पर आक्रमण करना चाहते थे। रूस भी जर्मनी के दबाव को कम करने के लिए फ्रांस में दूसरा मोरचा खोलना चाहता था। किंतु फ्रांस पर आक्रमण के लिए भारी संख्या में जल, थल और वायु सेना की टुकड़ियों की आवश्यकता थी। हिटलर ने अपने यूरोपीय साम्राज्य की सुरक्षा के लिए संपूर्ण अटलांटिक तट पर विशाल सेना की व्यवस्था कर दी थी और कई स्थानों पर जबरदस्त किलेबंदी की गई थी। इसके लिए मित्र राष्ट्रों ने सर्वप्रथम बड़े पैमाने पर विमानों, तोपों, युद्धक विमानों, नौसेना और वायुसेना के प्रयोग में आनेवाले विभिन्न वैज्ञानिक एवं उत्कृष्ट उपकरणों के उत्पादन पर जोर दिया। सन् 1943 के अंत तक ब्रिटिश और अमेरिकी सैनिकों ने मिलकर जर्मन पनडुब्बियों को करारा जवाब देना प्रारंभ कर दिया था, फलतः अमेरिका से युद्ध-सामग्री ब्रिटेन तक आसानी से लाई जाने लगी। ब्रिटेन और अमेरिका लगातार अपनी प्रहार क्षमता बढ़ा रहे थे। ब्रिटिश वायुसेना की आक्रमण क्षमता काफी बढ़
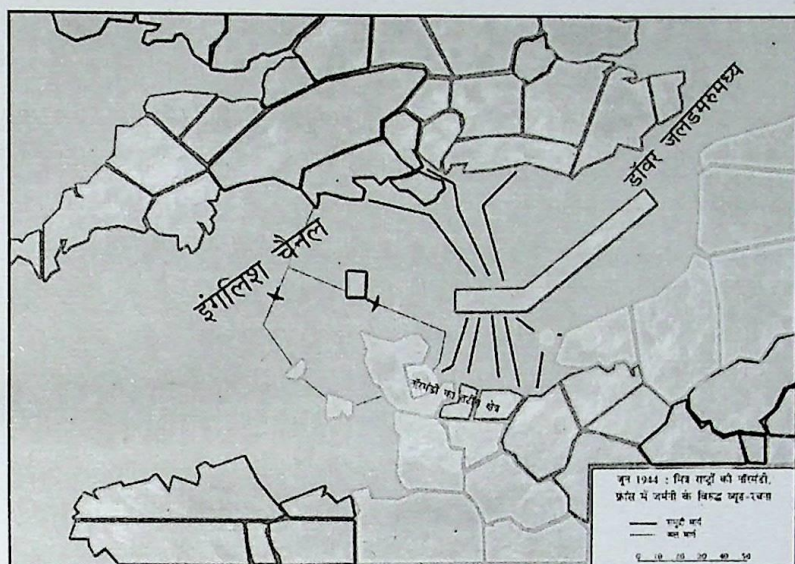
चुकी थी। 30 मई, 1942 को ब्रिटेन ने पहली बार 1,000 से भी अधिक बम कोलोन पर गिराए, जिससे जर्मनी के कई प्रमुख औद्योगिक केंद्र और महत्त्वपूर्ण सैनिक ठिकाने ध्वस्त हो गए। इसके बाद प्रतिदिन 200 से 600 बमवर्षक विमान जर्मनी पर बम बरसाते रहे। सन् 1942 में नाजियों के विरुद्ध अमेरिकी विमान भी भेजे जाने लगे थे। इस प्रकार, सन् 1943 तक जर्मनी के कई प्रमुख औद्योगिक केंद्रों, बंदरगाहों और सैन्य छावनियों पर बमबारी चलती रही।

मित्र राष्ट्रों ने उधर उत्तरी अफ्रीका पर भी कब्जा कर लिया था। उसके बाद लगातार सिसली और इटली पर भी अपनी विजय पताकाएँ फहरा दी थीं। इटली में मुसोलिनी के फासीवाद का अंत हो चुका था। परंतु रूस पर जर्मन आक्रमण की धार मंद नहीं पड़ी थी। जर्मन सेना को रूस में आगे बढ़ने से रोकने के लिए रूस ने काफी संख्या में अपने सैनिक लगा रखे थे। इससे रूसी अर्थव्यवस्था चरमराने लगी थी। रूस चाहता था कि ब्रिटेन और अमेरिका जर्मनी से दूसरे मोरचों पर युद्ध करें। वे भी जर्मनी के खिलाफ दूसरे मोरचों पर युद्ध चाहते थे; परंतु इसके लिए पहले वे पूर्ण रूप से तैयार हो रहे थे।

28 नवंबर से 1 दिसंबर, 1943 तक चले तेहरान सम्मेलन में चर्चिल, रूजवेल्ट और स्टालिन ने अपने सैन्य सलाहकारों और युद्ध विशेषज्ञों से मिलकर जर्मनी को अंतिम रूप से नष्ट करने के लिए मई 1944 में फ्रांस पर

काबिज जर्मन सेना पर पूरी शक्ति से आक्रमण करने की योजना बनाई। इस सम्मेलन में स्टालिन ने आश्वस्त किया कि वह भी उसी समय पूर्वी मोरचे पर जर्मनों के विरुद्ध आक्रमण करेगा, ताकि हिटलर अपनी सेना को पश्चिमी मोरचे पर न भेज सके। इस तरह, संगठित होकर जनरल आइजनहॉवर को पश्चिमी यूरोप में आक्रमण की कमान सौंपी गई।

इस प्रकार काफी दिनों से बनी योजना का कार्यान्वयन 5 जून, 1944 को पहली बार हुआ। इस दिन सुबह-सुबह 11,000 सैनिक विमानों द्वारा 400 से अधिक विभिन्न प्रकार के जहाजों में मित्र राष्ट्रों की सेना नॉरमंडी के तटवर्ती चार स्थानों पर उतारी गई। सिर्फ एक ही दिन में फ्रांस के उत्तर-पश्चिमी कोने में समुद्र-तट पर 2.5 लाख सैनिक उतार दिए गए। यह क्रम लगातार जारी रहा और सितंबर 1944 तक 30 लाख सैनिक फ्रांस पहुँच गए। फ्रांस के जिस स्थान पर सैनिकों को उतारा जा रहा था, वहाँ कोई बंदरगाह भी नहीं था। वहाँ समुद्र-तट पर तैरता हुआ विशाल प्लेटफॉर्म बनाया गया था। वहाँ इंग्लैंड से फ्रांस तक पाइप लाइन भी बिछाई गई थी, जहाँ से होकर पेट्रोल फ्रांस पहुँचाया जाना था। यह पाइप लाइन समुद्र के भीतर बिछाई गई थी। उसकी सुरक्षा के लिए पाइप लाइन के ऊपर लगातार हवाई जहाजों की तैनाती की गई थी।

जर्मनी की जबरदस्त किलेबंदी को तोड़ने के लिए सिर्फ 5 जून, 1944 की रात को ही ब्रिटिश हवाई जहाजों ने इस क्षेत्र पर 5,000 टन बम गिराए।

तेहरान सम्मेलन में स्टालिन, रूजवेल्ट और चर्चिल।

जून 1944 : फ्रांस के नॉरमंडी तट पर मित्र राष्ट्रों की सेना का जमावड़ा।

इसके अगले दिन 6 जून को अमेरिकी बमवर्षक विमानों ने 20 हजार टन बम बरसाए। जर्मनी से इस समुद्रत्तट तक आनेवाले सभी सड़क मार्गों व रेलमार्गों को ध्वस्त कर दिया गया, ताकि जर्मनी की अतिरिक्त सेना वहाँ तक न पहुँच सके। 6 जून से 8 जून तक 27 हजार हवाई जहाजों ने फ्रांस के समुद्र-तट पर उड़ान भरी। इस विशाल योजना का परिणाम यह निकला कि मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ फ्रांस सुरक्षित पहुँच गईं और अब वहाँ से उनका आगे बढ़ना शुरू हो गया। उधर फ्रांस में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं थी, जो जर्मनी से मुक्ति चाहते थे। वे जर्मन चंगुल से मुक्त होने के लिए मित्र राष्ट्रों की सहायता कर रहे थे। जनरल द गॉल के नेतृत्व में आजाद फ्रांसीसी सेना भी मित्र राष्ट्रों के साथ मिलकर काम करने लगी थी।

कई प्रकार की शक्तियाँ एक साथ मिलकर हिटलर की नाजी सेना के विरुद्ध लड़ रही थीं। ऐसे में नाजी ताकतों का अधिक देर तक टिक पाना संभव नहीं था। 12 जून तक मित्र राष्ट्रों की सेना ने केन और चरबर्ग के बीच लगभग 80 मील के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया और पहली बार हिटलर की अटलांटिक दीवार को भेदने में सफलता प्राप्त की। यह युद्ध इतिहास में सबसे

सफल और अद्वितीय संयुक्त सैन्य अभियान के रूप में दर्ज है। 26 जून को चरबर्ग में जर्मन सेना ने मित्र राष्ट्रों के सैनिकों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। इससे नॉरमंडी क्षेत्र में मित्र राष्ट्रों की स्थिति मजबूत हो गई। इसके उपरांत जर्मन सैनिकों ने ब्रिटिश-अमेरिकी सैनिकों पर जबरदस्त प्रत्याक्रमण किया और लगभग एक महीने तक उन्हें आगे नहीं बढ़ने दिया।

18 जुलाई को जनरल ब्रेडले के नेतृत्व में प्रथम अमेरिकी सेना ने सेंटलो पर कब्जा कर लिया । 15 अगस्त, 1944 को फ्रांस के पूर्वी समुद्र-तट पर ब्रिटिश, अमेरिकी और आजाद फ्रांसीसी सेनाएँ उतरने लगीं। इनका उद्देश्य राइन घाटी में आगे बढ़कर फ्रांस और इटली के बीच संपर्क समाप्त करना था। 23 अगस्त को मार्सेटय के महत्त्वपूर्ण बंदरगाह पर मित्र राष्ट्रों की सेना ने कब्जा कर लिया। 25 अगस्त को जनरल द गॉल ने अपने सहयोगियों के साथ पेरिस में प्रवेश किया। तब पेरिसवासियों की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। कुछ पल के लिए वे भूल गए कि अभी पेरिस से जर्मनी की सेनाएँ हटी नहीं थीं। जनरल द गॉल का पेरिसवासियों ने गर्मजोशी से स्वागत किया। जर्मन सैनिकों ने इनके दमन का भरपूर प्रयत्न किया। जनरल द गॉल के जुलूस पर गोलियाँ चलाई गईं, परंतु इसकी परवाह किए बगैर वे आगे बढ़ते गए और अंततः पेरिस के जर्मन सेनाध्यक्ष को समर्पण करना पड़ा। इस तरह जर्मन नाजीवादी चंगुल से पेरिस आजाद हो चुका था। जनरल द गॉल के नेतृत्व में फ्रांस में तत्काल सामयिक सरकार का गठन कर दिया गया।

पेरिस पर मित्र राष्ट्रों की जीत से सैनिकों का उत्साह बढ़ गया। वहीं जर्मन सैनिकों के हौसले टूटने लगे। पेरिस के विजय अभियान में 4 लाख से अधिक जर्मन सैनिक मारे गए, घायल हुए या बंदी बना लिये गए। इस युद्ध में जर्मनी के 1,300 टैंक, 3,500 से अधिक विमान, 20 हजार से भी अधिक सैन्य वाहन एवं अन्य युद्ध-सामग्री नष्ट हुई।

पेरिस पर विजय पताका फहराने के बाद मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ बड़ी तेजी से उत्तर में बेल्जियम की ओर बढ़ने लगीं। सितंबर 1944 में मित्र राष्ट्रों की सेना ने ब्रुसेल्स पर अधिकार कर लिया। इसके कुछ घंटों बाद एंटवर्प पर भी जीत हासिल हो गई। जीत के क्रम में सितंबर के मध्य तक संपूर्ण बेल्जियम ही नहीं, बल्कि हॉलैंड और लक्जमबर्ग पर भी अधिकार करती हुई मित्र राष्ट्रों की सेना जर्मनी की सीमा तक जा पहुँची। परंतु जर्मनी की मजबूत सुरक्षा के लिए बनी 'सीजफ्रीड लाइन' को भेद पाना सरल नहीं था। इस युद्ध

में 9 लाख जर्मन सैनिकों की या तो मौत हुई या वे बुरी तरह घायल हो गए। इस समय मित्र राष्ट्रों के सैनिक खेमों में जबरदस्त उत्साह एवं मनोबल दिख रहा था। स्थिति ऐसी थी मानो वर्ष 1944 के अंत तक युद्ध समाप्त हो जाएगा, परंतु वैसा नहीं हो पाया।

जर्मन वैज्ञानिक इस प्रयास में जुटे थे कि कुछ ऐसे आविष्कार किए जाएँ, जिससे मित्र राष्ट्रों की सेना का संपूर्ण विनाश किया जा सके। जर्मन वैज्ञानिकों ने ऐसे मारक बम का निर्माण किया, जो 400 मील प्रति घंटे की गति से गमन कर सकता था और उसे किसी चालक के बगैर 150 मील की दूरी तक लक्ष्य बनाकर छोड़ा जा सकता था। इस दूरी के अंतर्गत जर्मनी के किसी सुरक्षित स्थान से अगर इसे छोड़ा जाता तो लंदन तक बम बरसाए जा सकते थे। वर्ष 1944 के अंत में इन बमों का प्रयोग शुरू हो गया और सिर्फ तीन महीने में 800 से भी अधिक ऐसे बम ब्रिटेन पर बरसाए गए। इससे ब्रिटेन में लंदन के समीपवर्ती इलाकों सहित अन्य कई भागों में जबरदस्त क्षति हुई। उन बमों की मारक क्षमता इतनी प्रचंड थी कि वे बड़ी-से-बड़ी इमारत को पल भर में नष्ट कर देते थे। जहाँ कहीं वह बम गिरता, पल भर में सबकुछ समाप्त हो जाता।

कुछ ही दिनों बाद जर्मनी ने इससे भी अधिक मारक क्षमतावाले बम का निर्माण कर लिया, जिसे 'रॉकेट बम' नाम दिया गया। उस बम की गति ध्वनि की गति से भी अधिक तेज थी। उसे जमीन से 90 मील की ऊँचाई तक फेंका जा सकता था। उस बम की सूचना भी प्राप्त नहीं की जा सकती थी। इससे उसके प्रयोग से होनेवाले नुकसान की दर अपेक्षाकृत अधिक हो जाती थी। जर्मन वैज्ञानिकों ने इस बम का निर्माण न्यूयॉर्क को जर्मनी में बैठे-बैठे ही उड़ाने के उद्देश्य से किया था। इस बम के प्रयोग के लिए न तो किसी जहाज की जरूरत थी, न किसी बमवर्षक विमान की। इस तरह के आविष्कारों ने मित्र राष्ट्रों में तहलका मचा दिया। ब्रिटेन अधिक परेशान था, क्योंकि उसे ही सबसे अधिक नुकसान उठाना पड़ रहा था। जर्मन वैज्ञानिक कई वर्षों से इस तरह के हथियार बनाने में लगे हुए थे। हिटलर को इतनी देरी का अनुमान नहीं था। जब तक ये बम बनाए गए, मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ यूरोप में प्रवेश कर चुकी थीं।

जर्मनों पर इन पराजयों का बुरा असर पड़ रहा था। जर्मन सेनानायकों को लगने लगा था कि अब उनकी हार तय है। हिटलर ने जिन वैज्ञानिक

आविष्कारों की उम्मीद सन् 1943 में की थी, उनमें भी देरी हो गई। जर्मन वैज्ञानिक एटम बम के निर्माण में भी लगे हुए थे। हिटलर को उम्मीद थी कि वे बम जल्द ही बन जाएँगे, परंतु वैसा नहीं हो पाया। जब तक इस प्रकार के मानव-संहारक बम बनते, मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ जर्मनी में दस्तक दे चुकी थीं। ❑

जर्मनी की हार : हिटलर का पतन

"शांति में बेटे अपने पिता को दफनाते हैं, लेकिन युद्ध में पिता अपने बेटे को दफनाते हैं।"

—क्रोएसुस

मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ फ्रांस एवं बेल्जियम पर कब्जे के बाद हॉलैंड में प्रवेश कर चुकी थीं। अक्तूबर 1944 में हॉलैंड का दक्षिणी भाग जीत लिया गया। अगले महीने नवंबर में मित्र राष्ट्रों की सेना जर्मन सीमा पार कर जर्मनी में प्रवेश कर चुकी थी। इस समय मित्र राष्ट्रों का 400 मील लंबा सैन्य समूह एक साथ जर्मनी में प्रवेश कर रहा था। इसके उत्तर में ब्रिटिश, मध्य में अमेरिकी और दक्षिण में फ्रांसीसी सेनाएँ थीं। दिसंबर के मध्य में जर्मन सैनिकों ने आर्दनीज क्षेत्र में मित्र राष्ट्रों की सेना पर जबरदस्त प्रत्याक्रमण किया। शुरुआत में सफलता भी मिली, परंतु तीन सप्ताह तक लगातार चले संघर्ष के बाद अंतत: नाजी सेना को पीछे जाना पड़ा। हालाँकि 24 नवंबर, 1944 को ही मित्र राष्ट्रों की सेना राइन नदी पार कर चुकी थी, परंतु उसके आगे जर्मन सेना से उसे डटकर मुकाबला करना पड़ा। इस संघर्ष में जर्मन सेना को अपेक्षाकृत अधिक नुकसान हुआ।

उधर पूर्वी रणक्षेत्र में पूर्व निर्धारित योजना के मुताबिक रूस ने जर्मनी पर हमला कर दिया, परंतु अब जर्मनी में वह दम-खम नहीं था कि वह रूस का मुकाबला कर सके। इससे पहले रूस अपने सभी प्रदेशों को उससे मुक्त

करा चुका था। रूस तीन तरफ से आगे बढ़ रहा था। उसकी एक सेना बाल्टिक तट की ओर से विभिन्न राज्यों को जर्मनी से मुक्ति दिला रही थी तो दूसरी सेना ने आगे बढ़ते हुए जनवरी 1945 में वारसा पर कब्जा कर लिया था। वारसा जीतने के बाद यही सेना बर्लिन की तरफ बढ़ गई। इस सेना की एक टुकड़ी चेकोस्लोवाकिया की तरफ भी बढ़ चली थी। रूस की तीसरी सेना स्टालिनग्राद की तरफ से आगे बढ़ रही थी। यह सेना नीस्टर नदी को पार कर फरवरी 1945 में रूमानिया पहुँच गई और रूमानिया को जीत कर ऑस्ट्रिया की तरफ बढ़ गई।

7 मार्च को कोलोन नगर पर अमेरिकी सेना ने अधिकार कर लिया और सार के औद्योगिक क्षेत्र से जर्मन सेनाओं को खदेड़ दिया। रूसी सेना अनवरत आगे बढ़ रही थी। अप्रैल 1945 में इसने विएना पर कब्जा कर लिया। जर्मन सेना हर मोरचे पर रूसी या अन्य किसी भी मित्र सेना के समक्ष अधिक देर तक नहीं टिक पा रही थी। मित्र राष्ट्रों ने पूर्वनिर्णय कर लिया था कि जर्मनी की राजधानी बर्लिन की जीत का श्रेय रूस को ही दिया जाना चाहिए। इसलिए बर्लिन विजय के लिए रूसी सेना ने जबरदस्त इंतजाम किए थे। योजनानुसार दो शक्तिशाली रूसी सैन्य दलों ने दो तरफ से बर्लिन पर आक्रमण किया। उत्तरी आक्रमण का नेतृत्व मार्शल झुकोव को सौंपा गया,

पराजय के बाद ध्वस्त बर्लिन।

ध्वस्त बर्लिन पर जीत का परचम फहराते रूसी सैनिक।

वहीं दक्षिणी आक्रमण का जिम्मा मार्शल कोनीव के हाथ में था। दोनों तरफ से निर्बाध आगे बढ़ती विशाल सेनाएँ थोड़े ही दिनों में बर्लिन के करीब थीं। जिस हिटलर ने पूरी दुनिया पर विजय का सपना सँजोया था, उसके देश की राजधानी तक रूसी सेना के पहुँच जाने से उसकी छटपटाहट एवं मानसिक स्थिति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

हिटलर किसी भी प्रकार बर्लिन की रक्षा करना चाहता था। इसके लिए वह कोई भी कसर नहीं छोड़ना चाहता था। उसने आक्रामक भाषण देकर

नाजी सेना में जान फूँक दी। आत्मसमर्पण की बात.उनके दिमाग से खुरच दी गई।

हिटलर ने अपनी पूरी शेष बची शक्ति बर्लिन में झोंक दी। लाखों सैनिकों, तोपों एवं अन्य युद्ध-सामग्री का जमावड़ा बर्लिन में कर लिया गया। इस महासमर में पग-पग पर रूसी सेना को कड़ी चुनौती दी गई। अंततः रूस विजयी रहा और बर्लिन के राजभवन में मई 1945 में रूसी झंडा लहरा दिया गया।

इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों की जीत हुई। पश्चिम और दक्षिण की ओर से आगे बढ़ रही मित्र राष्ट्रों की जो सेनाएँ जर्मनी पर आक्रमण कर रही थीं, वे भी अपने उद्देश्य में सफल रहीं। उधर एक सेना बेल्जियम से आगे बढ़ चुकी थी और मार्च 1945 में राइन नदी पार कर उसने हाम्बुर्ग पर कब्जा कर लिया। दूसरी सेना बर्लिन में आ घुसी और तीसरी दक्षिण-पूर्व की ओर से बढ़ती हुई म्यूनिख तक पहुँच गई और आगे बढ़ते-बढ़ते डेन्यूब नदी के पास रूसी सेना से मिल गई। अब संपूर्ण जर्मनी में ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस और रूस का कब्जा हो गया। इस प्रकार धुरी राष्ट्रों के मुखिया जर्मनी और इटली पूरी तरह मित्र राष्ट्रों से पराजित हो गए।

मार्शल पेताँ

बर्लिन पर पूर्ण रूसी नियंत्रण के बाद हिटलर की मानसिक स्थिति समझी जा सकती थी। मार्शल पेताँ उस वक्त 90 वर्ष के थे। वे स्विट्जरलैंड होकर फ्रांस आ गए। फ्रांसीसी जनता उन्हें आदर की नजर से देखती थी। उनका फ्रांस में बहुत सम्मान था। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान मार्शल पेताँ ने ही जर्मनी के कब्जे से पेरिस को बचाया था। पेरिस को बरबाद होने से बचाने के लिए उन्होंने हिटलर से समझौता कर दुनिया की उस अनुपम नगरी को उजड़ने से बचा लिया था। विशी में स्थापित फ्रांसीसी सरकार का नेतृत्व उन्हीं के हाथों में था। जनरल द गॉल के नेतृत्ववाली आजाद फ्रांसीसी सरकार को विशी सरकार अपना दुश्मन समझती थी। इस समय फ्रांस द गॉल के हाथों में था, इसलिए लोगों का मानना था कि पेताँ से शत्रु जैसा बरताव करना चाहिए और उन्हें सजा मिलनी चाहिए। उन्हें गिरफ्तार भी किया गया, मुकदमे भी चले। परंतु फ्रांसीसी जनता उन्हें आदर देती थी, अतः उन्हें मौत की सजा नहीं दी गई। बाद में उन्हें जेल से भी मुक्त कर दिया गया।

षड्यंत्रकारियों ने 17 बार हिटलर को जान से मारने की कोशिश की, परंतु वह हर बार बच गया। ऐसे ही उसकी हत्या के लिए किए गए एक बम विस्फोट के बाद जाँच करते हरमन गोएरिंग, प्रचार मंत्री जोसफ गोएबेल्स तथा अन्य अधिकारी।

हिटलर की हत्या का षड्यंत्र

हिटलर ने जर्मनी में पूर्ण नाजी व्यवस्था लागू करने का भरपूर प्रयास किया और वह उसमें सफल भी रहा। उसने नाजी-विरोधी तत्त्वों को जड़ से उखाड़ फेंकने का हरसंभव प्रयास किया, परंतु विरोधी तत्त्वों का अस्तित्व पूरी तरह मिटा पाने में सक्षम नहीं हुआ। उसके क्रूर रवैए से उसकी फौज के कुछ अफसर ही उसके विरोधी बन गए थे। उसकी तानाशाही के खात्मे के लिए उसकी हत्या की योजना कई बार बनी और उसे अंजाम भी दिया गया।

सबसे पहले यह योजना 1938 में बनाई गई। हत्यारों का मानना था कि हिटलर समूचे जर्मनी को अकारण एक बहुत ही विध्वंसक लड़ाई की ओर धकेल रहा था। जबकि जर्मनी के विरोध में ब्रिटेन, फ्रांस एवं पोलैंड जैसे सशक्त देश एकजुट थे। हिटलर की हत्या की योजना बनाने में तत्कालीन जनरल हेल्डर एवं जनरल फॉन विथ शालेवन, अर्थशास्त्री डॉ. शेक्ट एवं हेन्स घिशेवियस तथा कार्डेट जैसे बड़े सरकारी अधिकारी शामिल थे। इसके लिए

उन्होंने 28 दिसंबर, 1938 की तारीख तय की। परंतु ठीक उसी दिन ब्रिटिश प्रधानमंत्री चेंबरलेन के म्यूनिख आने की सूचना प्राप्त हुई। अत: उस योजना को कुछ समय के लिए टाल दिया गया। हिटलर के पतन की इच्छा केवल मित्र राष्ट्रों की ही नहीं थी, अपितु उसके विरोधी भी अब उसकी तानाशाही से जल्द-से-जल्द मुक्ति पाना चाहते थे। ये विरोधी भी तीन-चार गुटों में विभक्त थे। यद्यपि ये सभी एकमत से हिटलर की हत्या चाहते थे, परंतु इनकी नीतियाँ, आदर्श एवं हिटलर के पतन की वजहें भी अलग-अलग थीं।

सन् 1943 में रूसी सेना से बुरी तरह मात खा रही हिटलरशाही से जर्मन युवाओं में काफी रोष व्याप्त था। छात्रों में नाजीवाद के प्रति घृणा के भाव उत्पन्न हो चुके थे। नाजी-विरोधी छात्रों के इस दल का संचालन मेडिकल के एक छात्र हेंस कोल तथा उसकी छोटी बहन शोफिया के हाथों में था और वे हिटलर-विरोधी गुटों के भी संपर्क में थे।

जर्मनी में युद्ध से उत्पन्न कुछ समस्याओं को लेकर बैवरिया के प्रशासक पॉल गिजलर ने विश्वविद्यालय के छात्रों की एक सभा को संबोधित करते हुए घोषणा की कि "देश के सभी पुरुष सेना में अपना योगदान दे रहे हैं और बचे हुए लोगों से यह उम्मीद की जाती है कि संकट के इस समय में वे असैनिक कार्यों के साथ कुछ अन्य जिम्मेदारियाँ भी वहन करेंगे।" घोषणा में आगे उसने कहा कि "जर्मन जाति एवं उसके विकास में विश्वविद्यालय की छात्राओं को भी विशेष भूमिका निभानी होगी। प्रत्येक छात्रा को प्रतिवर्ष एक जर्मन बच्चे को जन्म देना होगा।"

उसकी इस घोषणा की समाप्ति तक छात्रों का आक्रोश प्रशासक के साथ उसके अंगरक्षक एवं वहाँ तैनात एस.एस. वाहिनी के लोगों पर भी फूट पड़ा। किसी प्रकार स्थिति को काबू में लाया गया। परंतु अगले ही दिन छात्रों ने हिटलर के विरुद्ध सड़कों पर नारेबाजी करते हुए प्रदर्शन किए, फलत: अनेक छात्र-छात्राओं समेत कई अध्यापकों व कोल एवं उसकी छोटी बहन सोफिया को फाँसी पर चढ़ाकर खामोश कर दिया गया।

इधर वर्ष 1943 में चल रहे युद्ध में जर्मन सेना हर मोरचे पर हार की कगार पर थी। इस पूरे वर्ष में कम-से-कम 6 बार हिटलर को मारने की कोशिश की गई। परंतु सभी हमले व्यर्थ साबित हुए। स्मोलनस्क स्थित सैन्य मुख्यालय के निरीक्षण के लिए 13 मार्च, 1943 को हिटलर जिस विमान से जाने वाला था, उसमें सेना के ही दो अफसरों स्टेशकॉव एवं स्लाम्बेन डॉव ने

एक टाइम बम रख दिया; परंतु दुर्भाग्यवश वह नहीं फटा और अत्यंत ही कुशलतापूर्वक उन्होंने वापस उसे हटा लिया। इसके बाद पुनः 21 मार्च, 1943 को लड़ाई में शहीद जवानों की याद में आयोजित एक सभा में हिटलर, हरमन गोरिंग, हिमलर, कायटेल जैसे बड़े नेताओं के आने की सूचना षड्यंत्रकारियों को प्राप्त हुई। वे इस अवसर का पूरा लाभ उठाना चाहते थे। इस बार हिटलर को मारने की जिम्मेदारी फील्ड मार्शल क्लूज के खुफिया अधिकारी कर्नल जेसे डार्फ को सौंपी गई। कर्नल डार्फ अपने ओवरकोट में दो बम रखकर समारोह में शामिल हो गया। उसकी मंशा थी, हिटलर के अत्यंत करीब पहुँचकर बम विस्फोट करना। वह स्टेज पर पहुँचने में कामयाब भी हो गया। परंतु हिटलर के पूर्व निर्धारित आधे घंटे के कार्यक्रम को एकाएक तब्दील कर सिर्फ 8 मिनट का कर दिया गया और वह वापस चला गया। इसके पश्चात् तीन अन्य मौकों पर हिटलर को अपने विरुद्ध षड्यंत्र रचे जाने का एहसास हुआ। अब तो वह अपने कार्यक्रमों में अचानक फेर-बदल करने लगा और रास्तों में भी एकाएक बदलाव लाने लगा।

एक प्रकार से हिटलर ने स्वयं को भूमिगत कर लिया, परंतु फिर भी षड्यंत्रकारियों ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। षड्यंत्रकारी लगातार 11 जुलाई,

हिटलर, उसकी प्यारी कुतिया ब्लोंडी और इवा ब्राउन।

फिर 15 जुलाई, 1943 को अपनी योजना को स्थगित करने को मजबूर होते रहे। अब 20 जुलाई को हिटलर के मुख्यालय में मुसोलिनी के आगमन पर इस योजना को अंजाम देने की सोची गई। षड्यंत्रकारियों के प्रमुख नेता स्टॉफेन बुर्ग ने इस बार योजना को मूर्तरूप देने की ठान ली थी। मीटिंग हॉल में कायटल व जॉर्डल समेत कई अन्य नाजी समर्थक हिटलर का बेसब्री से इंतजार कर रहे थे। वहीं स्टीफेन बुर्ग भी अपने ब्रीफकेस में रखे बम के साथ उसकी बाट जोह रहा था। बंकर में बने उस हॉल की लंबाई 30 फीट व चौड़ाई 15 फीट थी। हॉल के बीचोबीच एक मेज के ऊपर युद्ध का नक्शा रखकर हिटलर अपने 24 अन्य अधिकारियों के साथ वाद-विवाद करने लगा। उसके ठीक बाईं ओर कायटेल तथा जॉर्डेल थे। स्टीफेन बुर्ग बमवाला बैग हिटलर की दाहिनी ओर की मेज के नीचे रख हॉल से बाहर निकल गया। दोपहर पौने एक बजे खतरे से अनजान सभी व्यक्ति पूर्वी मोरचे की भीषण समस्या पर चर्चा कर रहे थे कि तभी एक जोरदार धमाका हुआ। धमाका इतना तेज था कि हॉल की सतह से छत तक सब चूर-चूर हो चुका था। हॉल में मौजूद मेज एवं कुर्सियों के टुकड़े-टुकड़े हो गए।

इस भयानक विस्फोट में कई लोग बुरी तरह घायल हुए। हिटलर भी इस अचानक हुए विस्फोट में घायल हो गया था, पर सुरक्षित था। जबकि स्टेनोग्राफर एवं अन्य लोगों के साथ कर्नल ब्रॉण्डिट, जनरल स्मोंडेट और जनरल कॉटेन मारे जा चुके थे। जर्मनी में हिटलर-विरोधियों के बढ़ते कदमों को रोकने के लिए एक निर्देश जारी किया गया। इसके अंतर्गत ऐसे किसी भी विरोधी व्यक्ति या संगठन का पता चलते ही उसे गिरफ्तार करने और व्यवधान उत्पन्न करने पर गोली मारने के आदेश दे दिए गए। अब तो एस. एस. एवं एस.एस.ए. वाहिनी के लोगों ने प्रतिशोध के लिए लोगों को मारने की ठान ली। इस अभियान के तहत तकरीबन 35 हजार लोगों को गिरफ्तार किया गया। 5 हजार से अधिक जर्मन नागरिकों को मौत के घाट उतार दिया गया, जिनमें प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. शॉक्ट, जनरल हेल्डर, स्टॉफेन बुर्ग तथा गोयरे डेलर जैसे विशेष लोग भी शामिल थे। हिटलर की हत्या के आरोपी षड्यंत्रकारियों को बहुत ही दर्दनाक मौत दी गई। परंतु अब भी वह अपने विरोधियों को समूल नष्ट नहीं कर पाया था। भारी विरोध के बावजूद उसकी युद्ध-नीतियों में कोई अंतर नहीं आया।
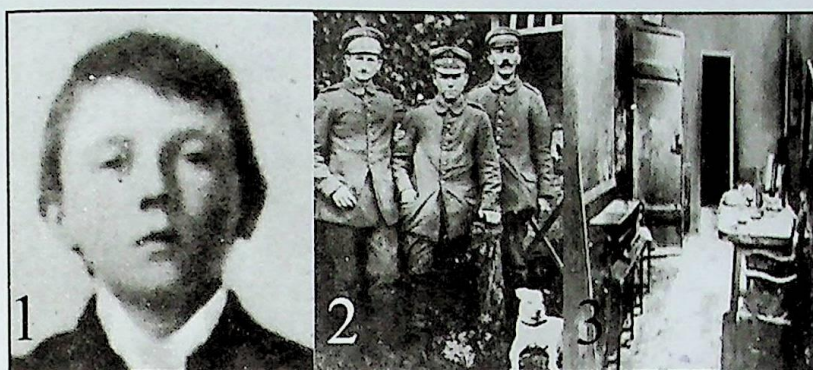
1. हिटलर के बचपन का एक फोटो, 2. हिटलर प्रथम विश्व युद्ध के समय एक साधारण फौजी (एकदम दाएँ) था, 3. हिटलर के बंकर का एक कक्ष, जहाँ उसने अपने आखिरी क्षण गुजारे थे।

हिटलर का अंत

हिटलर अपनी सुरक्षा के मद्देनजर 16 जनवरी, 1945 को ही बर्लिन में जमीन से 50 फीट नीचे बने अति विशिष्ट बंकर में रहने लगा था। उस बंकर में युद्ध-संचालन की सारी व्यवस्था उपलब्ध थी। बंकर काफी बड़ा था। उसके एक भाग में 12 कक्ष विशिष्ट व्यक्तियों के लिए बने थे एवं दूसरा भाग हिटलर व उसकी भावी पत्नी इवा ब्राउन के लिए आरक्षित था। उसमें कुल 18 कक्ष थे। संकट के समय वहाँ से भागने के लिए सुरंगें भी बनाई गई थीं। इस भूमिगत कार्यालय में हिटलर रोजाना अपने सहायकों के साथ बैठकें करता था। 20 अप्रैल, 1945 को हिटलर का 56वाँ जन्मदिवस था। हर वर्ष यह दिन बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। बंकर में इस दिन के आयोजन की विशेष तैयारियाँ की गईं। लगभग दोपहर तक हिटलर के अभिवादन का समय तय था, परंतु वह बार-बार बदलता रहा। हिटलर को हिमलर, गोयरिंग, ग्योबल्स, डॉयनिट्स, बोरमेन आदि ने विशेष अभिनंदन संदेश भेजे, जो महज उनकी चाटुकारिता थी।

हिटलर को रूसी सेना की तेज बढ़त सता रही थी। वह समझ गया था कि अब जर्मनी को बचा पाना असंभव है; परंतु उसे न जाने क्यों यह एहसास हो रहा था कि अभी कोई अप्रत्याशित घटना घटेगी और रूसी सेना जर्मनी की सरजमीं से भाग खड़ी होगी। वह दैवी शक्तियों में पूरा विश्वास करने लगा था। वह उन लोगों में से नहीं था, जो आसन्न संकट से जल्दी हार मान लेते

हैं। अब तक सारी घटनाएँ उसके विरुद्ध ही घट रही थीं। कई जनरल उसका साथ छोड़कर भाग चुके थे। शत्रु सेना निकट ही थी। इसके बावजूद वह शत्रु सेना से जर्मनी को आजाद कराने की जुगत में लगा था। इस दौरान उसके कट्टर समर्थक उसे बर्लिन छोड़कर किसी सुरक्षित स्थान पर चले जाने को कहते रहे, पर उसने साफ इनकार कर दिया। जन्म-दिवस समारोह समाप्त होते ही उसके अधिकतम नाजी समर्थक बंकर छोड़कर जिसे जो मिला–ट्रक, विमान इत्यादि में लूटा हुआ सामान भर-भरकर शेल्जबर्ग की ओर भाग गए। इन अफसरों के भागने का एक कारण यह भी था कि युद्ध में लगातार मिल रही पराजय की वजह से हिटलर का व्यवहार उनके प्रति ठीक नहीं था।

अब बर्लिन की सुरक्षा खतरे में थी। उसकी रक्षा के लिए एस.एस. वाहिनी के जनरल स्टेनर को नियुक्त किया गया। परंतु वह जानता था कि एक तो विशाल रूसी सेना की आक्रामकता बढ़ती जा रही थी, दूसरे उसके पास कोई नियमित सैन्य टुकड़ी भी नहीं थी। इन परिस्थितियों में वह रूसी सेना का सामना करने में अक्षम था और यही बात उसने हिटलर को समझाने की भरपूर कोशिश की। परंतु हिटलर ने उसकी एक न सुनी और उसे मौत या निर्देश-पालन में से एक को चुनने को कहकर युद्ध में जाने को मजबूर कर दिया। इसका नतीजा यह निकला कि 21 अप्रैल को हिटलर जर्मन सेना के आक्रमण की सूचना पाने को पूरा दिन टेलीफोन के पास बैठा इंतजार करता रहा, पर कोई सूचना नहीं मिली। 22 अप्रैल को हुई बैठक में हिटलर ने अपने आला अधिकारियों को जमकर गालियाँ सुनाईं। नाजी हितैषियों ने एक बार फिर हिटलर को बर्लिन छोड़कर जाने की सलाह दी, पर वह सलाह भी व्यर्थ साबित हुई। हिटलर के इस अडिग निश्चय को देख उसके विश्वासपात्र गोयबल्स ने परिवार समेत आत्महत्या की घोषणा कर दी। परिस्थितियाँ अत्यंत नाजुक थीं। हिटलर का पतन निश्चित हो चुका था। परिस्थितियों को भाँपते हुए सबसे पहले उसने सारे गुप्त दस्तावेजों को जला देने का आदेश दिया। साथ ही अपने दो विश्वासपात्र कायटेल तथा जॉर्डल को बर्लिन छोड़कर जाने को कहा। परंतु उन दोनों ने इनकार कर दिया। हिटलर ने उन्हें आदेश का पालन करने के लिए बाध्य कर दिया। कहा जाता था कि कायटेल हिटलर का बहुत वफादार अनुयायी था। जार्डल के प्रतिवाद करने पर हिटलर ने कहा, "आप सभी बर्लिन की रक्षा करने में सफल नहीं रहे, इसलिए यह जवाबदेही मैं स्वयं लेता हूँ। यदि मैं भी असफल रहा तो मैं आत्महत्या कर लूँगा।"

इसके साथ ही हिटलर ने स्पष्ट किया कि उसके आत्महत्या कर लेने की स्थिति में उसके शरीर को दुश्मनों के हाथों न लगने दिया जाए, उसे जला दिया जाए। कायटेल और जॉर्डल ने सुझाव दिया कि जर्मन सेना को चेकोस्लोवाकिया व इटली के साथ-साथ पश्चिम से लाकर एकत्रित कर रूसी सेना का प्रतिरोध करें और बर्लिन को पश्चिम से बढ़ रही ब्रिटिश एवं अमेरिकी सेना के हवाले कर दिया जाए।

एक ओर जहाँ हिटलर के हाथों से सत्ता फिसलती जा रही थी, वहीं जर्मन वायु सेना प्रमुख हर्बन गोयरिंग सत्ता पर कब्जा करने की सोच रहा था। उसकी सत्ता-प्राप्ति की मंशा तो काफी पहले से चली आ रही थी, परंतु यह समय उसकी पूर्ति हेतु अनुकूल था। साथ ही उसके मन में डर भी था कि कहीं इसकी भनक किसी को लग गई तो उसे विश्वासघाती करार दे दिया जाएगा। गोयरिंग की इस सोच के पीछे एक ठोस कारण भी था। वह यह था कि हिटलर ने सन् 1941 में एक डिक्री (आदेश) जारी कर गोयरिंग को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। गोयरिंग ने डिक्री की वैधता पर जर्मन स्वराष्ट्र मंत्रालय के जानकार हेंस लेमरो से बातचीत की। लेमरो ने पुष्टि की कि डिक्री के जारी होने के बाद उसे खंडित करे, ऐसी दूसरी डिक्री अब तक जारी नहीं की गई थी, इसलिए उसकी मान्यता सतत बरकरार थी। उसके अनुसार ही गोयरिंग व उसके समर्थकों ने तय किया कि मित्र राष्ट्रों के साथ समझौता करके युद्ध समाप्त कर देना चाहिए। गोयरिंग तथा हिमलर ने जल्दबाजी करते हुए हिटलर को एक पत्र लिख भेजा, जिसमें लिखा कि "आप द्वारा जारी डिक्री के अनुसार जर्मनी का नेतृत्व मैं कर सकता हूँ और

हिटलर के खासमखास हिमलर, गोयरिंग, डॉयनिट्स और बोरमेन, जो हर अच्छे-बुरे काम में उसके साथी थे।

यदि आज रात्रि 10 बजे तक आपका जवाब न मिला तो मैं समझूँगा कि नेतृत्व की जिम्मेदारी अब मेरी है।''

इस पत्र ने बोरमेन को गोयरिंग तथा हिमलर के खिलाफ आग उगलने का अवसर प्रदान कर दिया। उसने रात को 10 बजे तक जवाब तलब करने की पंक्ति पर जोर देते हुए कहा, ''यह तो साफ तौर से अल्टीमेटम है।''

तुरंत ही हिटलर ने सन् 1941 में जारी उस डिक्री को खारिज करते हुए गोयरिंग और हिमलर को गिरफ्तार कर फाँसी पर चढ़ाने का आदेश दे दिया; परंतु उनकी लंबी सेवा और सेना के उच्च पद को देखते हुए यह भी कहा, ''यदि वे अपने सारे कार्यकारी पदों से इस्तीफा दे देते हैं तो उन्हें माफ किया जा सकता है।''

बोरमेन ने उन्हें देशद्रोही करार देते हुए गिरफ्तारी के आदेश जारी कर दिए।

26 अप्रैल, 1945 तक रूसी सेना द्वारा फेंके जा रहे बम हिटलर के भूतल आवास पर गिरने लगे थे। बंकर के अंदर भूकंप की स्थिति बनी हुई थी। इसी दौरान हिमलर ने मित्र राष्ट्रों को आत्मसमर्पण का प्रस्ताव भेज दिया। प्रतिक्रियास्वरूप हिटलर ने हिमलर को बरखास्त कर मृत्युदंड का आदेश दे दिया। बंकर में उपस्थित हिमलर के हिमायती फेगेलिन ने इस घटना के बाद भागने की कोशिश की, परंतु हिटलर ने उसे गिरफ्तार करने का आदेश दिया। यद्यपि फेगेलिन हिटलर की पत्नी इवा ब्राउन का बहनोई था, अत: कयास लगाए जा रहे थे कि वह उसकी पैरवी करेगी; पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। फेगेलिन को गोली मार दी गई। हिटलर ने जनरल ग्रीम को आदेश दिया कि वह किसी भी हालत में हिमलर को उसके समक्ष पेश करे।
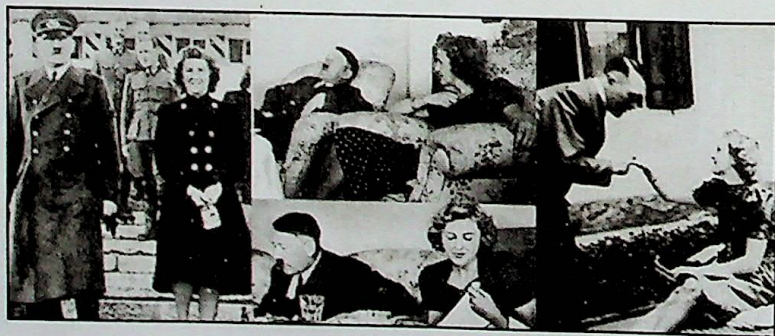
इवा ब्राउन के साथ बिताए हिटलर के कुछ यादगार क्षण।

29 अप्रैल, 1945 को हिटलर के अंतिम दिनों में खुशी का एक छोटा पल आया। इसी रोज रात 1 बजे हिटलर ने इवा ब्राउंन के साथ शादी की, जिसके गवाह हिटलर के अन्य अनुयायियों के साथ ग्योबल्स तथा बोरमेन भी बने। करीब 2 घंटे के इस सादे समारोह में कुछ खुशी के पल उन सबने जीए, पर यह खुशी अधिक देर तक कायम नहीं रह पाई। खुशी के वे पल तब गम की घोर चिंता में खोते चले गए जब हिटलर ने बहुत ही दर्द भरे शब्दों में कहा, ''अब नेशनल सोशलिज्म का अंत हो गया। सारे अपने हमारा साथ छोड़कर चले गए। जर्मनी ध्वस्त हो चुका है। अब मुझे जीवित रहने का हक नहीं है।'' तत्पश्चात् उसने सेक्रेटरी को बुलाकर अपनी वसीयत लिखने का आदेश दिया। हिटलर ने दो दलीलें भी तैयार करवाईं, जिनमें एक व्यक्तिगत और दूसरी राजनीतिक थी। उसने नाजीवाद का भरपूर गुणगान किया। अपनी असमर्थता के लिए वह दूसरों को जिम्मेदार ठहरा रहा था। राजनीतिक दलील में उसने इस युद्ध का जिम्मेदार यहूदियों और उनके संरक्षक देशों को बताया, विशेषकर रूस को। वसीयत में अपनी सारी संपत्ति उसने पार्टी को दान कर दी। पत्नी इवा, माँ एवं पारिवारिक कर्मचारियों के लिए अंशदान की जिम्मेदारी बोरमेन को सौंपी। सारे दस्तावेजों पर सुबह 4 बजे तक हस्ताक्षर कर वह आराम करने चला गया। उन दस्तावेजों में ग्योबल्स ने भी कुछ पंक्तियाँ जोड़ीं, जिनमें लिखा कि हिटलर के बिना वह भी जीवित नहीं रह सकता और वह उसके आदेश का उल्लंघन करते हुए सपरिवार अपने प्राणों की आहुति देगा। हिटलर ने एक अन्य पत्र कायटेल को लिखा, जिसमें कहा कि उसके जाने के बाद वह नाजीवाद को बचाए रखे।

29 अप्रैल, 1945 की दोपहर हिटलर को यह सूचना मिली कि उत्तरी इटली की मुक्तिवाहिनी ने बेनिटो मुसोलिनी एवं उसकी प्रेमिका क्लारा पेताची को मार डाला। इस सूचना के बाद वह आत्महत्या के लिए और भी उतावला हो गया। उसने सबसे पहले अपनी प्यारी कुतिया ब्लोंडी को विष देकर मार डाला और बंकर में दो अन्य वफादार कुत्तों को गोली मार दी। उसके बाद अपनी दो महिला सचिवों को बुलाकर उनकी वफादारी एवं ईमानदारी के लिए धन्यवाद करते हुए कहा, ''जाते-जाते आपको तोहफे में देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है।'' और उनके हाथों में सायनाइड की गोलियाँ देते हुए आगे कहा, ''जरूरत पड़े तो इन्हें इस्तेमाल कर लेना।''

हिटलर को गांधीजी का पत्र

वर्धा, मध्य प्रान्त, भारत
23 जुलाई 1939

प्रिय मित्र,
मित्रों का यह आग्रह रहा है कि मानवता की खातिर मैं आपको कुछ लिखूँ। लेकिन मैं उनके अनुरोध को अस्वीकार करता रहा हूँ, क्योंकि मैं यह महसूस करता हूँ कि मेरा आपको पत्र लिखना धृष्टता होगी। लेकिन मुझे कुछ ऐसा लगता है कि इस मामले में मुझे हिसाब-किताब करके नहीं चलना चाहिए और मुझे आपसे अपील करनी ही चाहिए, चाहे वह जिस लायक हो।
यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि आज संसार में आप ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो उस युद्ध को रोक सकते हैं, जो मानव-जाति को बर्बर अवस्था में पहुँचा सकता है। क्या आपको किसी उद्देश्य के लिए इतना बड़ा मूल्य चुकाना चाहिए, फिर चाहे वह उद्देश्य आपकी दृष्टि में कितना ही महान क्यों न हो? क्या आप एक ऐसे व्यक्ति की अपील पर ध्यान देंगे जिसने सोच-विचार कर युद्ध के तरीके का त्याग कर दिया है और इसमें उसे काफी सफलता भी मिली है? जो भी हो, मैं यह मान लेता हूँ कि यदि मैंने आपको पत्र लिख कर कोई भूल की है तो उसके लिए आप मुझे क्षमा कर देंगे?
मैं हूँ,

आपका सच्चा मित्र,
M K Gandhi
मो. क. गांधी

इसके उपरांत बंकर में उपस्थित लोगों से हाथ मिलाते हुए वह अपने कमरे में चला गया।

30 अप्रैल, 1945 को दोपहर 2 बजे हिटलर अपनी दोनों महिला सचिवों, रसोइए तथा पत्नी इवा के साथ भोजन पर था। परंतु इवा को भूख न होने के कारण उसने खाना नहीं खाया। 2 बजकर 30 मिनट पर हिटलर ने अपने ड्राइवर एरिच केंपका को 200 लीटर पेट्रोल तुरंत लाकर बंकर के बगीचे में रखने को कहा। केंपका बुरी तरह डर गया, पर उसने अपने मालिक का आदेश पूरा किया। हिटलर उठा और सीधा अपनी पत्नी के कक्ष में गया और उसे साथ लेकर बाहर आ गया। पति-पत्नी दोनों ने बोरमेन, ग्योबल्स तथा बंकर में उपस्थित अन्य लोगों से विदाई ली। जाते-जाते उसने अपने वतन को झुककर सलामी दी और अपने कमरे में चला गया और अंदर से दरवाजा बंद कर लिया।

ग्योबल्स और बोरमेन दरवाजे के बाहर उदास टकटकी लगाए खड़े थे। तभी गोली चलने की आवाज ने दोनों को हिला दिया। दोनों दौड़ते हुए कमरे के पास पहुँचे। दरवाजा नहीं खुला तो दोनों ने उसे तोड़ दिया। अंदर हिटलर का लहूलुहान शरीर सोफे पर पड़ा था। उसने अपने मुँह में गोली मार ली थी। उसके ठीक बगल में इवा मृत पड़ी थी। इवा ने सायनाइड खाकर जान दी थी।

हिटलर के पूर्व निर्देशानुसार दोनों के मृत शरीरों को तुरंत कंबल में लपेट दिया गया। उस वक्त हिटलर ने अपनी यूनीफॉर्म तथा जैकेट के साथ काला पाजामा और काले जूते पहन रखे थे। कंबल में लिपटे उनके शवों को ससम्मान बगीचे में लाया गया, जहाँ पहले से रखे 200 लीटर पेट्रोल को उनके ऊपर छिड़ककर आग लगा दी गई। दोनों के शरीर धू-धू कर जल उठे। जैसा कि ग्योबल्स ने कहा था, 2 मई, 1945 को उसने भी अपनी पत्नी व बच्चों के साथ आत्महत्या कर ली।

2 मई, 1945 को जब रूसी सेना ने बंकर में प्रवेश किया तो सब जगह आग लगी हुई थी। हिटलर के निर्देशानुसार अब जर्मनी की बागडोर एडमिरल डोनिज के हाथों में थी। रूसी सेना के जनरल ने डोनिज को बिना शर्त समर्पण के लिए संदेश भेजा। बोरमेन ने समर्पण से इनकार कर दिया, परंतु अन्य जनरल समर्पण को तैयार हो गए। युद्ध के विभिन्न मोरचों पर न केवल जर्मन सेनाएँ मौजूद थीं, उनके साथ नाजी समर्थक नागरिक भी अपनी जान की बाजी लगाए खड़े थे। इसी दौरान खबर आई कि यूगोस्लाविया में 1.5 लाख जर्मन सैनिकों ने आत्मसमर्पण कर दिया है।
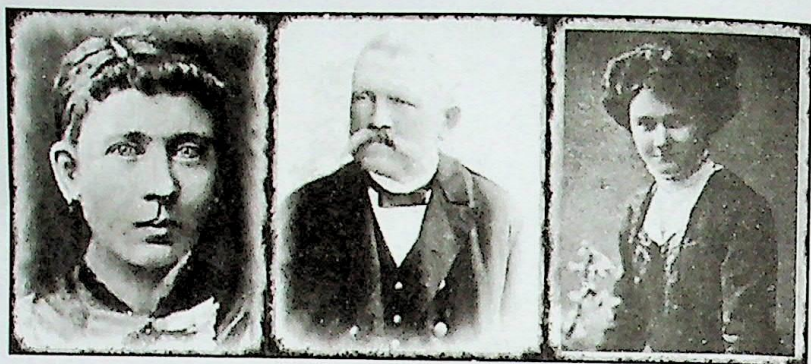
हिटलर की माँ क्लारा हिटलर, पिता एलोइस हिटलर और बहन पाउला हिटलर।

इसके बाद जर्मन शासक डोनिज ने भी 4 मई, 1945 को बिना शर्त समर्पण कर दिया। इसके साथ ही जर्मन सेनाओं ने लगातार हॉलैंड, उत्तर-पश्चिम जर्मनी तथा डेनमार्क में शाम 6 बजे तक आत्मसमर्पण कर दिया। जर्मन समर्पण की सारी कागजी प्रक्रिया पर लूनेबर्ग हीथ में जनरल मॉण्टगोमरी के मुख्यालय में हस्ताक्षर किए गए और इसके साथ ही मित्र राष्ट्रों का जर्मन नाजी साम्राज्य के साथ चल रहा छह साल पुराना युद्ध समाप्त हो गया।

जर्मनी की पराजय के अन्य कारण

द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मनी पूरी तरह पराजित हो चुका था। यह वह दौर था जब मनुष्य आर्थिक, सामाजिक, व्यावसायिक, औद्योगिक और कूटनीतिक रूप से विकास कर रहा था। दुनिया के तमाम देश आर्थिक उन्नति के लिए तरह-तरह के इंतजाम कर रहे थे। मनुष्य का विकास न सिर्फ वैज्ञानिक एवं कलात्मक तरीके से हो रहा था, बल्कि सामाजिक, मानसिक और सामूहिक जीवन के स्वरूप में भी निरंतर परिवर्तन हो रहे थे। उस वक्त फ्रांस की राज्य-क्रांति के फलस्वरूप यूरोपीय देशों में लोकतंत्र और राष्ट्रीयता के सिद्धांतों की बहाली की बयार चल रही थी। उन्नीसवीं सदी में प्राचीन और आधुनिक सामाजिक विचारधाराओं की लड़ाई शुरू हो चुकी थी। आपसी सामंजस्य एवं पारस्परिक विचारों का अनुग्रहण करते हुए नई प्रवृत्तियाँ समाज में सामने आ रही थीं। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान कई यूरोपीय एवं अन्य देशों में एकतंत्रवाद, राजतंत्र, परिवारतंत्र जैसी संस्थाएँ उजड़ रही थीं। लोकतांत्रिक सरकारों पर लोगों की आस्था बढ़ रही थी। राष्ट्रीयता के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन हो रहा

था। परंतु वर्ष 1914-18 के प्रथम विश्व युद्ध के बाद यूरोप में जो बड़े परिवर्तन हुए, वे क्रांतिकारी परिणाम लेकर आए। ऐसी स्थिति में ही नाजीवाद और फासीवाद का जन्म हुआ। परंतु नाजीवादी और फासीवादी सिद्धांत मानव समाज की उन्नति एवं प्रगति के लिए बढ़ाए जानेवाले कदम नहीं थे। हिटलर की क्रिय-पद्धति प्रतिक्रिया एवं बदले की प्रवृत्ति पर आधारित थी। इसी प्रतिक्रियास्वरूप जहाँ प्रथम विश्व युद्ध की विनाश-लीला से अभी उबरा भी नहीं गया था, वहीं द्वितीय विश्व युद्ध ने एक बार फिर संपूर्ण मानव समाज को युद्ध की विभीषिका की ओर धकेल दिया। इस प्रकार, इन प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों का विनांश आवश्यक और मानव समाज के हित में भी था।

जर्मनी की हार का दूसरा प्रमुख कारण था, हिटलर के प्रति जर्मन औपनिवेशिक नागरिकों के समर्थन का अभाव। हिटलर ने अपनी सैन्य-शक्ति एवं रणनीति की बदौलत फ्रांस, पोलैंड, ग्रीस आदि कई देशों पर अधिकार किया; परंतु उसकी शासन-व्यवस्था में उन देशों के नागरिकों के प्रति सम्मान नहीं था। वह उन्हें दोयम दर्जे का इनसान समझता था और स्वयं को ईश्वर का विशेष अनुग्रह प्राप्त नागरिक। जनता को जब यह लगने लगता है कि उसका शासक उत्पीड़क है, वहाँ वह सुरक्षित नहीं है, उसके अधिकार सुरक्षित नहीं हैं, तब वह किसी भी प्रकार से उस शासक से मुक्ति पाने की कोशिश में लग जाती है। साधारण जनता जर्मनी के शासन को राष्ट्रीय गौरव की दृष्टि से अनुचित समझती थी। युद्ध में जर्मनी के पास सैनिकों के अतिरिक्त ऐसे देशभक्तों की कमी रही, जो हर हाल में हिटलर के नेतृत्व के प्रति समर्थन रखते और उसका भरपूर सहयोग करते। हालाँकि जर्मनी की सैन्य-शक्ति आधुनिक थी, उसके सैनिक वीर थे; युद्ध के मैदान में वे किसी भी देश की सेना को परास्त कर सकते थे, परंतु देश के अंदर हर मोड़ पर स्वतंत्रता की भावना से ओतप्रोत सर्वसाधारण जनता की भावनाओं का दमन करना उनके वश में नहीं था।

हिटलर ने जिन देशों पर अधिकार किया, वहाँ ऐसी शासन-व्यवस्था स्थापित की, जिसने नाजीवाद का गुणगान किया। हिटलर का कहना था कि वह समतामूलक समाज का निर्माण चाहता है, जहाँ सब आपसी प्रेम व सहयोग से रह सकें और समाज का विकास हो सके। पर कथनी और करनी में समानता नहीं थी। जापान ने बर्मा, मलाया, सुमात्रा आदि देशों को जीता; परंतु वहाँ की जनता उसकी अधीनता को तैयार नहीं थी। पहले वे अंग्रेजों के

अधीन थे और अब उन्हें जापानियों की अधीनता स्वीकार नहीं थी। पहले से स्वतंत्र होने को उत्सुक राष्ट्रों की जनता जापान की अधीनता से और भी सुलग उठी तथा उनके अंदर स्वतंत्रता की भावनाएँ हिलोरें लेने लगीं।

इसके अतिरिक्त कई रणनीतिक कमियाँ उजागर थीं। युद्ध के मोरचों पर नाजियों ने उचित समय का उपयोग नहीं किया। जैसा कि पहले उल्लेखित है, डनकिर्क की घटना के बाद जर्मनी ब्रिटेन को आसानी से हरा सकता था। उसी प्रकार, बर्मा पर विजय के बाद जापान के लिए भारत का मार्ग खुला था, परंतु उस समय जापान ने भारत पर आक्रमण नहीं किया। सन् 1939 में रूस और जर्मनी में एक-दूसरे पर आक्रमण नहीं करने की संधि हुई थी; परंतु हिटलर साम्यवाद का घोर विरोधी था। यह भावना उसे रूस पर आक्रमण करने के लिए उकसाती रहती थी। रूस पर आक्रमण करना और ब्रिटेन में भी एक साथ कई मोरचे खोल देना जर्मनी की भारी भूल थी।

निष्कर्षत: अधिकतर राष्ट्र जर्मनी के पक्षधर नहीं थे। रूस, अमेरिका, ब्रिटेन, चीन, भारत और कई अन्य छोटे-छोटे देशों के सम्मिलित युद्धों का परिणाम नाजी शक्ति की हार के रूप में सामने आना तय था।

❑

जापान पर मित्र राष्ट्रों की जीत

"शांति बम गिराकर हासिल नहीं का जा सकती। वास्तविक शांति ज्ञान और शिक्षा से आती है।"

—कार्लोस सांताना

8 मई, 1945 को जर्मनी को परास्त करके मित्र राष्ट्रों ने विश्व युद्ध पर विराम लगा दिया था। परंतु अभी जापान की शक्ति का अंत करना आवश्यक था। इसी क्रम में मित्र राष्ट्रों के सैनिकों ने सन् 1944 में बर्मा, मलाया और जावा के क्षेत्रों से जापान को खदेड़ने में सफलता प्राप्त कर ली थी। उस वक्त मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ पूरी तरह से यूरोप में केंद्रित थीं, परंतु उनका ध्यान जापान अधिकृत प्रशांत महासागरीय क्षेत्रों पर भी था। वे इन क्षेत्रों पर पुनः अधिकार चाहती थीं। इस वक्त अमेरिकी और ब्रिटिश सेनाएँ सुदृढ़ स्थिति में थीं। उनके पास पर्याप्त संख्या में नौसैनिक और वायुसैनिक उपलब्ध थे। वर्ष 1944 से थोड़ा पीछे चलें तो मई 1943 में जनरल मैकआर्थर और एडमिरल निमिज के संयुक्त नेतृत्व में मित्र राष्ट्रों की सैन्य टुकड़ी ने जापान की बाह्य रक्षा-पंक्ति को तोड़ने का निर्णय लिया। अगस्त 1943 में एल्यूशियन द्वीप समूह से जापानी सेना को वापस जाने को मजबूर कर दिया गया। मित्र राष्ट्रों की सेना ने नवंबर में गिलबर्ट द्वीप समूह में तरावा एवं माकिन द्वीपों पर अधिकार कर लिया। उधर जनरल मैकआर्थर दक्षिण-पश्चिमी प्रशांत महासागर के उत्तरी तटवर्ती क्षेत्रों में अपनी शक्ति स्थापित करना
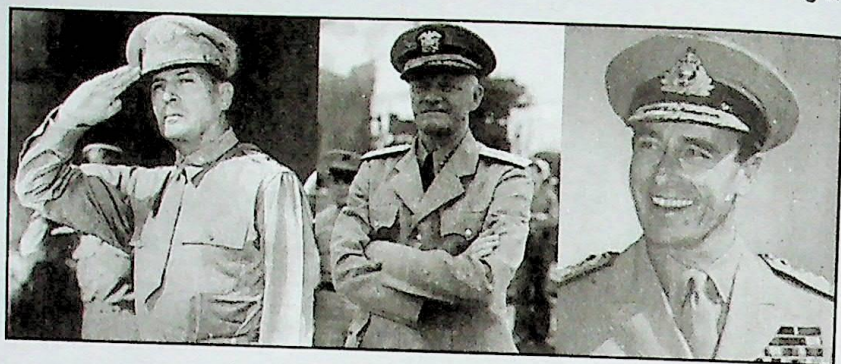
जनरल मैकआर्थर, एडमिरल निमिज और लॉर्ड माउंटबेटन।

चाहता था। इसके लिए उसने अपनी सेना को न्यू ब्रिटेन, एडमिरेलटी, नोएमफोर एवं मोरोतोई द्वीप समूहों पर आक्रमण करने का आदेश दिया और वहाँ सफलता हासिल की। इस प्रकार मित्र राष्ट्रों की सेना निरंतर जापानियों को शिकस्त दे रही थी। सितंबर 1944 तक मध्य एवं दक्षिण-पश्चिमी प्रशांत महासागर के अनेक द्वीप समूहों पर मित्र राष्ट्रों का अधिकार हो गया था। अब यहाँ से फिलिपींस द्वीप समूह पर आक्रमण करना आसान था। 20 अक्तूबर को फिलिपींस के बीचोबीच लेयटे द्वीप में अमेरिकी सेना उतारी गई तो वहाँ जापानियों को भारी मुश्किल होने लगी। उन्हें ऐसी आशंका नहीं थी कि यहाँ तक मित्र राष्ट्रों की सेना पहुँच जाएगी। वहाँ अमेरिकी सेना को रोकने के लिए जापान ने एक बड़ा जहाजी बेड़ा भेजा। आगामी 22 अक्तूबर से 25 अक्तूबर, 1944 तक उस क्षेत्र में दोनों सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ। इसमें जापान के 3 बड़े जंगी जहाज, 4 विमानवाहक जहाज, 5 बड़े क्रूजर, 9 विध्वंसक एवं अन्य लड़ाकू जहाज नष्ट हुए; जबकि अमेरिका के 3 विध्वंसक, 1 विमानवाहक एवं 2 छोटे-छोटे जहाज नष्ट हुए। इस क्षेत्र में अमेरिकी लड़ाई जापानी सेना के पैर उखाड़ने में कारगर सिद्ध हुई। लेयटे की जीत फिलिपींस द्वीप समूह पर जीत की आधारशिला बनी। इसी साल के अंत तक अमेरिकी सेना फिलिपींस द्वीप समूह के विभिन्न स्थानों पर एक साथ उतर रही थी। अगले साल 1945 के फरवरी महीने तक अमेरिकी सेना ने फिलिपींस की राजधानी मनीला पर अधिकार कर लिया। उधर ब्रिटिश सेना सिंगापुर पर कब्जा कर चुकी थी। जून के अंत तक फिलिपींस क्षेत्र में संपूर्ण रूप से जापानियों की शक्ति का अंत हो चुका था।

लॉर्ड माउंटबेटन के नेतृत्व में ब्रिटिश, अमेरिकी और चीनी सेनाओं ने

सम्मिलित रूप से योजनाबद्ध तरीके से युद्ध शुरू किया और फरवरी 1945 के अंत तक बर्मा के उत्तरी भाग पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया। इस क्षेत्र पर अधिकार होने से बर्मा-चीन सड़क मार्ग खुल गया, जिससे अमेरिका और ब्रिटेन आसानी से युद्ध-सामग्री चीन भेजने लगे। अब लॉर्ड माउंटबेटन की बर्मा के अन्य भागों पर अधिकार की योजना थी, जिसमें अपेक्षाकृत सफलता मिली।

वर्ष 1945 के शुरू होते ही अमेरिकी विमानों द्वारा जापान पर बमबारी शुरू कर दी गई थी। अब बारी जापान को जापान में ही परास्त करने की थी। इसकी शुरुआत जापान में बमबारी से की गई। अमेरिकी विमानों ने जापान के प्रमुख औद्योगिक एवं व्यावसायिक नगरों को निशाना बनाया और बम गिराए। जापान के प्रमुख द्वीपों पर आक्रमण करने के लिए अतिरिक्त हवाई अड्डों की आवश्यकता थी। इसके लिए अमेरिकी नौसेना की एक टुकड़ी ने जापान के इवोजिमा द्वीप पर आक्रमण किया। इस द्वीप पर लड़ाई में जापानी सेनाओं ने अमेरिकी सेना को कड़ी चुनौती दी। परंतु कई मोरचों पर जापानी सेना की विफलता से उसका मनोबल गिर चुका था। उसका प्रतिरोध अधिक समय तक नहीं चल पाया और अमेरिकी सेना ने इवोजिमा द्वीप पर जीत हासिल कर ली।

अप्रैल 1945 में अमेरिकी सेना ड्यूक द्वीप समूह के सबसे बड़े द्वीप ओकीनोवा में उतर गई। वहाँ भी जापानियों से कड़ा संघर्ष हुआ। ओकीनोवा द्वीप पर दोनों सेनाओं के बीच तीन महीने तक लगातार लड़ाई चली, परंतु यहाँ भी जापानियों को मुँह की खानी पड़ी। अब जापान के मुख्य द्वीपों पर बमबारी करना आसान हो गया। इस बमबारी में जापान के कल-कारखानों, रेलवे लाइनों और अन्य स्थापित औद्योगिक इकाइयों को लगभग नष्ट कर दिया गया। इस बमबारी में जुलाई के दो सप्ताहों के दौरान ही जापान के 400 से अधिक जहाज डुबो दिए गए, साथ ही 500 के करीब हवाई जहाज नष्ट कर दिए गए। जुलाई के अंतिम दो दिनों में जापानी नौसेना को मुख्य रूप से निशाना बनाकर हमले किए गए और इन हमलों में 500 से अधिक जहाज डुबो दिए गए। समुद्र, थल और वायु तीनों ही माध्यम से जापान पर हमले तेज हो गए। अमेरिका और ब्रिटेन तो पूरी शक्ति के साथ जापान के विरुद्ध युद्धरत थे ही, उधर रूस भी अप्रैल में जापान से की गई तटस्थता संधि रद्द करने की घोषणा कर चुका था। चीन ने भी अपने जापान अधिकृत क्षेत्र को आजाद कराने के लिए चियांग काई शेक के नेतृत्व में अपनी सेना लेकर आगे
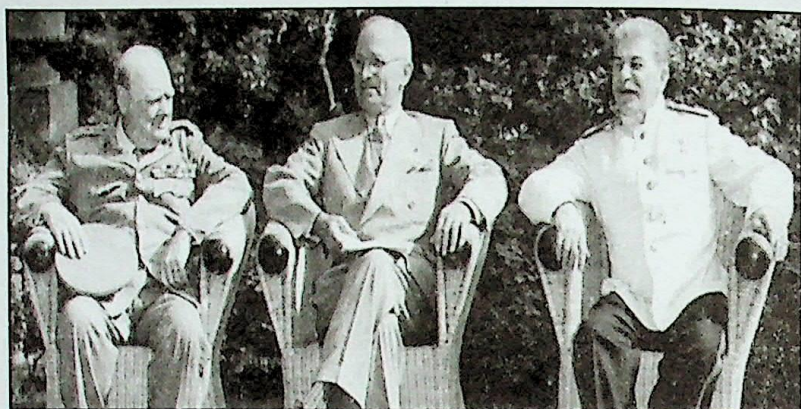
पोट्सडम (जर्मनी) सम्मेलन में ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल, अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रूमैन और रूसी प्रधानमंत्री स्टालिन।

बढ़ना शुरू कर दिया। अमेरिका अनवरत विभिन्न तरह के आधुनिक हथियार विकसित करने में लगा हुआ था। जुलाई 1945 तक उसके पास एटम बम तैयार था, जो काफी विनाशकारी और भयंकर था।

जुलाई में अमेरिका, ब्रिटेन, चीन और रूस के राष्ट्राध्यक्ष जापान के साथ चल रहे युद्ध को पूर्ण विराम देने के उद्देश्य से पोट्सडम में एकत्र हुए। उस समय तक अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट की मृत्यु हो चुकी थी, जिनके स्थान पर ट्रूमैन को राष्ट्रपति के रूप में शपथ दिलाई गई थी। इस तरह अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रूमैन, ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल, रूसी प्रधानमंत्री स्टालिन और चीनी सेनाध्यक्ष चियांग काई शेक द्वारा 26 जुलाई, 1945 को संयुक्त रूप से एक घोषणा की गई। इस घोषणा को 'पोट्सडम घोषणा' का नाम दिया गया, जिसमें जापान को बिना शर्त आत्मसमर्पण करने के लिए कहा गया। घोषणा-पत्र के अनुसार–

- जापान की सत्ता चार प्रमुख द्वीपों और कुछ टापुओं तक सीमित रहेगी।
- जापान की मुख्य भूमि पर मित्र राष्ट्रों की सेनाओं का अधिकार रहेगा।
- जापानी युद्ध अपराधियों को दंडित किया जाएगा।
- जापान में लेखन, विचार और धार्मिक स्वतंत्रता बरकरार की जाएगी।

परंतु जापानी नेताओं ने इस घोषणा पर कोई ध्यान नहीं दिया। उन्हें लगता था कि वे अभी भी मित्र राष्ट्रों को परास्त करने की क्षमता रखते हैं। इसी विचार के साथ जापानी सेना ने युद्ध जारी रखा। परिणामस्वरूप 6

अगस्त, 1945 को अमेरिकी वायुसेना ने जापान के हिरोशिमा नगर पर पहला एटम बम गिराया। इस बम का प्रभाव इतना प्रलयंकारी था कि हिरोशिमा नगर का आधे से अधिक भाग पूर्णत: नष्ट हो गया। हमले में हिरोशिमा के आस-पास के इलाके भी प्रभावित हुए। लाखों लोग बीमार हुए। तरह-तरह की अज्ञात बीमारियों ने चारों ओर अपना जाल बिछाना आरंभ कर दिया।

8 अगस्त, 1945 को रूस ने भी जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। रूसी सेना मंचूरिया और दक्षिणी सारवालिन में पहुँच चुकी थी। इतनी विषम परिस्थिति में भी जापान युद्ध को तत्पर था। वह आत्मसमर्पण करने को तैयार नहीं था। अमेरिकी वायुसेना द्वारा एटम बम के दुष्प्रभाव एवं उसकी भयंकरता का वर्णन करते हुए लाखों परचे गिराए गए; परंतु जापानी जनता और सरकार पर उनका कोई प्रभावी असर नहीं दिखा। अमेरिका ने पहले बम गिराने के सिर्फ 3 दिन बाद नागासाकी पर 9 अगस्त को दूसरा एटम बम गिरा दिया। नागासाकी भी बुरी तरह से तहस-नहस हो गया।

अब जापानी सरकार की आँखें खुलीं। उसे लगने लगा कि युद्ध जारी रखने से जापान का नामोनिशान ही मिट जाएगा। उचित यही है कि आत्मसमर्पण कर दिया जाए। इस प्रकार 14 अगस्त, 1945 को युद्ध-विराम हो गया। जापान पराजित हो चुका था। विधिवत् रूप से 2 सितंबर को अमेरिकी जंगी जहाज 'मिसौरी' पर जापानी सरकार के प्रतिनिधियों ने जनरल मैकआर्थर के समक्ष समर्पण-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। अंतत: 6 वर्ष बाद यह भयंकर विश्व युद्ध पूरी तरह समाप्त हो गया।

हिरोशिमा और नागासाकी पर एटमी हमले

पर्ल हार्बर पर हुए अप्रत्याशित जापानी हमले के बाद अमेरिका बदला चुकाने को उतावला था। जापानी सरकार पर बमों का कुछ खास असर न पड़ते देख अमेरिकी वायुसेना के जनरल कॉर्टिश लीमे ने आग लगानेवाले बम गिराने आरंभ कर दिए। 19 मार्च, 1945 को कॉर्टिश का आदेश पाते ही अमेरिकी वायु सेना के 280 विमानों ने एक साथ टोकियो पर बमों की बौछार कर दी। इस हमले में टोकियो के 16 वर्ग मील की सीमा के अंदर कोई भी छोटी या बड़ी इमारत सुरक्षित नहीं बच पाई। इस भीषण हमले में शहर की 2 लाख 17 हजार इमारतें नष्ट हो गईं और आग से मरनेवालों की संख्या 1 लाख 85 हजार थी। अमेरिकी विमानों ने 10 दिनों में जापान के विभिन्न

शहरों पर 10 हजार टन बम गिराए। आलम यह था कि जापान के शहरी निवासी गाँवों की ओर पलायन करने लगे थे। गाँवों में खाद्यान्न की कमी की चिंता से ग्रामीण खाद्य सामग्री छुपाने लगे थे। शहरों में खाद्य सामग्री पूरी तरह बरबाद हो चुकी थी, जिससे पूरा जापान त्रस्त था। परंतु इन विकट परिस्थितियों के बावजूद जापान समर्पण के लिए तैयार नहीं था।

17 जुलाई से लेकर 2 अगस्त तक पोट्सडम में मित्र राष्ट्रों ने कॉन्फ्रेंस बुलाई। इसमें मित्र राष्ट्रों ने जापान से बिना शर्त समर्पण के लिए कहा और जापान को स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि यदि वह बिना शर्त समर्पण नहीं करता तो उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। परंतु जापान बिना शर्त समर्पण के लिए तैयार नहीं हुआ। इससे ठीक उलट, जापानी सेना मित्र राष्ट्रों के बंधकों के साथ अत्यंत बुरा बरताव कर रही थी। वह मित्र राष्ट्रों को इस उत्पीड़न के जरिए अपनी शर्तों पर संधि के लिए मजबूर करना चाह रही थी।

उधर, अमेरिकी वैज्ञानिक एटम बम बनाने की कगार पर थे। यह होड़ प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत ही शुरू हो चुकी थी, जिसमें जर्मनी सबसे आगे था। जर्मन वैज्ञानिकों को समय पर सफलता न मिल पाने की बड़ी वजह रही हिटलर की यहूदियों के प्रति घृणा। उसने सारे यहूदी वैज्ञानिकों को जेल की काल कोठरियों में कैद कर दिया या मार डाला। सर्वप्रथम बर्लिन स्थित कैसर विलहेम संस्थान के वैज्ञानिकों ने सन् 1938 में परमाणु विखंडन की प्रक्रिया में सफलता पाई, जिसके बाद अमेरिका को लगने लगा कि यदि जर्मनी ने पहले परमाणु बम बना लिया तो उसका प्रयोग वह युद्ध में अवश्य करेगा। हालाँकि अमेरिकी वैज्ञानिक भी इस बम को बनाने में लगे हुए थे; पर सरकार इस योजना पर खास ध्यान नहीं दे रही थी। परंतु सुविख्यात वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन ने राष्ट्रपति रूजवेल्ट को पत्र द्वारा सारी जानकारी दी, जिसके फलस्वरूप इस बम के शोध कार्य को दुनिया की नजरों से छुपाकर तेजी से जारी किया गया। यहाँ तक कि जिस संस्थान में परमाणु बम तैयार किया जा रहा था, वहाँ के अन्य अधिकारियों को भी इसकी जानकारी नहीं थी। सन् 1945 में इसके सफल परीक्षण के बाद अमेरिकी युद्ध सचिव स्टीमेंशन की देखरेख में वैज्ञानिकों की एक सुझाव समिति का गठन किया गया, जिन्होंने राष्ट्रपति ट्रूमेन को इसकी विध्वंस क्षमताओं की जानकारी दी। ट्रूमेन के नेतृत्व में पर्ल हार्बर का प्रतिशोध एवं समूचे विश्व में अमेरिकी दहशत फैलाने के लिए इस बम को जापान पर दागने का निश्चय किया गया।

एटम बम 'लिट्ल ब्वॉय'।

'लिट्ल ब्वॉय' नामक परमाणु बम का व्यास 28 इंच, लंबाई 120 इंच, वजन 9000 पाउंड था। इसकी विस्फोटक क्षमता 20 हजार टी.एन.टी. थी, जिसे 6 अगस्त, 1945 को हिरोशिमा पर दागा गया। 6 अगस्त की सुबह जापान के लिए अत्यंत पीड़ादायक साबित हुई। सुबह 7 बजकर 15 मिनट पर टिनियम द्वीप समूह के एक छोटे द्वीप से प्रथम परमाणु बम 'लिट्ल ब्वॉय'
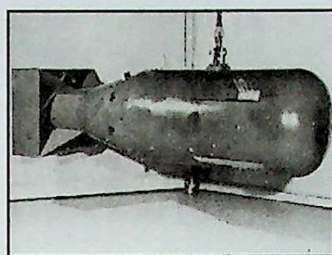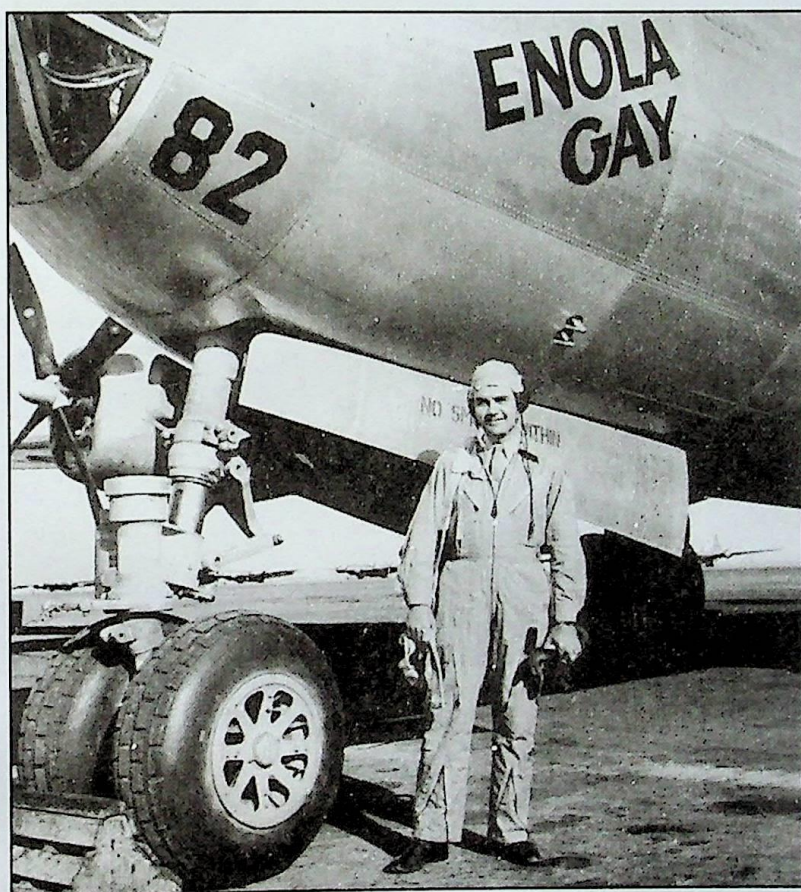
'इनॉला-गे' बी-29 बमवर्षक विमान, जिसने हिरोशिमा पर एटम बम गिराया था और उसका पायलट कर्नल पॉल डब्ल्यू. टिबेट्स।

हिरोशिमा पर एटमी हमला।

को लेकर 'इनॉला-गे' बी-29 बमवर्षक विमान ने उड़ान भरी। हिरोशिमा की बरबादी का सामान लिये ठीक 8 बजकर 6 मिनट पर वह उसके ऊपर मँडरा रहा था। शहर से 31 हजार फीट की ऊँचाई पर मौत बनकर घूमते विमान ने 8 बजकर 15 मिनट 17 सेकंड पर हिरोशिमा की धरती का सीना छलनी कर दिया। पूरा शहर धुएँ के एक विशाल
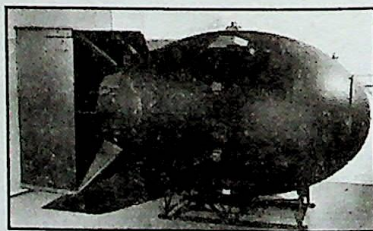
एटम बम 'फैट ब्वॉय'।
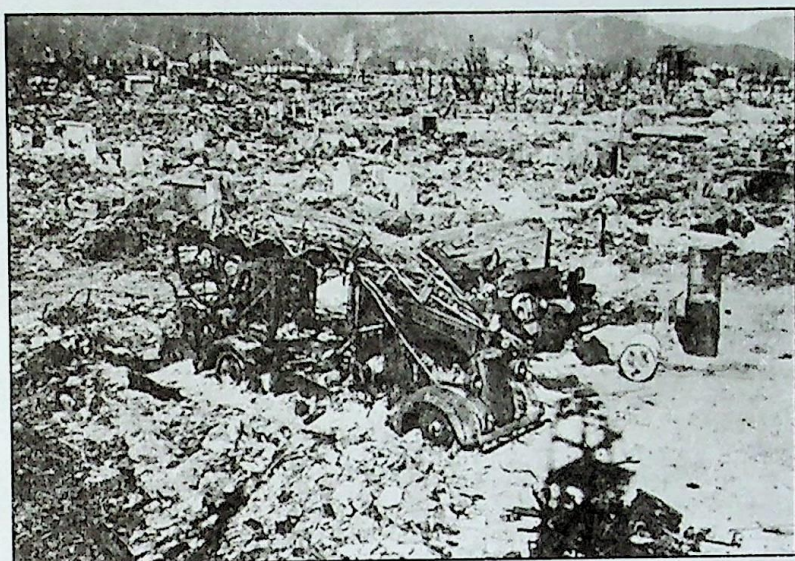
एटमी हमले के बाद नागासाकी।

गुबार से ढँकता चला गया। वह बम इतना भयंकर था कि उसने 4.07 मील व्यास के भीतर की हर चीज को जलाकर खाक कर दिया। 9.05 वर्गमील के दायरे में 90 हजार में से 60 हजार मकान ध्वस्त हो गए, लगभग 92 हजार नागरिक काल के गाल में समा गए और निकटवर्ती इलाकों के लगभग 40 हजार नागरिक रेडियो विकिरण से झुलस गए तथा घायल हुए। इस भीषण अग्नि ने लगभग 20 हजार बच्चों की आहुति ले ली। परमाणु बम के इस हमले के बाद समूचा विश्व सकते में आ गया। जापान को गहरा झटका लगा; परंतु फिर भी वह अपने फैसले पर अडिग रहा। उधर हिरोशिमा पर परमाणु हमले के बाद रूस ने भी जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। रूस की यह मंशा थी कि जापान इतने पर ही डरकर बिना शर्त समर्पण कर दे, पर ऐसा नहीं हुआ। तब अमेरिका और ब्रिटेन ने निश्चय किया कि एक और परमाणु बम गिराकर जापान पर दबाव बनाया जाए।

9 अगस्त, 1945 को अमेरिकी बी-29 बमवर्षक विमान अपने साथ 'फैट ब्वॉय' नामक एक परमाणु बम को लेकर नागासाकी की ओर चल पड़ा। उसी दिन नागासाकी पर उसने भीषण कहर बरपाया। 'फैट ब्वॉय' की विध्वंसक क्षमता 'लिट्ल ब्वॉय' से अधिक थी। इस बार 70 हजार नागरिकों की जानें गईं और लगभग 43 हजार नागरिक घायल हुए। इस विस्फोट में वहाँ की पूरी

शिप इंडस्ट्री तबाह हो गई। इन दो महाप्रलयंकारी विस्फोटों के बाद कैंसर तथा अन्य लाइलाज जानलेवा बीमारियों से बहुत से लोग मारे गए या विकलांग हो गए। इसका कोई समुचित आँकड़ा जुटाना मुश्किल था। इतनी भयानक विनाश-लीला के बावजूद अमेरिका तथा ब्रिटेन को कोई अफसोस नहीं हुआ। अपितु अमेरिकी राष्ट्रपति ने पुनः धमकी देते हुए कहा, ''यदि अब भी जापान बिना शर्त समर्पण को तैयार न हुआ तो उस पर बम-वर्षा जारी रखी जाएगी, जब तक कि वह बिना शर्त समर्पण न कर दे।''

इन दो प्रलयंकारी हमलों के बाद जापान पूरी तरह डर चुका था। अंततः वह बिना शर्त समर्पण के लिए तैयार हो गया और 14 अगस्त, 1945 को समर्पण की घोषणा कर दी।

❑

युद्ध की बर्बरता और परिणाम

"नि:शस्त्र अहिंसा की शक्ति किसी भी परिस्थिति में सशस्त्र शक्ति से सर्वश्रेष्ठ होगी।"

—महात्मा गांधी

द्वितीय विश्व युद्ध में धुरी राष्ट्रों और मित्र राष्ट्रों के लाखों सैनिक मारे गए, लाखों घायल हुए और उससे भी अधिक संख्या में लोग प्रभावित हुए। दोनों ही पक्षों की युद्ध-नीतियाँ अत्यंत बर्बरतापूर्ण एवं अमानवीय थीं। पहले किसी युद्ध में सैनिक आपस में लड़ा करते थे। इससे सर्वसाधारण जनता निश्चित रूप से प्रभावित होती थी; परंतु यह प्रभाव धन और जनहानि के रूप में कम ही सामने आता था। इस विश्व युद्ध में विज्ञान की तरक्की से उपलब्ध अधुनातन हथियारों ने सर्वसाधारण और निर्दोष जनता को भारी क्षति पहुँचाई। हवाई जहाजों द्वारा शहर, नगर, गाँव और कस्बों पर सैकड़ों बम एक साथ गिराए गए। इसमें यह संभव नहीं था कि आम जनता को काल के गाल में समाने से बचाया जा सके। हजारों जहाजों को डुबो दिया गया। कई व्यापारिक और नागरिक जहाज डुबोए गए। बारूदी सुरंगें बिछाकर ब्लास्ट किए गए। इन सभी दुर्घटनाओं में निर्दोष जनता अकारण मारी गई। महिलाओं और बच्चों के क्रंदन का संपूर्ण मानव समाज गवाह बना।

विज्ञान की उन्नति प्रगति की जगह समाज के विनाश का कारण बन गई। ऐसे-ऐसे बम बनाए गए, जिसके प्रयोग से शहर-के-शहर नेस्तनाबूद हो
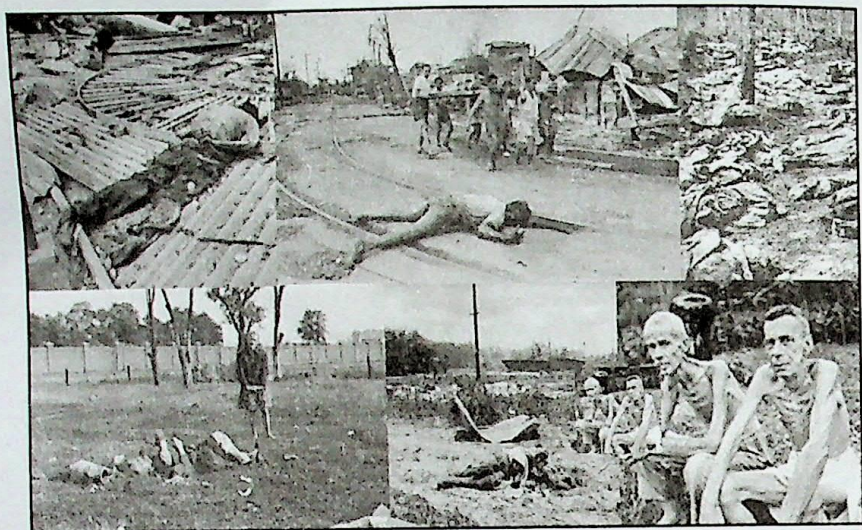
दोनों युद्धों में लगभग 10 करोड़ लोग मारे गए और इतने ही घायल हुए।

गए। हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु प्रहार किए गए। इन नगरों की दुर्दशा का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि आज भी वहाँ पैदा होनेवाले अधिकांश बच्चे अपंग, बधिर और अन्य कई तरह की बीमारियों से ग्रसित रहते हैं। हिरोशिमा और नागासाकी के नागरिकों का युद्ध से कोई संबंध नहीं था। उनका दोष सिर्फ इतना था कि उनका जन्म जापान में हुआ था और जापान मित्र राष्ट्रों से युद्ध कर रहा था। युद्ध के लिए बनाए गए सभी नैतिक एवं अंतरराष्ट्रीय कानून ताक पर रख दिए गए। इस युद्ध में सबका एक ही लक्ष्य था–किसी भी कीमत पर जीत हासिल करना। न कोई नियम, न कानून और न ही मानवीय मूल्यों का तकाजा था। निर्दोष बच्चों, महिलाओं और मासूमों के खून से सनी सत्ता ही उनका एकमात्र लक्ष्य था। अंतरराष्ट्रीय कानून के अनुसार जहरीली गैसों, रासायनिक विषैले पदार्थों एवं अन्य अति विध्वंसकों का उपयोग युद्ध में अनुचित था। परंतु मित्र राष्ट्रों ने सारे नियमों की अनदेखी करते हुए जापान के दो बसे-बसाए नगरों को उजाड़ने के लिए परमाणु बम का प्रहार कर दिया।

अमेरिका परमाणु बम का प्रयोग न भी करता तो भी जापान की पराजय निश्चित थी। आखिर इस तरह निर्दोष लोगों की जान तो बचाई जा सकती थी। लेकिन शायद अमेरिका या तो पर्ल हार्बर के प्रतिशोध की आग ठंडी करना चाहता था या परमाणु बम मारक क्षमता को परखने की कोशिश कर रहा था।

हिटलर ने भी अपने शत्रुओं के साथ बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया। जिन देशों पर हिटलरी शासन स्थापित हुआ, वहाँ उसने नाजी सिद्धांत प्रतिपादित किए। ऐसे में स्थानीय जनता ने अगर विरोध के स्वर मुखरित किए तो उसका दमन कर दिया गया। कैदियों के साथ भी अमानवीय बरताव किया गया। उन्हें पीटा जाता था, भोजन नहीं दिया जाता था। जिस शिविर में 10 कैदियों के रहने की क्षमता थी वहाँ 40 कैदियों को जबरन ठूँस-ठूँसकर रखा जाता था। बीमारी की स्थिति में उन पर ध्यान नहीं दिया जाता था। भोजन के अभाव में कई कैदी तो कंकाल में बदल गए थे। पता नहीं हिटलर के मन में मानवमात्र के प्रति विद्वेष की ऐसी भावना कहाँ से उपजी थी? महान् तो वह कहलाता है, जिसकी लड़ाई सिद्धांतों पर आधारित होती है। लड़ाइयाँ तर्कपूर्ण और सैद्धांतिक तरीके से भी लड़ी जाती हैं; परंतु एक कैदी, जो हारकर पहले ही मरणासन्न हो चुका होता है, उसके प्रति मानवीय संवेदना की कमी अशोभनीय और घोर निंदनीय थी।

जहाँ उन कैदियों को दवाइयों की जरूरत थी, वहीं जर्मन वैज्ञानिकों और चिकित्सकों ने उन पर परीक्षण करने से भी परहेज नहीं किया। उनकी जान की तो मानो रत्ती भर कीमत नहीं थी। बीमारी की स्थिति में उन्हें पीटा जाता था और अधमरी हालत में तड़पते हुए छोड़ दिया जाता था। मृत कैदियों को या तो सामूहिक रूप से जला दिया जाता था या गड्ढे में डालकर रेत से ढँक दिया जाता था।

युद्ध के परिणाम

इस विश्व युद्ध के बाद यूरोपीय इतिहास में कई नई प्रवृत्तियों का जन्म हुआ। फ्रांस में राज्य-क्रांति के बाद जिस प्रकार लोकतंत्र और राष्ट्रीयता की प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव हुआ था, वे प्रथम विश्व युद्ध के बाद जबरदस्त तरीके से सफल हुई थीं। परंतु द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ये विचारधाराएँ पुरानी हो गईं और इनकी गति धीमी हो गई। मानव समुदाय अब इससे थोड़ा अधिक सोचने लगा। ग्लोब के हर हिस्से में व्यावसायिक और औद्योगिक क्रांति की बयार चल रही थी। वैज्ञानिक उन्नति कर रहे थे। समाज के हर वर्ग के लोगों में नई जागृति, नई चेतना और स्फूर्ति का संचार हो रहा था। सभी देश आर्थिक दृष्टि से उन्नत होने के लिए प्रयासरत थे। समाज की आधुनिक संरचना कैसी हो, यह शोचनीय प्रश्न था। इसी असमंजस में यूरोपीय देशों में

दो विचारधाराएँ प्रखर रूप से सामने आईं–

- साम्यवाद और
- लोकतंत्रवाद।

साम्यवाद के अंतर्गत ऐसी व्यवस्था बनाने की मंशा थी कि आर्थिक उत्पत्ति के साधनों पर व्यक्तियों का स्वामित्व न रहे और वे समाज की संपत्ति हो जाएँ।

हालाँकि साम्यवाद की शुरुआत अठारहवीं सदी में ही हो चुकी थी। सन् 1794 में नोयल बाबेफ नामक एक लेखक ने लिखा था–"जब मैं देखता हूँ कि गरीबों के तन पर न तो कपड़े हैं और न पैरों में जूते, जबकि वे ही कपड़े और जूते बनाते हैं। परंतु उन्हें स्वयं वह सब इस्तेमाल के लिए नहीं मिलता। इसके उलट, जब मैं उन लोगों का खयाल करता हूँ, जो स्वयं कुछ काम नहीं करते, पर उनके पास किसी चीज की कमी नहीं होती तो मेरा यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि 'राज्य' अब भी जनसाधारण के विरुद्ध कुछ लोगों का षड्यंत्र है।"

नोयल बाबेफ के मतानुसार, संपूर्ण संपत्ति राष्ट्र की होनी चाहिए और समाज से गरीबी व असमानता दूर होनी चाहिए। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाए तो उसकी संपत्ति का स्वामित्व राष्ट्र के हाथों सौंप दिया जाना चाहिए।

इसके साथ ही महान् विचारक कार्ल मार्क्स ने कई विचारों का प्रतिपादन किया था। उनके अनुसार, "हर क्रिया के बाद प्रतिक्रिया होती है और फिर उसके कारण संतुलन स्थापित होता है। इस समय पूँजीवाद का युग है और यह आवश्यक है कि इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया हो। इस प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप जब संतुलन होगा तो साम्यवादी व समाजवादी समाज की स्थापना होगी। अतः पूँजीवाद का विनाश और समाजवाद की स्थापना एक अवश्यंभावी प्रक्रिया है।"

उन्होंने समाज की आर्थिक दशाओं का भरपूर उल्लेख किया है। उन्होंने उस सिद्धांत का प्रतिपादन भी किया, जिसे इतिहास की आर्थिक व्याख्या का सिद्धांत कहते हैं। उसके अनुसार, "मानव समाज की विविध संस्थाएँ परिस्थितियों का परिणाम हैं। जिन्हें हम सत्य व सनातन संस्थाएँ समझते हैं, वे सब मनुष्य की आर्थिक दशा के विकास के साथ-साथ विकसित हुई हैं। आर्थिक दशा में परिवर्तन आने के साथ उनमें भी परिवर्तन अवश्यंभावी है।"

इस प्रकार, साम्यवादी विचारधारा के माननेवाले ऐसे समाज का निर्माण चाहते थे, जहाँ यह मौका न हो कि कोई व्यक्ति बिना श्रम किए आमदनी प्राप्त कर सके। समाज में ऊँच-नीच का भेद मिट जाए। किसी भी प्रकार की श्रेणी या वर्ग समाप्त हो जाए और राज्य के सभी व्यवसाय राज्य के अधिकार-क्षेत्र में हों।

दूसरी तरफ लोकतंत्रवादी विचारधारावाले लोग भी यही चाहते थे कि समाज में छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब जैसा भेद मिट जाए। पर पूँजी के मामले में उनका विचार यह था कि संपत्ति की उत्पत्ति, विनिमय और वितरण पर राज्य कानून बनाकर नियंत्रण कर सकता है, ताकि पूँजीपति, मजदूर, जमींदार और किसान सभी के बीच समन्वय बना रहे और सबको संपत्ति का यथोचित भाग मिल सके। समाज में किसी भी कार्य के लिए पूँजी, श्रम एवं जमीन तीनों की आवश्यकता होती है। ये वर्ग आपसी सामंजस्य के साथ एक-दूसरे का सहयोग करें और सम्मिलित रूप से विकास करें। लोकतंत्रवादी विचारधारा के अनुसार, साधारण जनता की उन्नति एवं उसका कल्याण तभी होगा, जब उसमें संघर्ष करने की क्षमता होगी। विभिन्न वर्ग एक-दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा रखेंगे और अधिक-से-अधिक काम करेंगे। इससे उनका व्यक्तिगत विकास तो होगा ही, साथ ही राज्य की विभिन्न इकाइयों की उत्पादन-क्षमता का भी विकास होगा।

फ्रांस के कम्युनिस्ट अपने विचारों के कारण रूस के कम्युनिस्टों के अधिक करीब थे, जबकि उसी फ्रांस में साम्यवाद पर विश्वास न रखनेवालों की उससे दूरी थी। युद्ध के दौरान ब्रिटेन और फ्रांस जैसे देशों में बहुत से लोग अपनी राष्ट्रीय सरकारों के खिलाफ शत्रु-राज्यों की सहायता कर रहे थे। कारण वही विचारधारा थी, जो उन्हें शत्रुओं के अधिक समीप कर रही थी।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद जिस प्रकार राष्ट्रीयता, देश-प्रेम और मातृभूमि के लिए सर्वस्व न्योछावर करने की भावना बलवती थी, अब विचारधारा के प्रति सबकुछ न्योछावर करने की भावना ने वह जगह ले ली थी। आज भी यूरोप में कई ऐसे राष्ट्र मौजूद हैं, जो विचारधारा के पक्ष में अपना सर्वस्व कुरबान करने को तैयार हैं। वे अपनी सरकार, अपना देश, अपना जीवन सबकुछ कुरबान करने के लिए सतत तैयार रहते हैं। उन्हें देशद्रोही कहलाने या अपने ही देश के विरुद्ध कदम उठाने में कोई झिझक महसूस नहीं होती।

राष्ट्रीय भावना का ह्रास

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, प्रथम विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप जिस तरह राष्ट्रीय भावना मुखरित हुई थी, ऐसा द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उसकी बाढ़ रुक गई। इसका प्रमुख कारण था वैज्ञानिक उन्नति द्वारा लोगों का आर्थिक विकास की ओर उन्मुख होना। उस समय मनुष्यों में भाषा, जाति, धर्म व संस्कृति आदि के कारण जो भेद थे, उन्हें वह मिटा चुका था। यह कहना अधिक सार्थक होगा कि मानवीय दूरियाँ कम होती जा रही थीं। लोग आपसी सामंजस्य स्थापित कर विकास की राह पर दौड़ना चाहते थे। कभी छोटे-छोटे कारणों से विभिन्न तबके के लागे मरने-मारने को तैयार रहते थे, परंतु धीरे-धीरे यह भेद कम होता जा रहा था। अब कबीले और बिरादरी के लोग एक सूत्र में बँधकर संगठित हो रहे थे। दो तरह की विचारधाराओं के आधार पर कम्युनिस्ट विचारधारा को मानने वाले पूर्वी यूरोप के राज्य रूस की छत्रच्छाया में संगठित हो गए। इसी प्रकार, लोकतांत्रिक विचारधारा के समर्थक पश्चिमी यूरोप के राज्य कम्युनिस्ट विचारधारा से अपनी रक्षा के लिए परस्पर संगठित हो गए।

अब इस बार विचारधाराओं ने राष्ट्रीयता की भावना को पीछे छोड़ दिया। वर्तमान समय में भी यही हो रहा है। आज की युवा मानसिकता कहीं-न-कहीं राष्ट्रीय भावना से अधिक समीपता नहीं रखती। वक्त में बदलाव हुआ और उसी के अनुसार मानसिकता परिवर्तित हुई। लोगों के विचार बदल रहे हैं। विभिन्न विचारधाराओं के कारण राष्ट्रीय सरकारों की स्थिति कहीं भी सुरक्षित नहीं है। हर देश में कई ऐसी पार्टियाँ पल रही हैं, जो राष्ट्रीय हित की अपेक्षा विचारधारा को अधिक महत्त्व दे रही हैं। इससे राष्ट्र का बहुत नुकसान हो रहा है। ब्रिटेन जैसे लोकतांत्रिक राष्ट्र को कम्युनिस्ट पार्टी के विरुद्ध अनेक कार्रवाइयाँ करने की आवश्यकता पड़ी। जिन देशों में कम्युनिस्ट सरकारें हैं, वहाँ अन्य विचारधाराओं और राजनीतिक दलों का पनपना बहुत कठिन है। अठारहवीं सदी के अंत में यूरोप में लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था की स्थापना के लिए संघर्ष शुरू हुआ था। इस लोकतांत्रिक व्यवस्था में सबको लिखने, बोलने और अपने विचार अभिव्यक्त करने की पूर्ण आजादी को आधार बनाया गया था। परंतु तरह-तरह की विचारधाराओं के संघर्ष में कहीं-न-कहीं ऐसा प्रतीत होता है कि लोगों की वैचारिक स्वतंत्रता को आघात पहुँचा है। जिस

देश में जिस विचारधारा के लोग सरकार बनाने में सफलता प्राप्त कर लेते हैं, अन्य विचारधाराओं वाले लोगों को पनपने नहीं देते। ऐसे में वैचारिक स्वतंत्रता को ठेस पहुँचती है। कई देशों की सरकारों ने तो वैचारिक स्वतंत्रता पर आघात पहुँचाने के लिए अपने मनोनुकूल कानून तक बना लिये हैं।

ऐसी स्थिति का विश्लेषण करने पर तो यही परिणाम निकलता है कि अब विचार-स्वातंत्र्य और सच्चे लोकतांत्रिक शासन का ह्रास होता जा रहा है। एक सशक्त लोकतांत्रिक राष्ट्र के लिए यह आवश्यक है कि उसके विपक्ष में बैठने वाली पार्टी भी सशक्त हो, ताकि ऐसा कोई कानून पास करने से पहले उसका विरोध हो सके, जो राष्ट्र-हित में न हो या लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत आम जनता की स्वतंत्रता को आघात पहुँचाता हो।

यूरोप में सामंतवादी विचारधाराओं का उन्नयन

यूरोप की मध्यकालीन स्थिति ऐसी थी, जहाँ चर्च का प्रभुत्व था। राज्य स्वेच्छा से चलाए जा रहे थे और सामाजिक व्यवस्था सामंतवादी थी। वर्तमान समय में ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ये विचारधाराएँ एक बार फिर दूसरे रूप में स्थापित हो रही हैं। पहले चर्च द्वारा लोगों के धार्मिक और सामाजिक जीवन पर नियंत्रण किया जाता था। राज्य सरकारें भी चर्च से जारी फरमान को मानने से इनकार नहीं कर सकती थीं। अधिकतर शक्तिशाली राज्यों की भी यह सामर्थ्य नहीं थी कि वे चर्च के आदेश का उल्लंघन कर सकें। आज यही स्थिति राजनीतिक दलों की हो गई है। राजनीतिक दल अपने नेतृत्व में ऐसी बहुत सी गलतियाँ करते हैं, जो जनता के हित में नहीं होतीं। वे अपने मनोनुकूल फैसले ले लेते हैं। आज अंतरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थिति ऐसी ही है जैसी मध्यकाल में रोमन कैथोलिक चर्च की थी। रोमन कैथोलिक चर्च का मुख्य केंद्र रोम था। फ्रांस, जर्मनी और स्पेन के शक्तिशाली सम्राट् भी पोप की आज्ञाओं का उल्लंघन नहीं कर सकते थे। अंतरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट पार्टी की शाखाएँ आज भी कई ऐसे देशों में मौजूद हैं, जो सोवियत रूस के हिस्से नहीं हैं और वहाँ भी वे पार्टियाँ केंद्रीय संगठन की आज्ञा से सरकार को साम्यवाद के प्रभाव में रखना चाहती हैं। मध्यकालीन सामंती व्यवस्था के अंतर्गत छोटे-छोटे राजा अपनी रक्षा के लिए किसी शक्तिशाली राष्ट्र से संबंध बनाकर उसकी अधीनता स्वीकार कर लेते थे। वे उस राष्ट्र को अपना संरक्षक

मानकर उसके साथ सहयोग करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। परंतु इसका अर्थ यह नहीं था कि वे अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो देते थे। इसी के परिणामस्वरूप बड़े-बड़े सम्राटों की मौजूदगी के बावजूद शांति व्यवस्था स्थापित नहीं हो पाती थी।

आज की स्थिति भी कुछ ऐसी ही बनती जा रही है। कई राष्ट्रों ने परमाणु बम बना लिये हैं। वे शक्तिशाली माने जाते हैं। ऐसे में यूरोप के विभिन्न छोटे-छोटे राज्यों के लिए आत्मरक्षा के लिए किसी बड़े राष्ट्र की शरण में जाना आवश्यक है। हॉलैंड, पोलैंड, लक्समबर्ग, बेल्जियम आदि कई छोटे-छोटे देश बड़े राष्ट्रों के शरणागत हैं। इतना ही नहीं, कई तथाकथित बड़े राष्ट्र जैसे फ्रांस, इटली और स्पेन भी स्वयं को सुरक्षित महसूस नहीं करते। स्वतंत्र एवं पृथक् देश होते हुए भी उनमें वो दम-खम नहीं कि स्वतंत्रता अक्षुण्ण रखने के लिए आत्मनिर्भर हो सकें। इन राष्ट्रों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कई राष्ट्रों से डर बना रहता है और अपनी सुरक्षा का पुख्ता इंतजाम करने के लिए किसी-न-किसी बड़े राष्ट्र की शरण में जाना इनकी मजबूरी होती है।

विश्व युद्ध के बाद का परिदृश्य

प्राचीन काल में राजा-महाराजा विश्व-विजय के लिए निकला करते थे। उनका मुख्य उद्देश्य संपूर्ण पृथ्वी पर अपने साम्राज्य का विस्तार करना होता था। परंतु वह पुरानी साम्राज्यवादी विचारधारा अब समाप्त हो रही है। अब साम्राज्यवाद का स्थान विचारधाराओं पर आश्रित प्रभाव-क्षेत्रों ने ले लिया है। अभी के नए साम्राज्यवाद के नेता मुख्य रूप से रूस और अमेरिका हैं। एक ओर रूस जहाँ कम्युनिस्ट विचारधारा का जन्मदाता है, वहीं अमेरिका लोकतंत्रवाद का प्रखर समर्थक। जिन देशों में साम्यवाद प्रबल होता जा रहा है, वे रूस के निकट संपर्क में आ रहे हैं। पूर्वी यूरोप रूस के प्रभाव-क्षेत्र में आ गया है। पश्चिमी यूरोप के कई देशों में साम्यवाद प्रभाव बढ़ा रहा है। दक्षिण-पूर्व एशिया, बर्मा आदि में भी साम्यवाद पैर पसार चुका है। इस प्रकार, रूस का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, जिसे ध्यान में रखकर कई देश अमेरिका से संबंध स्थापित कर रहे हैं, ताकि साम्राज्यवाद के बढ़ते हाथ को स्वयं तक पहुँचने से रोका जा सके।

अभी शक्तिशाली देशों में अमेरिका और रूस ही संसार का नेतृत्व कर

रहे हैं। ब्रिटेन हमेशा अमेरिका की हाँ में हाँ मिलाता रहा है। व्यक्तिगत तौर पर ब्रिटेन की ऐसी स्थिति नहीं है कि वह अमेरिका से हटकर कोई बड़ा अंतरराष्ट्रीय निर्णय ले पाए। परंतु ब्रिटेन के पास उसके उपनिवेशों की शक्ति है। उसके अंतर्गत आनेवाले कई देशों का आर्थिक विकास अभी ठीक से नहीं हुआ है। ऑस्ट्रेलिया, कनाडा जैसे देश ब्रिटेन के साथ हैं। ब्रिटेन की शासन-व्यवस्था भी लोकतांत्रिक है, जो सुचारु रूप से लागू भी है। एशिया के कुछ देशों की सद्भावना भी ब्रिटेन के साथ है। भारत, बर्मा और श्रीलंका जैसे देशों पर कभी उसका साम्राज्य था। ये देश उसके प्रति सद्भावना रखते हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध के परिणाम के तौर पर एशिया से अंग्रेजों का प्रभुत्व समाप्त हुआ है। प्रथम विश्व युद्ध में ऑस्ट्रिया-हंगरी के विशाल साम्राज्य से अलग होकर कई जातियों ने अपने स्वतंत्र राज्यों का निर्माण किया था। इस बार भारत, बर्मा, श्रीलंका, मलाया आदि कई देश ब्रिटेन के आधिपत्य से मुक्त हुए। वर्तमान स्थिति में फ्रांस, ब्रिटेन और हॉलैंड के अधीनस्थ प्रायः सभी एशियाई राष्ट्र मुक्त होकर स्वतंत्र अस्तित्व बना चुके हैं। विश्व मानचित्र में एशिया की स्थिति सुदृढ़ हुई। अंतरराष्ट्रीय राजनीति में कोई कड़ा फैसला लेने से पहले एशियाई देशों को नकारा नहीं जा सकता। भारत स्वयं ही एक बड़ी अंतरराष्ट्रीय ताकत बनकर उभर रहा है। दुनिया में चीन के बाद भारत की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ है। भूमंडलीकरण के कारण चहुँमुखी विकास करके हम अपनी और अपने देश की गरिमा बढ़ा रहे हैं।

युद्ध में महाविनाश

एक मोटे अनुमान के अनुसार यह माना गया कि इस विश्व युद्ध में लगभग 3 करोड़ आम नागरिक और 2 करोड़ से अधिक सैनिकों की मौत हुई। घायलों की संख्या 55 लाख से अधिक थी। बम से मरनेवाले, जहाजों में डुबो दिए जानेवाले, बम के दुष्प्रभाव से उत्पन्न रोगों से मरनेवालों की संख्या 1 करोड़ से अधिक थी। युद्ध के दौरान और उसके बाद जितने लोगों को घर छोड़कर भागना पड़ा, उनकी संख्या भी करोड़ों में थी। अलग अलग देशों का युद्ध में जो व्यय हुआ, उसका सम्मिलित अनुमानित आँकड़ा 1 लाख करोड़ डॉलर से अधिक है। अकेले ब्रिटेन में लड़ाई के दौरान जो संपत्ति संबंधी नुकसान हुआ, उसकी क्षतिपूर्ति करने के लिए 1,800 करोड़ रुपए अपेक्षित

थे; जबकि ब्रिटेन युद्ध का क्षेत्र भी नहीं था। बावजूद इसके उसकी इमारतों, कारखानों, रेल, औद्योगिक इकाइयों आदि को व्यापक नुकसान पहुँचा। जिन देशों में प्रत्यक्ष युद्ध हुआ उनकी क्षति का अंदाजा इससे सहज ही लगाया जा सकता है। अनुमानत: रूस की कुल राष्ट्रीय संपत्ति का चौथाई भाग इस युद्ध में नष्ट हो गया। इतना बड़ा विनाश कभी किसी अन्य युद्ध में हुआ हो, ऐसा कोई उदाहरण किसी और संदर्भ में नहीं मिलता।

❑

शांति-व्यवस्था

''आपस में युद्ध करना नहीं, भूख से युद्ध करना हमारी पहली प्राथमिकता है।''

—अज्ञात

सन् 1939 से शुरू हुए विश्व युद्ध की अग्नि अगस्त 1945 में शांत हुई। इन छह वर्षों के दौरान यूरोप, अफ्रीका और एशिया के तमाम देश अस्त-व्यस्त रहे। युद्ध-समाप्ति के बाद मित्र राष्ट्रों ने शांति-व्यवस्था और यूरोप के पुनर्निर्माण की ओर ध्यान देना शुरू किया। जिस प्रकार अमेरिका, ब्रिटेन और रूस ने पारस्परिक सहयोग द्वारा धुरी राष्ट्रों की दमनकारी व्यवस्था से विश्व को मुक्त कराया, उसी प्रकार लोगों को आशा थी कि युद्धोत्तर काल की जटिल समस्याओं का समुचित समाधान कर ये तीनों राष्ट्र विश्व में वास्तविक शांति की स्थापना करने में सक्षम होंगे। युद्ध में विजय के बाद मित्र राष्ट्रों के बीच के मतभेद बढ़ते चले गए। ब्रिटेन, अमेरिका तथा रूस के लक्ष्यों में आधारभूत अंतर था। युद्ध के दौरान एक समान उद्देश्य की प्राप्ति हेतु सभी संगठित हो गए थे; किंतु उद्देश्य की पूर्ति होते ही उनके मतभेद उभरने लगे। पारस्परिक अविश्वास एवं भय के कारण विश्व की दो महान् शक्तियों—अमेरिका और रूस के बीच दूरियाँ व प्रतिद्वंद्विता बढ़ने लगी।

दोनों ही देशों की विचारधाराएँ पृथक् थीं। रूसी नेता मानते थे कि अमेरिकी नेतृत्व में पूँजीवादी राष्ट्र साम्यवादी रूस की शक्ति को समाप्त करने

का प्रयास अवश्य करेंगे। इसलिए वह अपनी सुरक्षा के लिए पूर्वी यूरोप और एशिया के विभिन्न क्षेत्रों में अपना राजनीतिक व आर्थिक प्रभुत्व स्थापित कर साम्यवादी विचारधारा का अधिक-से-अधिक प्रसार करना चाहता था।

उधर अमेरिका एवं ब्रिटेन के नेता यूरोप और एशिया में रूस के प्रभाव को सीमित करना चाहते थे। वे साम्यवादी विचारधारा के स्थान पर लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे। इसी संदर्भ में 5 मार्च, 1946 को अमेरिका के मिसौरी राज्य के फुल्टन में दिए गए अपने प्रसिद्ध भाषण में विंस्टन ने कहा था, "सोवियत रूस और उसके कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की विस्तारवादी एवं प्रचारवादी नीति की सीमाएँ कहाँ हैं, यह कोई नहीं जानता। बाल्टिक क्षेत्र में, स्टेटिन से एड्रियाटिक तट के निकट तक यूरोप में 'लोहे का एक परदा' गिरा दिया गया है। यूरोप के पूर्वी राज्यों में साम्यवादी दल प्रभावशाली हो गए हैं और सर्वाधिकारी सत्ता स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं। निश्चय ही हमने यूरोप की मुक्ति का संघर्ष इस प्रकार की व्यवस्था स्थापित करने के लिए नहीं किया था।"

उस वक्त चर्चिल ब्रिटिश प्रधानमंत्री नहीं थे, पर उनके विचारों का प्रभाव तब भी अमेरिका पर पड़ा और वह रूस के प्रभाव को रोकने के लिए प्रयास करने लगा। अक्तूबर 1946 में अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रूमैन ने कहा, "हमारी नीति सच्चाई एवं न्याय पर आधारित है और हम बुराई से समझौता नहीं करेंगे।"

ऐसे में अमेरिका और रूस दोनों ही अपने राजनीतिक प्रभाव की खातिर एक-दूसरे से दूर होते चले गए। दोनों देशों में वैचारिक असमानता के कारण किसी भी बात पर सहमति मुश्किल हो गई। शांति-स्थापना के अतिरिक्त अन्य जटिल समस्याएँ थीं, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है-

- जर्मनी ने यूरोप के लगभग सभी देशों पर अधिकार कर लिया था, जिन्हें मित्र राष्ट्रों ने मुक्त कराया। परंतु इस दासता और मुक्ति के दौरान उन देशों की दशा चिंतनीय थी। वहाँ के अधिकांश कल-कारखानों, इमारतों, कस्बों, नगरों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों आदि को काफी क्षति पहुँची थी। यहाँ तक कि बमबारी की वजह से खेतों की भी स्थिति ऐसी विषैली हो गई थी कि वहाँ कुछ भी उपजाना मुश्किल था। युद्ध के दौरान लाखों लोग घर-बार छोड़कर विस्थापित हो गए थे। बचे-खुचे लोगों को रोटी, कपड़ा और मकान जैसी आधारभूत समस्याओं से जूझना पड़ रहा

था। ऐसी स्थिति में उन लोगों का पुनर्वास जटिल समस्या थी।

- जैसा कि प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद भी अनुभव किया गया था, बल्कि प्रयास भी किया गया था कि एक ऐसी संस्था का निर्माण हो, जो आपसी विवादों को बातचीत के जरिए निपटा सके। द्वितीय विश्व युद्ध में परमाणु बम के प्रयोग ने तो मानो मानव समाज को हिलाकर रख दिया था। अब इसके बाद अगर तीसरा विश्व युद्ध हो तो ऐसे में उसकी विनाश-लीला का कयास लगाकर ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इसलिए संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे संगठन की स्थापना की गई थी कि वह भविष्य में किसी राज्य के युद्ध से हल निकालने की प्रथा को रोकेगा; परंतु उसमें बहुत अधिक सफलता नहीं मिली, जिसका परिणाम द्वितीय विश्व युद्ध के रूप में सामने आया।
- मित्र राष्ट्रों ने जिन देशों को जर्मन अधीनता से मुक्त कराया था, उनकी शासन-व्यवस्था किन लोगों के हाथों में हो, यह एक जटिल प्रश्न था। प्राय: हरेक देश में ऐसे लोगों की बड़ी जमात थी, जिन्होंने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में मित्र राष्ट्रों की मदद की थी। इन देशभक्तों ने आजाद सरकारें भी बना रखी थीं। पर इन्हें सत्ता सौंपने में भी परेशानी थी, क्योंकि इनके बीच भी आपसी सहमति नहीं थी। इनके विचार अलग-अलग थे। कुछ ऐसे भी देश थे, जहाँ अलग-अलग स्वतंत्र सरकारें चल रही थीं। इनमें कुछ लोग लोकतंत्र पर आस्था रखते थे तो कुछ साम्यवाद पर।
- जर्मन अधीनस्थ राज्यों के अतिरिक्त एक समस्या यह भी थी कि स्वयं जर्मनी में कैसी सरकार का निर्माण हो? यही प्रश्न इटली और जापान के संदर्भ में भी था। मित्र राष्ट्र सोचते थे कि विश्व युद्ध की सारी जिम्मेदारी इन नाजीवादियों और फासीवादियों की थी। उनकी विचारधारा और कार्यशैली ने ही दूसरे विश्व युद्ध को जन्म दिया। इसलिए उनका मत था कि जर्मनी और इटली में ऐसी सरकारें स्थापित की जाएँ कि नाजीवाद और फासीवाद फिर से सिर न उठा सके। उन देशों की उग्र राष्ट्रीयता, साम्राज्यवाद की प्रवृत्ति और सैन्य शक्ति के अधिकतम प्रयोग का हमेशा के लिए अंत हो जाए और वे लोकतंत्र के सिद्धांत पर चलकर शांति स्थापित करने में सहयोग प्रदान करें। मित्र राष्ट्र चाहते थे कि युद्ध की तैयारी एवं युद्ध के दौरान जर्मनी ने जिन विशेष कल-कारखानों का निर्माण अस्त्र-शस्त्र एवं अन्य अत्याधुनिक हथियार, पनडुब्बी और

विस्फोटक बनाने के लिए किया था, उन सभी को नष्ट कर दिया जाए, ताकि संसार के अन्य देशों तक यह संदेश पहुँचे कि मानव-समुदाय का अंत करने के लिए विस्फोटक बनाने से बेहतर है, शांति और सौहार्द से सहयोग करना।

- मित्र राष्ट्रों का विचार था कि फासीवादी और नाजीवादी नेताओं पर मुकदमे चलाए जाएँ और उन्हें कठोर-से-कठोर दंड दिया जाए, ताकि भविष्य में कोई मानवता से इस तरह खिलवाड़ न कर सके।
- जापान ने मलाया, बर्मा, सुमात्रा, जावा और इंडोचाइना आदि देशों पर अधिकार कर लिया था और वहाँ से गोरों की सत्ता उखाड़ फेंकी थी। जापान ने वहाँ एक अच्छी व्यवस्था यह की थी कि उसने जिन देशों को जीता था, उनकी शासन-व्यवस्था उन्हीं को सौंप दी थी। हालाँकि उन पर जापान का प्रभाव था। उन देशों की जनता यह मानने लगी थी कि यूरोप के साम्राज्यवादी लोगों को ऐसा कोई दैवी अधिकार प्राप्त नहीं कि वे उन पर शासन करें। अब जब दुबारा मित्र राष्ट्रों ने उन्हें अपने अधिकार में ले लिया तो उन्हें लगने लगा कि कहीं वे फिर से गोरों के गुलाम न हो जाएँ। इससे उन देशों में घोर असंतोष फैल गया। वे ऐसी सरकार के निर्माण का प्रयास करने लगे, जिससे जनता का असंतोष दूर हो और उनका प्रभुत्व भी कायम रहे।
- इन सबसे बड़ी आर्थिक समस्या थी। युद्ध में सभी देशों की सारी औद्योगिक इकाइयाँ बंद हो गई थीं, कृषि पर प्रतिकूल असर पड़ा था, जनजीवन अस्त-व्यस्त हो गया था। शायद ही ऐसा कोई परिवार बचा हो, जो युद्ध से प्रभावित न हुआ हो। अधिकांश परिवारों के आय के स्रोत समाप्त हो गए थे। उन्हें सँभालने के लिए भारी आर्थिक सहायता की जरूरत थी। युद्ध के बाद यूरोपीय देशों के हालात ऐसे नहीं थे कि वे उनकी इतनी आर्थिक सहायता कर पाते, जिससे कि उनका जीवन वापस पटरी पर लौट सके। मित्र राष्ट्रों में सिर्फ अमेरिका के पास पर्याप्त धन था; परंतु वह इस बात से भली-भाँति अवगत था कि कर्ज देने के बाद उसे वसूलना आसान नहीं होगा। परंतु अमेरिका की मदद के बिना किसी भी हालत में उन देशों का पुनर्निर्माण संभव नहीं था और अमेरिका इस बात से चिंतित था कि आखिर किन शर्तों पर उनकी मदद की जाए।

संयुक्त राष्ट्र राहत एवं पुनर्वास प्रशासन

मित्र राष्ट्रों की जीत के आगाज के साथ जब जर्मनी युद्ध में हर मोरचे पर परास्त हो रहा था, मित्र राष्ट्रों के आगे विजित प्रदेशों में विस्थापित लोगों के पुनर्वास, आर्थिक मदद, घायलों व बीमारों के इलाज एवं अन्य कई प्रकार की समस्याएँ प्रमुख थीं। इसके लिए मित्र राष्ट्रों ने एक सहायक संस्था का गठन किया। संयुक्त राष्ट्र राहत एवं पुनर्वास प्रशासन (यूनाइटेड नेशंस रिलीफ एंड रिहेबिलिटेशन एडमिनिस्ट्रेशन) नामक इस संस्था का गठन वाशिंगटन में नवंबर 1943 में।

युद्ध-समाप्ति के पश्चात् सन् 1946 के अंत तक लगभग 60 लाख से अधिक महिलाओं, पुरुषों, बच्चों और वृद्धों का पुनर्वास किया गया। इस संस्था के माध्यम से उन्हें हर तरह की सुविधाएँ देने की कोशिश की गई। हिटलर के शासनकाल में इन पर काफी अत्याचार किए गए थे, जिनसे इन्हें अपना वतन छोड़ने को मजबूर होना था। अपनी जान बचाने के लिए ये दर-दर की ठोकरें खा रहे थे।

इस संस्था द्वारा पुनर्वास का कार्यक्रम 39 देशों में चलाया जा रहा था। इसे सहायता राशि के रूप में विभिन्न देशों से 1,100 करोड़ रुपए प्राप्त हुए। इस राशि को दो साल के अंदर इन विस्थापितों की मदद के लिए खर्च कर दिया गया। परंतु जितनी बड़ी संख्या में लोग बेघर और तबाह हुए थे, यह राशि अत्यल्प थी। अत: पुनर्वास का कार्यक्रम पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाया था। जुलाई 1946 में इस संस्था को और 350 करोड़ रुपए की आवश्यकता आ पड़ी। परंतु उन्हें जीवित रखने के लिए कम-से-कम भोजन देने की व्यवस्था के लिए भी इतनी राशि मुहैया कराना टेढ़ी खीर था।

यूरोप के कई देशों को न सिर्फ अनाज की आवश्यकता थी, बल्कि बीजों की भी आवश्यकता थी, ताकि वे फसल उगा सकें। कृषि उपकरणों एवं मशीनों की भी जरूरत थी। प्राय: सभी औद्योगिक प्रतिष्ठान और कल-कारखाने बंद या बरबाद हो चुके थे।

पूर्वी यूरोप के देशों में इस सहायक संस्था का विरोध शुरू हो चुका था। रूस को लगने लगा कि अमेरिका इस संस्था द्वारा सहायता के नाम पर अपना वर्चस्व बढ़ा रहा है। इस संस्था को अधिक-से-अधिक सहायता राशि अमेरिका प्रदान करता था। विरोध-स्वरूप उसने सहायता राशि देनी बंद कर दी, जिससे

संस्था का काम बंद हो गया। सन् 1945-46 में इस संस्था ने लोगों को भुखमरी से बचाने के लिए प्रशंसनीय कार्य किए थे, जो वर्ष 1947 के शुरू होते-होते धनाभाव के चलते बंद हो गए; परंतु अब तक यूरोप के कई देश आत्मनिर्भरता की स्थिति में आ गए थे।

शांति की स्थापना

मित्र राष्ट्रों ने विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद शांति-व्यवस्था की स्थापना के लिए आयोजित सम्मेलन में सभी देशों को बुलाना उचित नहीं समझा। स्थायी शांति व्यवस्था के लिए मित्र राष्ट्रों के विभिन्न सम्मेलनों में स्वीकृत प्रस्तावों के अनुसार मानव-जाति की भावी पीढ़ियों को युद्ध की विनाशलीला से मुक्ति दिलाने और अंतरराष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को बनाए रखने के उद्देश्य से अक्तूबर 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई।

इससे पहले फरवरी 1945 में क्रीमिया सम्मेलन और जुलाई 1945 में पोट्सडम सम्मेलन में यूरोप और एशिया के पराजित राष्ट्रों की प्रादेशिक पुनर्व्यवस्था के संबंध में कुछ सामान्य सिद्धांत स्वीकृत किए गए थे। पोट्सडम सम्मेलन में अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, चीन और फ्रांस के विदेश मंत्रियों को यह जिम्मेदारी सौंपी गई थी कि वे विश्व शांति समझौते के प्रारूप को तैयार करें। इन सदस्यों को इटली, रूमानिया, बुल्गारिया, फिनलैंड, हंगरी और जर्मनी के साथ संधियों के मसौदे तैयार करने थे।

इसी उद्देश्य से अमेरिकी विदेश मंत्री बर्न्ज, ब्रिटिश विदेश मंत्री बेविन, रूसी विदेश मंत्री मोलोतोव और फ्रांसीसी विदेश मंत्री बिदाल 11 सितंबर, 1945 को लंदन में एकत्र हुए। परंतु इन चारों राष्ट्रों में विचारधारा की एकरूपता नहीं थी। संधियों की रूपरेखा सर्वसम्मति से तैयार करना कठिन हो रहा था। पश्चिमी राष्ट्र पूर्वी यूरोप में रूसी प्रभाव को सीमित करना चाहते थे, वहीं सोवियत संघ के नेता भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में पश्चिमी राष्ट्रों की प्रधानता कम करना चाहते थे। लंदन-वार्त्ता विफल हो गई, ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस वार्त्ता की विफलता के बाद दिसंबर 1945 में अमेरिका और ब्रिटेन के विदेश मंत्रियों ने मॉस्को में रूसी विदेश मंत्री से वार्त्ता करके आपसी मतभेदों को समाप्त करने की पहल की। इस वार्त्ता में शांति की पहल थोड़ी आगे जरूर बढ़ी। यहाँ जापान, कोरिया, पूर्वी यूरोप आदि देशों के

मसौदों पर आंशिक सहमति हो पाई।

वार्त्ता और गोष्ठियों का क्रम चलता रहा। इसके बाद विदेशमंत्रियों की विशिष्ट परिषद् का मिलन अप्रैल से जुलाई 1946 तक पेरिस में हुआ। इस अवधि में इटली, बुल्गारिया, हंगरी, रूमानिया और फिनलैंड से संबंधित कई विवादास्पद बिंदुओं का समाधान हो गया। इन परास्त देशों से संधियों का स्वरूप कैसा हो, यह निर्णय वाकई इतना आसान नहीं था।

पेरिस के सम्मेलन में संधियों की पृष्ठभूमि तैयार कर ली गई और अन्य मित्र राष्ट्रों की सहमति प्राप्त करने के लिए एक कॉन्फ्रेंस पेरिस में बुलाई गई, जिसमें 21 राज्यों के प्रतिनिधि एकत्र हुए। यह कॉन्फ्रेंस 29 जुलाई, 1946 से 15 अक्तूबर, 1946 तक चली। अब तक युद्ध की समाप्ति को एक वर्ष बीत चुका था और युद्ध के समय की एकतावाली स्थिति नहीं रह गई थी। ढाई महीने से अधिक चलनेवाली इस कॉन्फ्रेंस में अंततोगत्वा बहुत वाद-विवाद के बाद इटली सहित पाँच देशों के साथ की जानेवाली संधियों की शर्तें स्वीकृत की गईं। अब संधि-पत्र पर हस्ताक्षर करवाने की जिम्मेदारी पूर्व गठित परिषद् को सौंप दी गई। अगले महीने न्यूयॉर्क में उन्होंने अगला अधिवेशन आयोजित किया, जिसमें संधियों का अंतिम प्रारूप तैयार किया गया। सारी तैयारियाँ पूरी होने के बाद पेरिस में सभी 21 मित्र राष्ट्रों के प्रतिनिधि एकत्र हुए। अंततः 10 फरवरी, 1947 को पाँचों संधि-पत्रों पर मित्र राष्ट्रों के सभी प्रतिनिधियों सहित इटली, बुल्गारिया, रूमानिया, फिनलैंड और हंगरी के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर कराए गए। इन संधि-पत्रों को तीन भाषाओं में तैयार किया गया था।

इससे पहले अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जो भी दस्तावेज तैयार किए जाते थे, उन्हें अंग्रेजी और फ्रेंच भाषा में तैयार किया जाता था, परंतु इस बार रशियन भाषा में भी संधि-पत्र तैयार किए गए। ऐसा वस्तुतः रूस के बढ़ते कद के कारण हुआ था। लेकिन अभी भी ये पाँचों देश इस संधि से संतुष्ट नहीं थे।

किसी देश को जीतने के बाद मित्र राष्ट्र उसके संबंध में ऐसी धारणा बना लेते थे कि उसे बिना शर्त आत्मसमर्पण करना होगा। उसके बाद वहाँ जो सरकार शासन-व्यवस्था चलाएगी, उस पर पूर्ण नियंत्रण मित्र राष्ट्रों का रहे। उस देश की सैन्य-व्यवस्था की चाबी मित्र राष्ट्रों के हाथों में रहे। कुल मिलाकर वह देश मित्र राष्ट्रों के इशारे से संचालित हो। मुसोलिनी के पतन के बाद मार्शल वोदोग्लियो ने इटली में सामयिक सरकार स्थापित की थी, परंतु उस पर नियंत्रण रखने के लिए दो संस्थाओं का गठन किया गया—

- अलाइड मिलिटरी गवर्नमेंट और
- अलाइड कंट्रोल कमीशन।

अलाइड मिलिटरी गवर्नमेंट इटली से जर्मन सेना को निकालने और सैनिक दृष्टि से उसके संगठन की व्यवस्था करती थी। इसके साथ-साथ उन प्रदेशों का शासन-संचालन भी करती थी, जहाँ अभी लड़ाई जारी थी। अलाइड कंट्रोल कमीशन का काम मार्शल वोदोग्लियो की सरकार पर नजर रखना तथा उस पर नियंत्रण रखना था। इस कमीशन में अमेरिका, रूस, फ्रांस और ब्रिटेन के प्रतिनिधि थे। चारों देशों के प्रतिनिधित्व के बावजूद निर्णय का एकाधिकार अमेरिका और ब्रिटेन के पास था। इसका कारण यह था कि इटली को अमेरिका और ब्रिटेन ने मिलकर हराया था।

23 अगस्त, 1944 को रूमानिया की हार हुई थी और उसके साथ भी तत्काल सामयिक संधि की गई थी। 9 सितंबर, 1944 को बुल्गारिया, 19 सितंबर 1944 को फिनलैंड और 20 जनवरी, 1945 को हंगरी ने आत्मसमर्पण किया था। इन देशों को परास्त करने में रूस की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इनके साथ की गई संधियों की शर्त भी वही थी कि ये देश बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दें। जिस प्रकार इटली में कंट्रोल कमीशन का निर्माण किया गया था और उस पर अमेरिका एवं ब्रिटेन का नियंत्रण था, उसी प्रकार इन चारों देशों में भी कंट्रोल कमीशन बनाए गए, जिन पर रूस का नियंत्रण था।

❑

प्रमुख संधियाँ

''मैंने युद्ध देखा है। मैंने जमीन पर युद्ध देखा है। मैंने समुद्र पर युद्ध देखा है। मैंने मौतें देखी हैं। नगरों को नष्ट होते देखा है। मैंने बच्चों को भूख से बिलखते देखा है। मैंने पत्नियों और माताओं की पीड़ा को देखा है। मुझे युद्ध से नफरत है।''

—फ्रेंकलिन डी. रूजवेल्ट

इटली से संधि

संधि के अंतर्गत इटली को अपने अनेक छोटे-छोटे प्रदेश दूसरे देशों को हस्तांतरित करने पड़े। और तमाम औपनिवेशिक राज्य छोड़ने पड़े। फ्रांस को छोटा सेंट बर्नार्ड का क्षेत्र, मॉण्टसेनिस का मैदान, मॉण्ट थाबोर एवं ब्रिगाटेंडा के प्रदेश तथा यूगोस्लाविया को पूर्वी वनेजिया ज्यूलिया, जारा का 300 वर्गमील का क्षेत्र और एड्रियाटिक सागर के कुछ द्वीप दिए गए। अबीसिनिया युद्ध के दौरान इटली की अधीनता से स्वतंत्र हो गया था। वहाँ के पदच्युत राजा हैल सयलासी को अपनी खोई राजसत्ता पुन: प्राप्त हो चुकी थी। इसी प्रकार अक्तूबर 1944 में अल्बानिया भी जर्मनी और इटली के कब्जे से मुक्त हो चुका था। जनवरी 1946 में अल्बानिया में संविधान परिषद् का गठन हुआ। कर्नल होड्जा के नेतृत्व में सामयिक सरकार की स्थापना की गई। इससे पहले अल्बानिया में इटली के प्रभाववाले राजवंश का शासन था, जिसे इस बार जनता ने वापस नहीं आने दिया।

इटली लीबिया, एरीट्रिया एवं इतालवी सोमालीलैंड जैसे उपनिवेशों पर अपने समस्त अधिकार त्याग चुका था। इन प्रांतों के भविष्य का निर्णय अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस और रूस को एक साल के अंदर करना था; किंतु उन चारों देशों में आपसी समझौता न होने के कारण राष्ट्र संघ की महासभा को उनके विषय में निर्णय करना पड़ा।

इस सबके अतिरिक्त इटली को सात वर्षों में यूगोस्लाविया को 12 करोड़ 50 लाख डॉलर, यूनान को 10 करोड़ 50 लाख डॉलर, रूस को 10 करोड़ डॉलर, इथोपिया को 2 करोड़ 50 लाख डॉलर, अल्बानिया को 50 लाख डॉलर मूल्य का सामान क्षतिपूर्ति के रूप में देना था। संधि के अनुसार इटली की सैन्य-क्षमता भी सीमित कर दी गई। उसकी थलसेना की संख्या 2. 5 लाख और 200 टैंक, नौसेना में 22,500 सैनिक, 2 जंगी जहाज, 4 क्रूजर एवं कुछ अन्य युद्धोपयोगी नौकाएँ रखने की अनुमति दी गई। वायुसेना में सिर्फ 200 लड़ाकू विमान एवं 150 अन्य विमानों के अतिरिक्त किसी भी तरह की अन्य युद्ध-सामग्री रखने की अनुमति नहीं दी गई। इसके अतिरिक्त फ्रांस और यूगोस्लाविया की सीमाओं पर, सिसली एवं सार्डीनिया के तटों पर तथा लांपेडुसा एवं पेंटिलेरिया टापुओं पर सभी तरह की किलेबंदी को ध्वस्त करने का आदेश दिया गया।

हालाँकि मुसोलिनी के पतन के बाद इटली मित्र राष्ट्रों के साथ हो गया था और उसने जर्मनी के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा भी कर दी थी, फिर भी संधि में मित्र राष्ट्रों ने इसकी अनदेखी की और आर्थिक, सैन्य एवं राजनीतिक शक्ति द्वारा उसे हर तरह से कुचलने की व्यवस्था कर दी, ताकि भविष्य में वह कभी शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में न उभर पाए।

रूमानिया से संधि

रूमानिया की संधि के अनुसार, बावरिया और उत्तरी बुकोबिना के प्रदेश उसे रूस को देने पड़े। हालाँकि रूस युद्ध के दौरान ही इन प्रदेशों पर अधिकार कर चुका था, परंतु अब मित्र राष्ट्रों ने भी उस पर मुहर लगा दी थी। इसी तरह दक्षिणी डोब्रुजा का क्षेत्र रूमानिया से लेकर बुल्गारिया को देना पड़ा। रूमानिया से इन प्रदेशों के निकल जाने से उसका क्षेत्रफल बहुत कम रह गया था। सिर्फ रूस को जितना इलाका प्राप्त हुआ था, उसका क्षेत्रफल

21 हजार वर्गमील था। हालाँकि ट्रांसिल्वानिया प्रदेश रूमानिया के अंतर्गत ही रहा। इसका क्षेत्रफल 16 हजार वर्गमील था, जिसकी जनसंख्या 25 लाख थी। हंगरी को यह प्रदेश जर्मनी ने दिलाया था, ताकि यूरोप के वे राज्य जो उस समय जर्मनी के प्रभाव में थे, मिलकर रहें और अपनी सम्मिलित शक्ति का उपयोग मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध कर सकें।

रूमानिया की सेना को भी सीमित कर दिया गया। थलसेना में सैनिकों की संख्या 1 लाख 20 हजार, नौसेना में सिर्फ 5 हजार और वायु सेना में 8 हजार सैनिक रखने की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त जंगी जहाजों और हवाई जहाजों की संख्या नाममात्र की कर दी गई। साथ ही उसे रूस को 100 करोड़ रुपयों का सामान हरजाने के रूप में आगामी 8 वर्षों में देना स्वीकार करना पड़ा। इसके पीछे तर्क यह था कि उसके युद्ध में शामिल होने से सर्वाधिक नुकसान रूस को हुआ है।

बुल्गारिया से संधि

जितनी भी संधियाँ की गईं, उनमें बुल्गारिया एकमात्र ऐसा राष्ट्र था, जिसका कोई प्रदेश किसी अन्य राज्य को नहीं दिया गया। जबकि रूमानिया से संधि के दौरान दक्षिणी डोब्रुजा का प्रदेश लेकर बुल्गारिया को दिया गया था। परंतु उसे भी एक निश्चित समयावधि में इटली और रूमानिया की तरह हरजाने की भारी रकम मित्र राष्ट्रों को देनी पड़ी। उसे ग्रीस को 4 करोड़ 50 लाख डॉलर और यूगोस्लाविया को 2 करोड़ 50 लाख डॉलर हरजाने के रूप में देना स्वीकार करना पड़ा। इसे अदा करने के लिए उसे 8 वर्ष का समय दिया गया। उसकी सैन्य-क्षमता भी सीमित कर थलसेना में 55 हजार, नौसेना में 7,500 और वायुसेना में सिर्फ 7 हजार सैनिक रखने की व्यवस्था की गई। यह भी निर्णय लिया गया कि वह ग्रीस की सीमा पर कोई किलेबंदी नहीं करेगा।

हंगरी से संधि

संधि के दौरान लिये गए निर्णयों में हंगरी को अपने कई प्रदेश अन्य राज्यों को देने पड़े। ट्रांसिलवेनिया का विशाल 16 हजार वर्ग मील का क्षेत्र उसे रूमानिया को देना पड़ा। सन् 1938 में स्लोवाकिया का जो भाग हंगरी ने

चेकोस्लोवाकिया से छीना था, उससे लेकर पुनः चेकोस्लोवाकिया को दे दिया गया। इसका क्षेत्रफल 4,500 वर्गमील था। इसके अतिरिक्त डेन्यूब के दक्षिण में ब्रातिस्लावा में भी कुछ प्रदेश चेकोस्लोवाकिया को हस्तांतरित किए गए। हंगरी को यह प्रदेश उन दिनों मिला था, जब साम्राज्य-विस्तार की अभिलाषा में हिटलर चेकोस्लोवाकिया का अंग-भंग करने में लगा हुआ था। हरजाने के रूप में उसे आठ वर्षों में रूस को 20 करोड़ डॉलर, चेकोस्लोवाकिया को 10 करोड़ डॉलर और यूगोस्लोवाकिया को 24 करोड़ डॉलर मूल्य की वस्तुएँ देनी थीं। हंगरी की सैन्य-शक्ति भी सीमित कर दी गई। उसे थलसेना में 65 हजार और वायुसेना में सिर्फ 5 हजार सैनिकों को रखने की अनुमति दी गई। उसके जंगी जहाजों की संख्या सीमित कर सिर्फ 70 कर दी गई।

फिनलैंड से संधि

फिनलैंड की संधि में उन्हीं शर्तों को दोहराया गया, जो वर्ष 1940 में मॉस्को-संधि द्वारा रूस ने उसके साथ तय की थीं। उसने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर तो दी थी, परंतु रूस जैसे शक्तिशाली देश से अधिक देर तक युद्ध करना उसके लिए मुश्किल था। इसलिए विवश होकर वह संधि को तैयार हो गया। सन् 1940 में रूस की जो संधि फिनलैंड से हुई थी, उसके अनुसार उसे प्रायः वे सभी प्रदेश प्राप्त हो चुके थे, जो उसकी सीमा से लगते थे। खासकर लडोग झील के उत्तरी व पश्चिमी प्रदेश, फिनलैंड का विशाल एवं समृद्ध नगर वीपुरी और साथ ही की खाड़ी के कई द्वीपों पर उसका कब्जा हो चुका था। फिनलैंड पर भी हरजाने की रकम लगाई गई। उसे 100 करोड़ रुपए की वस्तुएँ रूस को देनी थीं। इसके लिए 8 वर्ष का समय दिया गया था। सैनिक क्षमता के मामले में यह व्यवस्था की गई कि फिनलैंड की थलसेना में 35 हजार, नौसेना में 4,500 और वायुसेना में 3,000 से अधिक सैनिक न हों।

उपर्युक्त संधियों के परिणामस्वरूप बालकन क्षेत्र में यूगोस्लाविया सर्वाधिक प्रभावशाली राष्ट्र बन गया। परंतु आर्थिक दृष्टि से सबसे अधिक लाभ रूस को हुआ। इटली, रूमानिया, बुल्गारिया, हंगरी और फिनलैंड से हरजाने की जितनी रकम वसूल की गई थी, उसका 70 फीसदी रूस को प्राप्त हुआ। रूस को प्राप्त होनेवाली राशि लगभग 90 करोड़ डॉलर थी। इसके अतिरिक्त उसे

कई नए प्रदेश भी प्राप्त हुए। इन संधियों से पेरिस के क्षेत्रफल में बहुत विस्तार हुआ, साथ ही हरजाने में प्राप्त हुई भारी रकम से युद्ध में हुई हानि की क्षतिपूर्ति में भी मदद मिली।

जर्मनी से संधि में विफलता

सन् 1943 के मॉस्को सम्मेलन और फरवरी 1945 के याल्टा (क्रीमिया) सम्मेलन में मित्र राष्ट्रों के नेताओं ने जर्मनी की भावी व्यवस्था संबंधी नीति की रूपरेखा तय कर ली थी। उस समय यह तय किया गया कि पराजित जर्मनी के चार अलग-अलग क्षेत्रों पर अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस और रूस का नियंत्रण होगा। हिटलर की मृत्यु के बाद डोयनिट्स के नेतृत्व में जर्मनी में सामयिक सरकार की स्थापना की गई थी। उसने बिना शर्त समर्पण में ही जर्मनी की भलाई समझी थी; परंतु मित्र राष्ट्र उसे जर्मनी का शासक समझते ही नहीं थे। इसलिए उन्होंने जर्मनी की शासन-व्यवस्था अपने हाथों में रखना ही उचित समझा।

आपसी सामंजस्य के आधार पर मित्र राष्ट्रों के चारों प्रमुख राष्ट्रों ने जर्मनी को चार भागों को बाँट लिया। पूर्वी जर्मनी रूस को मिला। इस इलाके का कुल क्षेत्रफल 45 हजार वर्गमील था। इसमें 1 करोड़ 80 लाख की आबादी रहती थी। अमेरिका ने उन क्षेत्रों को अधिग्रहीत किया, जिनकी सीमाएँ स्विट्जरलैंड एवं ऑस्ट्रिया से लगती थीं। यह जर्मनी का दक्षिण-पूर्वी हिस्सा था, जिसका कुल क्षेत्रफल 42,500 वर्ग मील था और आबादी 1 करोड़ 65 लाख थी। जर्मनी की जो सीमा फ्रांस से लगती थी, उसे फ्रांस के सुपुर्द कर दिया गया। इसमें मुख्य रूप से राइनलैंड और सार के प्रदेश थे। इसका कुल क्षेत्रफल 16,500 वर्ग मील था और इसमें रहनेवाले लोगों की आबादी 60 लाख थी। ब्रिटेन को पश्चिमी जर्मनी के प्रदेश दिए गए जो बेल्जियम और हॉलैंड की सीमा से लगे हुए थे। इस क्षेत्र का कुल क्षेत्रफल 36,000 वर्ग मील था और इसकी जनसंख्या 1 करोड़ 30 लाख थी। इसके अतिरिक्त बर्लिन के चारों ओर का प्रदेश रूस को दिया गया, परंतु खास बर्लिन को चार भागों में बाँट दिया गया और उस पर अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस और रूस का अलग-अलग शासन स्थापित किया गया। साथ ही पूर्वी जर्मनी का एक बड़ा भूभाग पोलैंड को दिया गया, जिसके अंतर्गत प्रशिया और साइलीशिया के अनेक प्रदेश आते

थे। प्रशिया का उत्तर-पूर्वी भाग, जिसमें क्यूनिग्सबर्ग का प्रसिद्ध नगर स्थित था, रूस को सुपुर्द कर दिया गया। जर्मनी के लिए यह फैसला 17 जुलाई, 1945 को पोट्सडम की कॉन्फ्रेंस में लिया गया था। इसके अतिरिक्त कुछ और महत्त्वपूर्ण फैसले लिये गए, जो सारांश में निम्नलिखित हैं–

- शासन की सुविधा के लिए बर्लिन और जर्मनी को चार-चार भागों में बाँट दिया जाए, जिसके अलग-अलग खंडों पर फ्रांस, अमेरिका, रूस और ब्रिटेन का अधिकार रहे। साथ ही चारों राज्य मिलकर एक सम्मिलित 'नियंत्रण परिषद्' बनाएँ, जो जर्मनी से संबंध रखनेवाले सभी मामलों का निबटारा करे।
- जर्मनी की जनता के साथ समानता का व्यवहार किया जाए।
- जर्मनी की जिन औद्योगिक इकाइयों का प्रयोग हथियार एवं अन्य युद्ध-सामग्री के निर्माण के लिए किया जाता था, उन्हें हमेशा के लिए बंद कर दिया जाए या उन पर मित्र राष्ट्रों का नियंत्रण हो जाए।
- जर्मनी को पूर्णत: शस्त्र-विहीन राष्ट्र बना दिया जाए।
- नाजी विचारधारा के लोगों, उनके सहयोगियों और अनुयायियों को जड़ से मिटा दिया जाए। कुछ ऐसी व्यवस्था की जाए, जिससे जर्मनी में पुन: नाजी व्यवस्था हावी न हो पाए।
- नाजी पार्टी द्वारा बनाए गए कानूनों को निरस्त कर दिया जाए।
- नाजी पार्टी के नेताओं व उनके सहयोगियों पर मुकदमा चलाकर उन्हें दंडित किया जाए, जो युद्ध के दौरान कई प्रकार के अपराधों में सम्मिलित थे।
- जर्मनी की शिक्षा-व्यवस्था ऐसी हो कि भावी पीढ़ियों पर नाजीवादी विचारों का दुष्प्रभाव न पड़े।
- जर्मनी में किसी एक ही देश की सशक्त केंद्रीय सत्ता की स्थापना न हो। उसके स्थान पर वहाँ ऐसी व्यवस्था की जाए, जिससे उसके विभिन्न राज्यों में सुचारु रूप से सरकार चल सके और उसका विकास संभव हो सके। लोकतंत्र में आस्था रखनेवाली पार्टियों को जर्मनी में विकास करने का पूरा मौका दिया जाए।
- जर्मनी में किसी भी प्रकार की युद्ध-सामग्री न तैयार की जाए। किसी भी तरह के हवाई जहाज एवं जलयानों के निर्माण बंद कर दिए जाएँ। जितने भी आवश्यक कल-कारखानों और औद्योगिक इकाइयों की नितांत

आवश्यकता हो, जो जर्मनी के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक हैं, उन पर मित्र राष्ट्रों की कड़ी निगरानी रहे।

- मित्र राष्ट्र युद्ध की सारी जिम्मेदारी जर्मनी के सिर मढ़कर उससे भारी रकम वसूलने के पक्ष में थे। इस हरजाने की वसूली के लिए एक नई व्यवस्था की गई। प्रथम विश्व युद्ध के बाद हरजाने की वसूली या तो नकदी से हुई थी या सामान से। परंतु इन दोनों विधियों से वसूली में परेशानी हुई थी। मुद्रा के रूप में हरजाना तभी मिल सकता था, जब जर्मनी का निर्यात आयात की अपेक्षा अधिक हो। अन्यथा उसकी मुद्रा-पद्धति छिन्न-भिन्न हो जाती और स्थानीय सिक्कों की कीमत न के बराबर रह जाती। किसी वस्तु के रूप में हरजाना तब वसूला जा सकता था, जब जर्मनी की व्यावसायिक पैदावार खूब होती, उसके कल-कारखाने उन्नति करते और सस्ते जर्मन माल से दुनिया के बाजार भर जाते। परंतु ऐसा होना मुश्किल था। इसलिए मित्र राष्ट्र इस बार ऐसी व्यवस्था के पक्षधर थे कि जिसमें जर्मनी में केवल उतनी ही मशीनरी रहने दी जाए, जो उसकी निजी आवश्यकताओं के लिए परमावश्यक हो। इसके अतिरिक्त सभी मशीनरी, कल-कारखाने, वायुयान, जलयान, विभिन्न युद्धोपयोगी पदार्थ, हथियार एवं अन्य सामान जर्मनी से ले जाकर मित्र राष्ट्रों में बाँट दिए जाएँ। उन्हें रूस, फ्रांस, पोलैंड, बेल्जियम आदि राज्यों को दे दिया जाए। जिन देशों को युद्ध के दौरान काफी क्षति पहुँचाई गई थी। वस्तुतः प्रथम विश्व युद्ध के बाद मिली सीख से मित्र राष्ट्र इस बार वसूली में किसी भी तरह की देरी नहीं करना चाहते थे। उन्हें लगता था कि जिस भी तरह, जो भी वसूली हो जाए, उसमें कोई ढिलाई न बरती जाए।

हालाँकि शासन की दृष्टि से जर्मनी को चार भागों में बाँटकर चारों राष्ट्रों का आधिपत्य स्थापित किया जा चुका था, परंतु संपूर्ण जर्मनी की समस्याओं के समाधान के लिए नियंत्रण परिषद् का गठन भी किया गया था। इस परिषद् में अमेरिका, ब्रिटेन, रूस और फ्रांस के वे चार सेनापति सदस्य के रूप में शामिल थे, जो जर्मनी के चारों क्षेत्रों में शासक के तौर पर नियुक्त किए गए थे। वास्तविकता यह थी कि मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी में जो सरकारें कायम की थीं, वे सैनिक सरकारें थीं और उनका संपूर्ण संचालन सेनापतियों के हाथों में था। नियंत्रण परिषद् को जब कभी कोई ऐसा फैसला लेना होता था, जो संपूर्ण

जर्मनी से संबंध रखता हो तो ये चारों सेनापति मिलकर उस पर विचार-विमर्श करते थे और सामूहिक अंतिम निर्णय लेते थे। अंतिम निर्णय के बारे में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उसमें चारों की सहमति आवश्यक थी। किसी एक की असहमति होने पर भी फैसला अस्वीकृत हो जाता था। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि दो विचारधाराएँ आपस में टकरा रही थीं। रूस की साम्यवादी और अमेरिका की लोकतंत्रवादी विचारधाराएँ आपस में कई बार टकराहट का कारण बनती थीं और मित्र राष्ट्रों के चारों प्रमुख सेनापति समाधान में सफल नहीं हो पाते थे।

इसके अतिरिक्त एक और समिति बनाई गई थी, जिसका काम चारों जर्मन क्षेत्रों में आवागमन के साधनों, मुद्रा, राष्ट्रीय आय-व्यय आदि पर विचार करना था। इस समिति का नाम 'अलाइड कॉर्डिनटिं कमेटी' था। इसके सदस्य आपसी सहयोग एवं विचार-विमर्श से चारों क्षेत्रों के हित में किसी एक निर्णय पर पहुँचने का प्रयास करते थे।

ऑस्ट्रिया से संधि

युद्ध समाप्त होने से पहले ही सन् 1943 में तीन बड़े राज्यों ने ऑस्ट्रिया को पुनः एक स्वतंत्र राज्य के रूप में स्थापित करने का निश्चय कर लिया था। उसकी शासन-व्यवस्था की पुनर्स्थापना के लिए एक 'मित्र राष्ट्रीय परिषद्' बनाई गई थी।

स्मरण रहे कि जर्मनी की पराजय से एक महीने पहले अप्रैल 1945 में ही रूसी सेना ऑस्ट्रिया में प्रवेश कर चुकी थी। उससे पहले वहाँ हिटलर की नाजी शक्ति सुदृढ़ थी। परंतु रूसी सेनाओं के प्रवेश से वहाँ नाजी प्रभाव घटने लगा था। अब देश में ऐसे लोगों के आगे आने की आवश्यकता थी, जो नाजी विचारधारा से संतुष्ट नहीं थे, ताकि वे देश में सरकार बनाकर शासन-व्यवस्था सुचारु रूप से चला जा सकें। ऐसे ही लोगों में डॉ. कार्ल रेनर सामने आए, जिनका नाजी विचारधारा से अलग होकर लोगों को संगठित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा था। सन् 1919 में हाप्सबुर्ग राजवंश के अंत के बाद वहाँ रिपब्लिक सरकार बनी थी। उस समय डॉ. कार्ल रेनर को ही प्रधानमंत्री बनाया गया था। तब वे ऑस्ट्रिया के लोकसत्ताधारी दल के प्रधान नेता थे। रूसी नेताओं ने डॉ. रेनर को विएना जाकर लोगों को नाजी विचारधारा के

विरुद्ध संगठित करने की अनुमति दे दी। डॉ. रेनर की वहाँ कई ऐसे नेताओं से मुलाकात हुई, जो नाजी शासन में रहकर भी चोरी-छिपे मित्र राष्ट्रों की मदद करते रहे थे और ऑस्ट्रिया को हिटलर के प्रभाव से मुक्त कराने के लिए निरंतर प्रयासरत थे। इन नेताओं की अलग-अलग पार्टियाँ भी थीं। इनमें तीन दल प्रमुख थे। कम्युनिस्ट दल, ऑस्ट्रियन जनता दल और सोशल डेमोक्रेटिक दल। अब सभी नेताओं और डॉ. रेनर ने मिलकर एक स्वतंत्र ऑस्ट्रियन सरकार के गठन का निर्णय लिया। 29 अप्रैल, 1945 को इस संयुक्त सरकार का गठन कर लिया गया और डॉ. रेनर को फिर से प्रधानमंत्री चुन लिया गया। इस सरकार में सभी पार्टियों के नेताओं को शामिल किया गया था, जिनकी विचारधारा नाजी विचारधारा के विरुद्ध थी। रूस ने इस सामयिक सरकार को मंजूरी दे दी। परंतु उसके इस कदम से अन्य मित्र राष्ट्रों को नाराजगी हुई। वे कभी यह नहीं चाहते थे कि ऑस्ट्रिया में किसी एक राष्ट्र का प्रभुत्व हो। जिस प्रकार जर्मनी को चारों मित्र राष्ट्रों के प्रभाव में रखने के लिए उसे चार भागों में बाँटा गया था, उसी प्रकार ऑस्ट्रिया को भी फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका और रूस के प्रभाव-क्षेत्र में बाँटा जाना तय था। अत: रूस के अतिरिक्त तीनों बड़े राष्ट्रों ने डॉ. रेनर की सरकार को स्वीकृति नहीं दी।

उधर डॉ. रेनर की सरकार ने अपना कार्य आरंभ कर दिया था। 1 मई, 1945 को ऑस्ट्रिया के पुराने लोकसत्तात्मक शासन-विधान में भारी फेर-बदल किए गए। नाजी शासन में लागू किए गए सभी कानूनों को रद्द कर दिया गया। बहुत से नाजी नेताओं की गिरफ्तारी हुई। उन पर आपराधिक मुकदमे चलाए गए। डॉ. रेनर ने देश में शांति-व्यवस्था एवं समता लाने के लिए प्रयास शुरू कर दिए। उन्होंने देश में सुचारु रूप से सरकार चलाने और सुव्यवस्थित शासन देने में बहुत हद तक सफलता भी प्राप्त की थी। नवंबर 1945 में संसद् के चुनाव कराए गए। इस चुनाव में नाजी पार्टी के भूतपूर्व सदस्यों को वोट देने का अधिकार नहीं दिया गया। इस तरह के लोगों की संख्या देश भर में लगभग 5.5 लाख थी। चुनाव शांतिपूर्वक संपन्न हुए। 165 सदस्यीय संसद् में जनता पार्टी के 84, सोशलिस्ट पार्टी के 76 और कम्युनिस्ट पार्टी के 5 सदस्य चुनकर आए। 1 सदस्य निर्दलीय भी निर्वाचित हुआ। अगले महीने नए मंत्रिमंडल का गठन हुआ, जिसमें जनता पार्टी के लियोपोल्ड फेगल प्रधानमंत्री बने और डॉ. रेनर को द्वितीय ऑस्ट्रियन रिपब्लिक का प्रथम राष्ट्रपति चुना गया। इस मंत्रिमंडल में 9 मंत्री जनता पार्टी से, 6 मंत्री

सोशलिस्ट पार्टी से एवं 1 मंत्री कम्युनिस्ट पार्टी से लिया गया। इसी बीच, जुलाई 1945 में पोट्सडम सम्मेलन में जर्मनी की नई शासन-व्यवस्था पर विचार किया जा रहा था, उसी वक्त ऑस्ट्रिया के प्रश्न पर भी विचार चल रहा था। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, रूस के रवैए से फ्रांस, अमेरिका और ब्रिटेन नाराज थे। उन्होंने रूस पर दबाव डाला कि ऑस्ट्रिया को भी चार भागों में बाँटा जाए। इसके साथ-साथ बर्लिन की तरह विएना को भी चार भागों में बाँटा जाए। आखिर सर्वसम्मत फैसले के बाद उत्तर-पूर्वी ऑस्ट्रिया रूस को दिया गया। दक्षिण-पूर्वी भाग, जहाँ इटली और यूगोस्लाविया की सीमा लगती थी, ब्रिटेन को दिया गया। दक्षिण-पश्चिमी ऑस्ट्रिया के जो प्रदेश स्विट्जरलैंड की सीमा से लगते थे, फ्रांस को दिए गए और उत्तर-पश्चिमी ऑस्ट्रिया को अमेरिका को सौंप दिया गया। ऑस्ट्रिया का कुल क्षेत्रफल 32,000 वर्ग मील था और आबादी केवल 70 लाख। परंतु मित्र राष्ट्रों ने मिलकर इस छोटे से राष्ट्र को भी चार भागों में खंडित कर दिया।

ऑस्ट्रिया के विभाजित चारों क्षेत्रों में सैन्य शासन के लिए हर क्षेत्र में एक-एक गवर्नर की नियुक्ति की गई। जर्मनी की तर्ज पर ऑस्ट्रिया के लिए भी एक 'अलाइड कमीशन' का गठन किया गया। इसके तीन प्रमुख अंग थे—अलाइड काउंसिल, कार्यकारिणी समिति और विशेषज्ञों की सभा। चारों गवर्नर अलाइड काउंसिल के थे। सभी निर्णय सर्वसम्मति से लिये जाते थे। किसी एक सदस्य की असहमति से निर्णय स्वीकृत नहीं हो पाता था। रूस के तीनों राष्ट्रों से मतभेद के कारण बहुत से महत्त्वपूर्ण निर्णय बीच में ही दम तोड़ देते थे। इस प्रकार, मित्र राष्ट्रों के नियंत्रण के बावजूद डॉ. रेनर और लियोपोल्ड फेगल के नेतृत्व में जो ऑस्ट्रियन सरकार स्थापित हुई थी, उसका देश की शासन-व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान था। फिर रूस के प्रभाव के कारण धीरे-धीरे वहाँ कम्युनिस्ट पार्टी का प्रभाव बढ़ता चला गया और बाद में वहाँ का शासन कम्युनिस्टों के
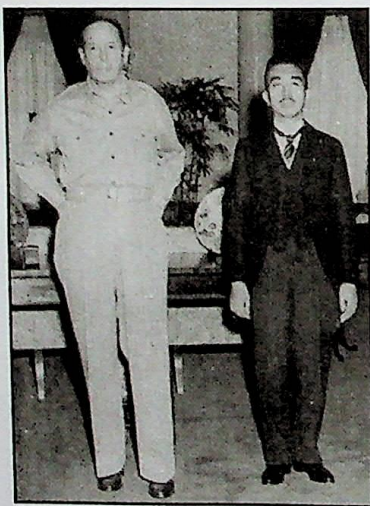
जनरल डगलस मैकआर्थर और जापानी सम्राट् हिरोहितो।

हाथ में चला गया। रूस वास्तव में ऑस्ट्रिया में अपनी सेनाएँ बनाए रखना चाहता था, ताकि ऑस्ट्रिया के मार्ग को सुरक्षित रखने के बहाने वह हंगरी और रूमानिया में अपनी सेनाएँ रख सके। बाद में, 1955 में रूस की नीति में अचानक परिवर्तन हुआ और 15 मई, 1955 को चारों मित्र राष्ट्रों और ऑस्ट्रियाई सरकार के बीच संधि हुई और उसे पूर्ण रूप से स्वतंत्र घोषित कर दिया गया।

जापान से संधि

याल्टा एवं पोट्सडम सम्मेलनों में सखालिन का दक्षिणी भाग रूस को लौटाने तथा जापान की सत्ता को चार बड़े द्वीपों एवं कुछ छोटे द्वीपों तक सीमित करने का निर्णय लिया गया था। इससे पूर्व सन् 1943 में काहिरा सम्मेलन में जापान को उसके हिंसात्मक तरीके से अधिकृत किए सभी क्षेत्रों से वंचित करने और कोरिया को स्वतंत्र देश घोषित करने का निर्णय लिया गया था। इसके अतिरिक्त जापान में सैन्यवादियों के उन्मूलन, युद्ध-अपराधियों को दंडित करने, युद्ध-सामग्री के उत्पादन की क्षमता नष्ट करने, क्षतिपूर्ति की वसूली, लोकतंत्रात्मक विचारधारा को प्रोत्साहन देने तथा शांतिवादी उत्तरदायी शासन-व्यवस्था स्थापित होने तक मित्र राष्ट्रों को बनाए रखने का निश्चय किया गया।

युद्ध में जापान की पराजय से पूर्व ही मित्र राष्ट्रों ने निश्चय कर लिया था कि उसके संबंध में किस प्रकार की नीति बनाई जाए। पोट्सडम सम्मेलन में यह भी निश्चय किया गया था कि जापान की सैन्य-शक्ति को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया जाएगा और अन्य देशों की तरह वहाँ भी लोकतंत्र की स्थापना की जाए कि भविष्य में वह फिर कभी साम्राज्य-विस्तार का प्रयत्न न करे, ऐसी व्यवस्था हो।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वाशिंगटन में 11 देशों का 'फॉर ईस्टर्न कमीशन' और टोकियो में मित्र राष्ट्रों की परिषद् का गठन किया गया। अगस्त 1945 में जापान ने बिना शर्त समर्पण कर दिया था, जिसके बाद वहाँ शासन-व्यवस्था स्थापित करने की योजना बनाई जाने लगी थी। जापान में तब सम्राट् का व्यवस्थित शासन विद्यमान था, इसलिए वहाँ की शासन-व्यवस्था का प्रश्न उतना कठिन नहीं था। वहाँ ऐसा कोई राजनीतिक दल नहीं था, जो सम्राट् के विरुद्ध राजनीति कर रहा हो। सो सम्राट् का शासन बना रहने दिया

गया और उस पर नियंत्रण के लिए स्थानीय सैन्य-शक्ति पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया गया। इस कार्य की जिम्मेदारी जनरल मैकआर्थर को सौंपी गई। जनरल डगलस मैकआर्थर 'मित्र राष्ट्रीय परिषद्' के अध्यक्ष थे और उन्हें अब एक महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गई थी। व्यावहारिक रूप से जापान पर केवल अमेरिका का नियंत्रण था, जिससे वहाँ की समस्या जर्मनी की तरह जटिल नहीं थी। जनरल मैकआर्थर को अपने कार्य में सहायता एवं सलाह देने के लिए मित्र राष्ट्रों की एक परिषद् बनाई गई, जिसे 'अलाइड काउंसिल ऑफ जापान' की संज्ञा दी गई। इस काउंसिल में अमेरिका सर्वोपरि था। इसके अतिरिक्त चीन का एक प्रतिनिधि था और ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड एवं भारत का सम्मिलित रूप से एक प्रतिनिधि इस काउंसिल का सदस्य था।

अलाइड काउंसिल ऑफ जापान का प्रधान कार्यालय जापान की राजधानी टोकियो में बनाया गया। इस काउंसिल द्वारा लिया गया निर्णय कोई जरूरी नहीं था कि मान ही लिया जाए। मुख्य रूप से इसका काम सलाह देना था और अंतिम निर्णय जनरल मैकआर्थर की स्वीकृति या अस्वीकृति पर निर्भर करता था। इस काउंसिल का पहला अधिवेशन 5 अप्रैल, 1946 को जापान की राजधानी एवं परिषद् के मुख्यालय टोकियो में हुआ।

मैकआर्थर ने जापान का विसैन्यीकरण किया और उसकी राजनीतिक व आर्थिक व्यवस्था को मित्र राष्ट्रों द्वारा घोषित सिद्धांतों के अनुरूप ढालने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की। मैकआर्थर का मुख्य कार्य जापान की सैन्य-शक्ति को बिलकुल कमजोर कर देना था। स्थानीय युद्ध और सैन्य विभागों को यह काम सौंपा गया। इस क्रम में 1 लाख जापानी सैनिकों को बरखास्त कर दिया गया। लाखों जापानी सैनिक प्रशांत महासागर के विभिन्न द्वीपों एवं अन्य विभिन्न प्रदेशों में फैले हुए थे, उन्हें वापस बुला लिया गया और सैनिक सेवा से अलग कर दिया गया। युद्धोपयोगी विभिन्न उपकरणों, जहाजों एवं अन्य विभिन्न हथियारों को या तो नष्ट कर दिया गया या आपस में बाँट लिया गया। जापानी सेना को सशक्त एवं शक्तिशाली बनानेवालों को राष्ट्रीय पदों से वंचित कर दिया गया। जापानी लोग स्वयं को ईश्वर का विशेष प्रतिनिधि मानते हुए दुनिया की अन्य जातियों की उपेक्षा करते थे। इन भावनाओं को समाप्त करने के लिए कई सुधार किए गए। बच्चों की पाठ्य-पुस्तकों से इस तरह की कहानियों, लेखों को निकाल दिया गया। स्वयं सम्राट् ने उद्घोषणा जारी कर सभी को समान अधिकार देने एवं किसी भी मत, जाति या धर्म के

अनुयायियों को विशेष स्थान देने की बात से इनकार करने की अपील की। ऐसी सभी सभा-समितियों को बरखास्त कर दिया गया, जिनका कार्य उग्र राष्ट्रीयता की भावना को हवा देना था।

अलाइड काउंसिल ऑफ जापान के अतिरिक्त एक अन्य समिति भी बनाई गई थी, जिसका उद्देश्य जापान संबंधी विषयों पर विचार करना था। इसे 'सुदूर पूर्व समिति' कहा गया। इस समिति का मुख्य कार्यालय वाशिंगटन में था। इसके सदस्य अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, चीन, फ्रांस, भारत, हॉलैंड, न्यूजीलैंड, फिलिपींस, रूस और ब्रिटेन थे।

इस समिति का मुख्य उद्देश्य इस बाबत विचार करना था कि जापान की अधीनता से मुक्त हुए विभिन्न प्रदेशों के लिए क्या व्यवस्था की जाए। इसके साथ-साथ जापान में बननेवाली नई सरकार की क्या रूप-रेखा हो? समिति के निर्णय बहुमत से पास होते थे; परंतु अमेरिका, चीन, रूस और ब्रिटेन की सहमति अनिवार्य थी। वस्तुत: जापान की संपूर्ण शासन-व्यवस्था जनरल मैकआर्थर के एकाधिकार में ही थी। अत: यह समिति अपने निर्णय पहले अमेरिकी सरकार को भेजती थी और वह उन्हें जनरल मैकआर्थर के पास भेज देती थी। किसी भी निर्णय की स्वीकृति पर अंतिम अधिकार मैकआर्थर को ही प्राप्त था।

अमेरिका और रूस के मतभेदों के कारण जापान के साथ संधि का कार्य सन् 1950 तक टलता रहा। उस समय तक चीन में साम्यवादी सरकार स्थापित हो चुकी थी और जून 1950 में दक्षिण कोरिया पर साम्यवादी आक्रमण आरंभ हो गया था, जिससे जापान के साथ जल्दी-से-जल्दी संधि करना आवश्यक हो गया था। इसलिए सितंबर 1950 में राष्ट्रपति ट्रूमैन ने अमेरिकी विदेश मंत्रालय को सुदूर पूर्व आयोग के परामर्श से संधि-प्रस्ताव तैयार करने के आदेश दिए। अमेरिकी सरकार की तरफ से सुदूर पूर्व समिति के सदस्य राष्ट्रों एवं कुछ अन्य राज्यों को एक ज्ञापन भेजा गया, जिसमें जापान के साथ प्रस्तावित संधि के मुख्य सिद्धांतों का उल्लेख था। रूसी सरकार ने अमेरिका द्वारा जापान से पृथक् संधि करने को चुनौती दी, परंतु अमेरिका पर उसका कोई असर नहीं पड़ा।

11 जनवरी, 1951 को अमेरिकी विदेश विभाग ने संधि को अविलंब मूर्त रूप देने के लिए जॉन फॉस्टर डलेस को सुदूर पूर्व समिति के पास विशेष आयोग बनाकर भेजा। जॉन डलेस ने जापान के विभिन्न राजनीतिक

दलों से संधि संबंधी वार्त्ता की। इसके अतिरिक्त फिलिपींस, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, फ्रांस और ब्रिटेन जाकर वहाँ की सरकारों से भी संधि संबंधी वार्त्ताएँ कीं। तत्पश्चात् 12 जुलाई को जापान के साथ प्रस्तावित संधि का प्रारूप लंदन और वाशिंगटन में प्रकाशित करवाया गया और संबंधित 51 राष्ट्रों को उसकी प्रतियाँ भेजी गईं। अमेरिकी सरकार ने सभी 51 राष्ट्रों को संधि पर हस्ताक्षर के लिए 4 सितंबर, 1951 को सैन फ्रांसिस्को में आयोजित सम्मेलन में आमंत्रित किया। संधि की शर्तों पर भारत ने आपत्ति जाहिर की थी; परंतु अमेरिका ने इसकी कोई परवाह नहीं की। बर्मा ने भी संधि के मसौदे को अस्वीकार कर दिया। आखिर भारत और बर्मा ने संयुक्त रूप से फैसला लेकर संधि-सम्मेलन में भाग लेने से इनकार कर दिया था। वहीं रूस और उसके समर्थित राष्ट्रों पोलैंड एवं चेकोस्लोवाकिया आदि राज्यों ने आमंत्रण स्वीकार कर लिया था, जिससे अमेरिका आश्चर्यचकित था।

परंतु 4 सितंबर को सम्मेलन आरंभ होने पर रूसी प्रतिनिधिमंडल के नेता आंद्रे ग्रोमिको ने प्रस्तावित संधि की आलोचना की और उसमें संशोधन की माँग की। इस माँग को सम्मेलन के अन्य सदस्यों ने स्वीकार नहीं किया। अंततः 8 सितंबर को सम्मेलन में 49 राज्यों के प्रतिनिधियों ने संधि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए।

❑

युद्धोत्तर शासन-व्यवस्था

''युद्ध एक घातक बीमारी है, पागलपन है, कारावास है।''

—मारथा गेलहॉर्न

विश्व युद्ध आरंभ होने के बाद जर्मन सेनाओं ने पूर्वी यूरोप के विभिन्न देशों पर अधिकार कर लिया था। इनमें पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, रूमानिया, ग्रीस इत्यादि देश हिटलर के अधीन थे और वहाँ हिटलर ने पूर्णत: नाजी व्यवस्था कायम कर रखी थी। परंतु युद्ध के अंत तक रूस का वर्चस्व स्पष्ट हो चुका था और रूसी सेनाओं ने इन देशों को अपने अधीन कर लिया था। इन देशों में पूर्व से ही कुछ नाजी-विरोधी तत्त्व स्वतंत्र देश की स्थापना करना चाहते थे, जिनमें कम्युनिस्ट प्रमुख थे। रूस ने जब इन्हें अपनी पूर्ण अधीनता से मुक्त किया तो वहाँ स्वतंत्र सरकारें बनीं। स्वाभाविक था कि वे सरकारें कम्युनिस्ट नीतियों को अपनाते हुए रूसी प्रभाव में निहित रहें।

युद्ध-समाप्ति के बाद इन छोटे-बड़े देशों में नई सरकारों का गठन किस प्रकार किया गया, आगे हम इस पर प्रकाश डालेंगे।

रूमानिया की शासन-व्यवस्था

रूसी सेना मार्च 1944 तक रूमानिया के अधिकांश हिस्सों पर कब्जा कर चुकी थी। रूस के बढ़ते कद को देखते हुए रूमानिया ने 23 अगस्त,

1944 को उससे संधि कर ली। इस संधि से पूर्व रूमानिया पर जनरल एंटोनिस्ट का शासन था। रूसी नियंत्रण के बाद वहाँ राष्ट्रीय सरकार का गठन किया गया। नवगठित सरकार ने मित्र राष्ट्रों की ओर से जर्मनी का विरोध किया। नवंबर 1946 में रूमानिया की संसद् के लिए नए चुनाव कराए गए। इस चुनाव में सबसे बड़ी संख्या में निर्वाचित होनेवाले सदस्य कम्युनिस्ट थे। कम्युनिस्टों के वर्चस्व को देखते हुए 30 दिसंबर, 1947 को रूमानिया के राजा माइकेल को गद्दी छोड़नी पड़ी। इस प्रकार रूमानिया में राजसत्ता का अंत और कम्युनिस्ट शासन का आरंभ हुआ। अप्रैल 1948 में कम्युनिस्ट सिद्धांतों से प्रेरित रूमानिया के नए संविधान का निर्माण हुआ। नए नियमों के तहत देश के सभी व्यवसायों पर सरकार का नियंत्रण हो गया, जिसे 11 जून, 1948 को सर्वसम्मति से नई संसद् में पारित कर दिया गया।

हंगरी की शासन-व्यवस्था

विश्व युद्ध के आरंभिक काल में ही हंगरी पर जर्मन सेनाओं ने कब्जा जमा लिया था, परंतु फरवरी 1945 में रूसी सेना ने जर्मन शासन का खात्मा कर निर्धारित किया कि 1 जनवरी, 1938 के समय उसकी जो सीमाएँ थीं, उन्हें पुनः स्थापित किया जाए। फरवरी 1946 में चुनी गई परिषद् ने यह निर्णय लिया कि हंगरी में रिपब्लिकन शासन-व्यवस्था कायम की जाए। 31 अगस्त, 1947 को हंगरी में नए संविधान के अनुरूप चुनाव करवाए गए, जिसमें कम्युनिस्टों व अन्य साम्यवादियों ने बढ़त हासिल की। अतः स्वाभाविक था कि हंगरी की राजनीति में भी कम्युनिस्टों का वर्चस्व कायम हो और फलतः वे यूरोप की राजनीति में रूस के साथ सोवियत संघ में शामिल हो गए।

मार्शल टीटो।

यूगोस्लाविया की शासन-व्यवस्था

29 नवंबर, 1945 को यूगोस्लाविया में मार्शल टीटो के नेतृत्व में रिपब्लिकन सरकार की स्थापना हुई। मार्शल टीटो भी कम्युनिस्ट विचारक नेता थे, जिन्होंने युद्ध के दौरान भी हिटलरशाही के खिलाफ संघर्ष जारी रखा था। नवनिर्मित यूगोस्लावियाई रिपब्लिकन सरकार के प्रधानमंत्री के पद पर मार्शल

टीटो को बैठाया गया। इस प्रकार यूगोस्लाविया भी सोवियत संघ में शामिल हो गया, पर थोड़े समय बाद ही टीटो से मतभेद के बाद यूगोस्लाविया सोवियत संघ से अलग हो गया।

पोलैंड की शासन-व्यवस्था

सितंबर 1939 में जहाँ एक ओर जर्मन सेना पोलैंड को नेस्तनाबूद करने को उतारू थी, वहीं दूसरी ओर रूस अपने निहित स्वार्थों के चलते उसके कुछ प्रदेशों पर कब्ज़ा जमाने में लगा हुआ था। युद्ध के दौरान पोलैंड पर तीन अलग-अलग सरकारें शासन कर रही थीं। इनमें पहली जर्मन-प्रभावित पोल (पोलैंडी) सरकार थी। दूसरी लंदन से संचालित हो रही थी, जिसके सदस्य वे थे, जिन्होंने हिटलर के भय से भागकर ब्रिटेन में शरण ले रखी थी और तीसरी सरकार रूसी सहायता से चल रही थी, जिसमें कम्युनिस्ट विचारक शामिल थे। युद्ध-समाप्ति के दौरान रूस ने ही पोलैंड को जर्मन सेनाओं से मुक्ति दिलाई थी और मार्च 1945 तक समूचा पोलैंड रूसी सेना के कब्जे में था। रूस ने जुलाई 1944 में ही पोल सरकार की घोषणा कर दी थी, जिसे 'लुबलिन सरकार' कहा गया। इसने वारसा पर 18 जनवरी, 1945 को कब्जा कर देश की सत्ता सँभाली। अन्य सोवियत प्रभावी देशों की तरह जनवरी 1947 में पोलैंड में हुए संसदीय चुनावों में भी कम्युनिस्टों का बोलबाला रहा। पोलैंड के राष्ट्रपति के रूप में बोलस्लो वैरुत तथा साइरैंकिविज प्रधानमंत्री बने।

युद्ध की शुरुआत में ही जर्मनी ने पोलैंड को अत्यधिक क्षति पहुँचाई थी, जिसकी क्षतिपूर्ति-स्वरूप पोलैंड की सीमाओं में अत्यधिक इजाफा किया गया। पूर्वी जर्मनी का काफी बड़ा हिस्सा, जिसके अंतर्गत प्रशिया और साइलीशिया के कई क्षेत्र शामिल थे, पोलैंड को दे दिए गए। इन प्रदेशों में बसे लगभग 50 लाख जर्मनों को बेघर होना पड़ा और वहाँ पोलवासियों को बसा दिया गया। बेघर हुए इन लोगों को जर्मनी के पश्चिमी हिस्से में जाकर बसना पड़ा, क्योंकि प्रशिया एवं साइलीशिया के कई प्रदेशों पर पोलैंड का कब्जा हो चुका था। जर्मन सेना ने समुद्र तक पहुँचने के लिए जिस गलियारे के लिए पोलैंड को तबाह किया था, अब पोलैंड को उसकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उसकी सीमाएँ समुद्र तट तक कायम हो चुकी थीं।

चेकोस्लोवाकिया की शासन-व्यवस्था

युद्ध के दौरान डॉ. एडवर्ड बेनस के नेतृत्व में आजाद चेक सरकार का गठन किया जा चुका था। भले ही उन्हें युद्ध के दौरान देश छोड़कर भागना पड़ा, परंतु अपने देश की स्वतंत्रता के लिए वे सतत प्रयासरत थे। अंततः चेकोस्लोवाकिया को सन् 1944 में जर्मन आततायियों से मुक्ति मिल गई। ये चेक देशभक्त 10 मई, 1945 को प्राग वापस आ गए और चेक सत्ता की बागडोर सँभाल ली। यहाँ नए संविधान के लिए 26 मई, 1946 को आम चुनाव कराए गए। इस चुनाव में कई छोटे-छोटे दल चुने गए, परंतु किसी के पास सरकार बनाने के लिए पूर्ण बहुमत नहीं था। इनमें भी सबसे बड़े दल के रूप में कम्युनिस्ट उभरे थे। बाद के दिनों में कम्युनिस्ट तेजी से उभरे और 25 फरवरी, 1948 को अपनी सरकार का गठन किया। इसमें क्लिमेंट गटवाल्ड को प्रधानमंत्री की गद्दी सौंपी गई। चेक गणराज्य की इस नई शासन-व्यवस्था में संसद् सदस्यों की कुल संख्या 300 थी, जिसमें 144 कम्युनिस्ट थे।

चेकोस्लोवाकिया में कम्युनिस्ट शासन-व्यवस्था से ब्रिटेन, अमेरिका आदि लोकतांत्रिक सरकारों में काफी रोष व्याप्त था, क्योंकि वहाँ इस शासन का मतलब था उस पर रूस का प्रभाव। चेक कम्युनिस्ट सरकार ने न सिर्फ शासन-व्यवस्था तक अपना अधिकार सीमित रखा, बल्कि सामाजिक व आर्थिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी पैठ बनाने में कामयाबी हासिल की। चेक सरकार के मंत्रिमंडल में विदेश मंत्री का पद चेक गणराज्य के संस्थापक मैसरिक के पुत्र डॉ. मैसरिक को सौंपा गया था। ब्रिटेन एवं अमेरिका के कम्युनिस्ट विरोध् के चलते चेकोस्लोवाकिया के लिए अंतरराष्ट्रीय संबंधों में अत्यधिक कठिनाइयाँ पेश आ रही थीं, जिनसे पार पाना डॉ. मैसरिक के लिए परेशानी का सबब बनता जा रहा था। अंततः इन उलझनों में वे इस कदर फँस गए कि 1 मार्च, 1948 को उन्होंने आत्महत्या कर ली। चेक सरकार में डॉ. मैसरिक एकमात्र ऐसे सदस्य थे, जो कम्युनिस्ट न होते हुए भी सत्ता पर काबिज थे। उनकी मृत्यु के बाद चेकोस्लोवाकिया पूरी तरह से रूसी खेमों में जा मिला। देश में हो रही इस राजनीति से राष्ट्रपति डॉ. एडवर्ड बेनस भी खुश नहीं थे; परंतु वे यह कहते हुए अपने पद पर बने रहे कि जब देश का जनमत ही कम्युनिस्टों के साथ है तो इस सरकार का बने रहना सही है। इसी दौरान मार्शल योजना के तहत देश को अमेरिका से

मिलनेवाली सहायता से विमुख होना पड़ा, क्योंकि वह रूस-प्रभावित खेमों में शामिल हो चुका था।

बेनस की सरकार काफी समय तक शासन-व्यवस्था नहीं चला पाई और 30 मई, 1948 को पुनः चुनाव कराए गए। इसमें निर्वाचित सदस्यों में कम्युनिस्टों की संख्या 82 प्रतिशत थी। 7 जून, 1948 को डॉ. एडवर्ड बेनस ने राष्ट्रपति पद से त्यागपत्र दे दिया। उनके स्थान पर कम्युनिस्ट नेता गटवाल्ड को राष्ट्रपति की कुरसी मिली और प्रधानमंत्री की कुरसी मिली जैपोटोकी को।

ग्रीस की शासन-व्यवस्था

विश्व युद्ध के दौरान जब जर्मन सेना ने ग्रीस पर कब्जा किया तो वहाँ के तत्कालीन राजा ने भागकर ब्रिटेन में शरण ले ली। युद्ध समाप्ति के बाद जब ग्रीस आजाद हुआ तो वहाँ की शासन-व्यवस्था सामयिक रूप से एथेंस के आर्क विशप को सौंप दी गई। 1 सितंबर, 1946 को लोकमत द्वारा यह निर्णय लिया गया कि ग्रीस में राजसत्ता की व्यवस्था ही पुनः लागू की जानी चाहिए। अतः ब्रिटेन में प्रवास कर रहे राजा जॉर्ज द्वितीय 23 सितंबर, 1946 को ग्रीस वापस आ गए और सत्ता सँभाल ली; परंतु वे काफी समय तक राज नहीं कर सके। 1 अप्रैल, 1947 को उनकी मृत्यु हो गई। अब ग्रीस के सिंहासऩ पर पॉल प्रथम को बिठाया गया। 31 मार्च, 1947 को ग्रीस में संसदीय चुनाव कराए गए। इसमें निर्वाचित बहुसंख्यक दल कम्युनिस्ट-विरोधी था, परंतु कम्युनिस्टों की तादाद भी कम नहीं थी। विश्व युद्ध के दौरान कम्युनिस्टों ने नाजी सेना के विरुद्ध अपना संघर्ष जारी रखते हुए आजाद ग्रीक सरकार की स्थापना कर रखी थी। ग्रीस में राजसत्ता की वापसी से इनमें काफी असंतोष था। आखिर उन्होंने वहाँ के राजा एवं उसके मंत्रिमंडल के खिलाफ विद्रोह कर दिया। कम्युनिस्ट नेता जनरल मार्कस ने 14 सितंबर, 1949 को आजाद ग्रीक सरकार की स्थापना कर ली। कम्युनिस्ट वहाँ से राजसत्ता को हटाकर साम्यवादी सिद्धांतों पर आधारित रिपब्लिकन सरकार की स्थापना करना चाहते थे। उनका संघर्ष आज भी जारी है, परंतु ब्रिटेन एवं अमेरिकी हस्तक्षेप से ग्रीस को अब तक कम्युनिस्ट प्रभाव से वंचित रखा गया है।

बुल्गारिया की शासन-व्यवस्था

विश्व युद्ध में बुल्गारिया जर्मनी के साथ था। इसी दौरान वहाँ कम्युनिस्ट विद्रोहियों ने पैर पसारने आरंभ कर दिए। रूसी सेना ने जब बुल्गारिया पर हमला किया तो इन विद्रोहियों ने उसका भरपूर साथ दिया। परिणामस्वरूप अक्तूबर, 1944 तक बुल्गारिया पर रूस का कब्जा हो चुका था। रूसी प्रभाव में बनी वहाँ की नई सरकार में कम्युनिस्टों का वर्चस्व था। इस सरकार ने मित्र राष्ट्रों के साथ जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। युद्ध-समाप्ति के बाद लोकमत द्वारा यह तय किया गया कि बुल्गारियाई राजसत्ता को सदैव के लिए समाप्त कर साम्यवादी रिपब्लिक की स्थापना की जाए। 27 अक्तूबर, 1946 को नए संविधान के तहत चुनाव कराए गए। नए संविधान के अनुसार संसद् में कुल 465 सदस्य थे। इनमें 277 कम्युनिस्ट निर्वाचित होकर आए थे। कम्युनिस्ट नेता ज्याजे दिमित्रोव ने नए मंत्रिमंडल का गठन किया। धीरे-धीरे बुल्गारिया पर पूरी तरह कम्युनिस्ट सिद्धांतों का बोलबाला हो गया। 14 दिसंबर, 1947 को कानून बनाकर वहाँ के सभी कल-कारखानों एवं व्यवसायों को राज्याधीन कर दिया गया।

रूस की शासन-व्यवस्था

विश्व युद्ध की समाप्ति तक रूस नाजियों का अंत करनेवाला सबसे ताक़तवर देश बन गया था। उसने जर्मनी से आजाद हुए कई देशों को सोवियत संघ में शामिल कर लिया। ये देश लातीविया, लिथुआनिया, फिनलैंड का दक्षिण-पूर्वी प्रदेश, एस्टोनिया, पोलैंड और रूमानिया के सीमांत देश थे।
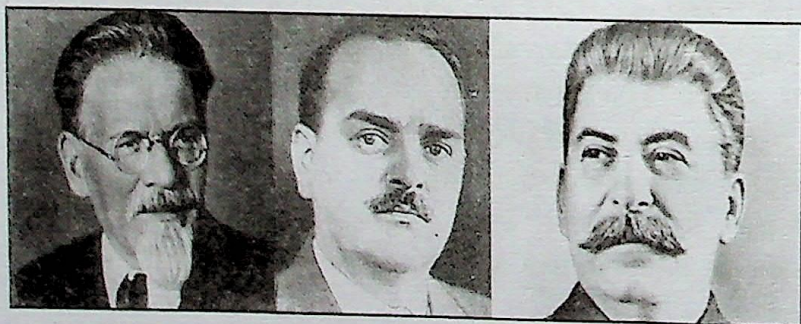
मिखाइल इवानोविच कॉलिनिन, निकोल श्वेरनिक और जोसफ स्टालिन।

इनमें सोवियत रूस ने स्वतंत्र रिपब्लिक बनाकर उन्हें सोवियत संघ में सम्मिलित किया। इसका सीधा प्रभाव रूस पर पड़ा। उसकी आबादी 2 करोड़ अधिक हुई और नए देशों के साथ 10 लाख वर्गमील क्षेत्रफल की वृद्धि हुई। इन नए राज्यों के साथ-साथ रूस ने पूर्वी यूरोप के कई देशों को साम्यवादी सिद्धांतों के तहत अपने खेमे में ला खड़ा किया। ये देश थे–यूगोस्लाविया, फिनलैंड, रूमानिया, बुल्गारिया, जर्मनी व ऑस्ट्रिया के विभिन्न प्रदेश, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया और हंगरी आदि। ये नए प्रदेश रूस को उसकी अंतरराष्ट्रीय राजनीति में पूर्ण सहायता देने लगे, जिससे उसकी ताकत काफी बढ़ गई।

12 फरवरी, 1946 को रूस में आम चुनाव हुए। उस समय सोवियत रूस के कुल मतदाताओं की संख्या 10,17,17,686 थी, जिनमें से केवल 2,66,750 मतदाताओं ने ही मतदान में हिस्सा नहीं लिया; बाकी 10,14,50,936 मतदाताओं ने मतदान में हिस्सा लिया। इनमें कम्युनिस्ट दल के उम्मीदवारों को अभूतपूर्व 99.18 प्रतिशत मत मिले। कम्युनिस्टों के विरोध में मतदान करनेवालों की कुल संख्या 8,18,955 रही। रूस में नई कम्युनिस्ट सरकार का गठन हुआ और राष्ट्रपति मिखाइल इवानोविच कॉलिनिन के स्थान पर 19 मार्च, 1946 को नए राष्ट्रपति के रूप में निकोल श्वेरनिक की नियुक्ति हुई; परंतु प्रधानमंत्री की कुरसी पर स्टालिन जमे रहे।

❑

यहूदियों का दुश्मन हिटलर

"हम इसलिए लड़ते हैं, ताकि शांति से रह सकें।"

—अरस्तु

हिटलर का मानना था कि प्रथम विश्व युद्ध में जर्मनी की हार और उसकी बरबादी का मूल कारण यहूदी थे। यहूदियों का अपना कोई देश नहीं था। वे अलग-अलग यूरोपीय देशों में निवास करते थे। हिटलर मानता था कि प्रथम विश्व युद्ध जर्मनी हार गया, क्योंकि यहूदियों ने देश में रहते हुए देश से नमकहरामी की। सर्वोच्च पदों पर काबिज होकर काफी धन जमा किया, परंतु युद्ध के समय सरकार से पल्ला झाड़ लिया। उधर, युद्ध में खाद्यान्न की कमी थी, उस वक्त वे देश के बड़े-बड़े भंडारों पर कब्जा जमाकर बैठ गए, कालाबाजारी की। जिस समय युद्ध चरम पर था, उसी समय यहूदी व्यापारी और उद्योगपतियों ने जर्मन सेना को बारूद की सप्लाई रोक दी। परिणाम यह हुआ कि हथियारों की कमी की वजह से जर्मनी युद्ध हार गया और मित्र राष्ट्रों ने उसके ऊपर युद्ध की पूरी जिम्मेदारी थोपते हुए उसे शक्ति-विहीन कर दिया। प्रथम विश्व युद्ध हारने के उपरांत मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी पर पूरी तरह अंकुश लगा दिया। युद्धोपरांत बनी जर्मन सरकार भी ब्रिटेन व फ्रांस समर्थकों को सौंप दी गई। यहूदियों की संख्या इस सरकार में काफी अधिक थी। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान हिटलर जर्मन सेना का एक साधारण सैनिक मात्र था। उसने यहूदियों द्वारा जर्मनी को बरबाद होते देखा,
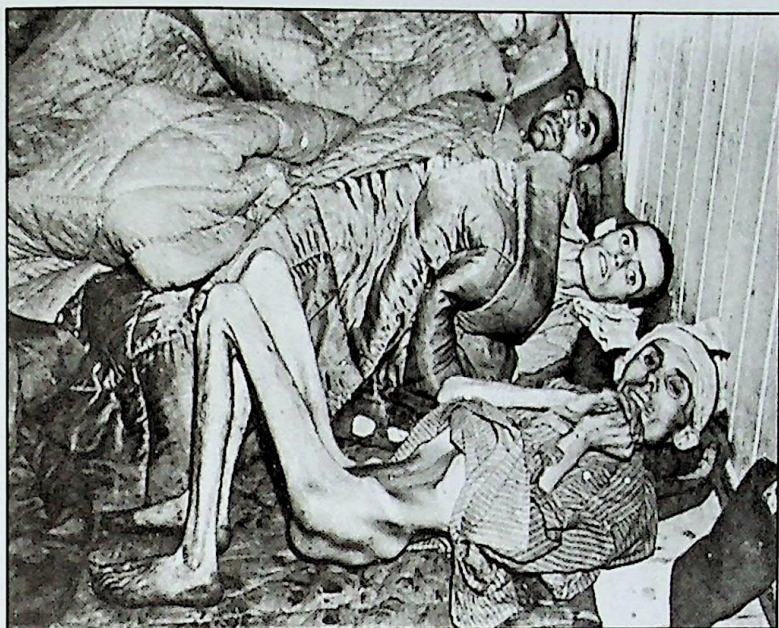
वूबेलिन (जर्मनी) यातना शिविर : यहाँ कैदियों को भूखा रखकर मृत्यु-पर्यंत काम कराया जाता था।

जिस कारण वह यहूदियों से बेहद घृणा करता था।

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के दो दशक बाद जब हिटलर जर्मन सेनाओं का सुप्रीम कमांडर बना, जर्मनी की सत्ता उसके हाथों में आई तो उसने सर्वप्रथम यहूदियों को धरती से विनष्ट करने की ठान ली।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान यहूदी हिटलर के निशाने पर थे। जर्मन सरकार व अन्य किसी भी उद्योग में यहूदियों को ऊँचे पद पर काबिज नहीं रहने दिया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हिटलर जिन देशों को अपने अधीन करता, उनके समक्ष यह शर्त अवश्य रखता था कि वहाँ के सारे यहूदियों को गिरफ्तार कर जर्मन सेना के हवाले कर दिया जाए, जिससे जर्मन सेना के पास कई लाख यहूदी बंदी जमा हो गए, जिन्हें विशेष शिविरों में रखा जाता था।

इन विशेष शिविरों के निर्माण की पहली सोच गोयरिंग के दिमाग में आई थी। इस प्रकार के 1,000 यातनागृहों का निर्माण जर्मनी व उसके अधीनस्थ देशों में किया गया था। इसमें सैनिक युद्धबंदियों के शिविरों की

संख्या शामिल नहीं थी। सन् 1936 में जब हिमलर एस.एस. वाहिनी तथा पुलिस विभाग का प्रधान बना तो उसे अधिकतम शक्तियाँ प्राप्त थीं। उसने ही इन असैनिक शिविरों को बनाने में प्रमुख भूमिका निभाई। 22 अगस्त, 1939 को जर्मन सेना के उच्चाधिकारियों को संबोधित करते हुए हिटलर ने उन्हें क्रूरता से ही विजय हासिल होने की बात कही। हिटलर ने उन्हें साफ निर्देश दिए कि नाजी नीति के खिलाफ जो भी जाए, उसे मार गिराया जाए, चाहे वह स्त्री हो या बच्चा। इसी में जर्मनी का भला है। इस योजना को पूर्ण करने के लिए कई बंदी शिविरों की स्थापना पोलैंड में की गई, जो कि मौत का एक भयंकर घर था। पोलैंड को यूरोप के यहूदियों को मौत के घाट उतारने का प्रमुख केंद्र बनाया गया। पोलैंड स्थित इन शिविरों में पूरे यूरोप के बंदियों को लाया जाता था और उन्हें दो भागों में बाँट दिया जाता। एक ओर बूढ़े एवं
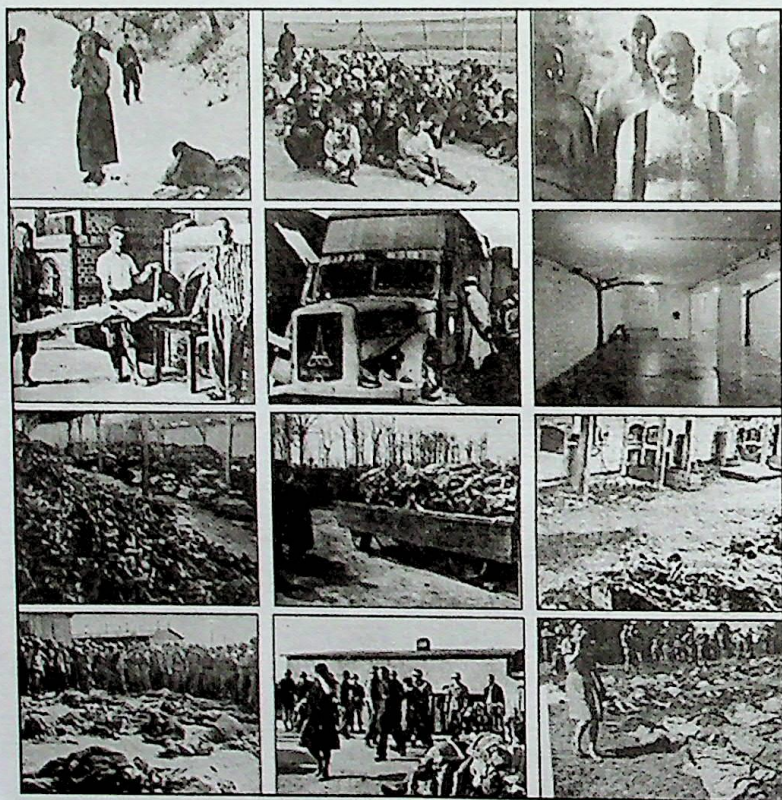
नाजी क्रूरता के कुछ खौफनाक दृश्य।

पोलैंड का आस्विच यातना शिविर : यहाँ लाखों यहूदियों को क्रूरतापूर्वक मारा गया।

बच्चों को रखा जाता था तो दूसरी ओर काम आने लायक औरतों और पुरुषों को। बीमार बूढ़ों को गैस चेंबर में डालकर मार दिया जाता था। बाकी बचे स्त्री-पुरुषों को नंगा कर सिर मुँड़वा दिया जाता। उन स्त्री-पुरुषों को नंगा कर स्नान कराया जाता, उन्हें रोगाणु-मुक्त कराने के नाम पर। उनमें से हरेक स्वस्थ बंदी से 18-20 घंटों तक काम करवाया जाता था और भोजन नाम मात्र को दिया जाता था। थोड़े ही दिनों में वे कुपोषण से लाचार हो मौत का इंतजार करने पर मजबूर हो जाते थे।

इन शिविरों को दो भागों में बाँटा गया था। पहले को लेबर शिविर व दूसरे को मौत का शिविर कहा जाता था। मौत के शिविर में अलग-अलग तरीके अपनाकर बंदियों को मौत दी जाती थी। विषैली गैसों के अलावा कई को भट्ठी में जलाया जाता था। इन बंदियों के शरीर पर जर्मन वैज्ञानिक तरह-तरह की दवाइयों का प्रयोग करते थे तथा घायल जर्मन सैनिकों के लिए उनके खून का भी प्रयोग करते थे।

इन युद्धबंदियों को रखने एवं निपटारे के लिए सिर्फ पोलैंड में चार बड़े बंदी शिविर मौजूद थे, जो कि आस्विच बर्केनाऊ, मौज डॉनिक, स्टार्ट टॉफ एवं ग्रॉश रोजेन थे। इन सभी बड़े शिविरों की कई छोटी-छोटी शाखाएँ समूचे

पोलैंड में थीं। इन शिविरों के चारों ओर बिजलीवाली काँटेदार तारों के तीन घेरे डाले गए थे, जिनमें से दो में 24 घंटे करंट प्रवाहित होता रहता था। इन शिविरों में लुबनिन प्रदेश के दो शिविर ओजनान तथा चेल्मनो और वारसा के पास ट्रेवलिंको केवल यहूदियों के लिए आरक्षित शिविर था। चेलमनो शिविर और शिविरों की तुलना में सबसे छोटा था। नाजी सेना ने सिर्फ चेल्मनों में 3 लाख 60 हजार यहूदियों को मौत के घाट उतारा और ट्रेवलिंको शिविर में 7 लाख 50 हजार यहूदियों को। नाजी अत्याचारों से तंग आकर कई बार बंदियों ने विद्रोह भी किए। परंतु वे कामयाब नहीं हुए। विद्रोह का परिणाम यह हुआ कि लाखों बंदियों को समय से पहले ही मौत की नींद सुला दिया गया। जिन अधीनस्थ देशों के इलाकों में यहूदी नागरिकों की संख्या अधिक होती, उसे दूसरे इलाकों से अलग कर दिया जाता, जिसे 'घेटो' के नाम से जाना जाता था। इन घेटो के नागरिकों को कई बार आग लगाकर या अन्य तरीके अपनाकर मौत के घाट उतार दिया जाता था। वर्ष 1941 में केवल वारसा घेटो में ही 5 लाख 90 हजार यहूदियों को मार डाला गया था।

द्वितीय विश्व युद्ध में 6 वर्षों के अंदर नाजी सेना ने करोड़ों लोगों को मार गिराया, जिसके सही आँकड़े मिलना असंभव है। अकेले पोलैंड में युद्ध

गैस चेंबर।
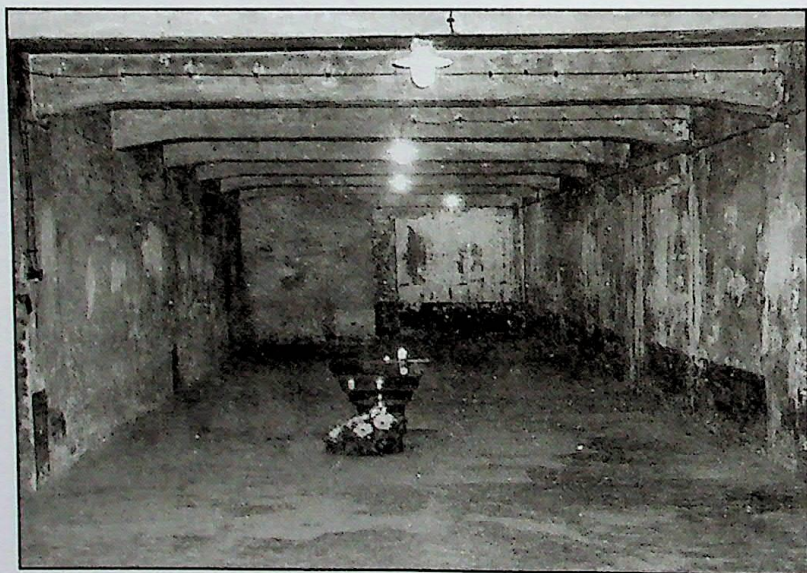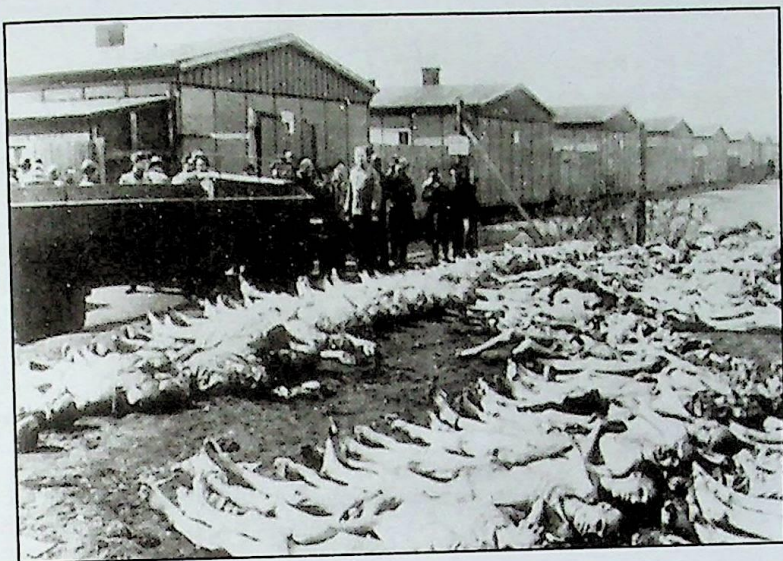
मौत का दूसरा नाम जर्मनी का दचाऊ यातना शिविर : इतिहास का क्रूरतम नर-संहार यहीं हुआ था।

के दौरान 60 लाख 28 हजार नागरिकों को मारा गया, जिनमें सैनिकों की संख्या मात्र 6 लाख 44 हजार थी, बाकी आम नागरिक ही थे। पोलैंड के कुल 32 लाख यहूदियों को मार डाला गया और 24 लाख 60 हजार को जर्मन दास बनाया गया। केवल आस्विच में 40 लाख लोगों को मारा गया था। नाजी सेना ने कम उम्र की लड़कियों से उनके माँ-बाप के सामने बलात्कार किया। बच्चों को गड्ढों में डालकर चूना एवं मिट्टी से ढककर उनकी जान ली जा रही थी। मरनेवाले कुल यहूदियों में 16 वर्ष से कम उम्र के 12 लाख बच्चे थे।

विएना में यहूदियों की संख्या 1 लाख 66 हजार थी, जिनमें से 1 लाख यहूदी युद्ध प्रारंभ होते ही भाग गए। बचे हुए 66 हजार को पकड़कर इन शिविरों में भेज दिया गया। वर्ष 1944 तक 14 लाख यहूदियों की हत्या इन शिविरों में कर दी गई थी। विभिन्न शिविरों में बंदी यहूदियों की संख्या 35 लाख तक पहुँच चुकी थी।

यहूदियों का सर्वनाश

हिटलर ने यहूदियों के नाश के लिए विभिन्न तरीके अपनाए। उसकी

यहूदियों के प्रति घृणा इस कदर गहरी थी कि वह किसी भी तरह से जल्द-से-जल्द समूची धरती से इनकी जाति को नष्ट कर देना चाहता था। नाजी सेना में भी यहूदियों के प्रति वही रोष दिखता था। यहूदियों के समूल नाश के संकल्प का ही नतीजा था कि मात्र दो दिनों के भीतर ही 30 हजार यहूदियों की नाजी फौजों ने हत्या कर डाली। 28-29 सितंबर, 1941 को पोलैंड एवं रूस में यहूदियों के नाश के लिए विशेष नाजी सैनिक टुकड़ियों को भेजा गया, जो रूस में आगे बढ़ रही जर्मन फौज के ठीक पीछे चल रही थीं। जर्मन सेना जितने भी यहूदियों को रास्ते में पकड़कर बंदी बनाती, ये विशेष टुकड़ियाँ उन्हें अपने कब्जे में कर लेतीं और जब इन बंदियों की संख्या काफी अधिक हो जाती, जिससे इनके भोजन इत्यादि की व्यवस्था में कठिनाई होने लगती तो कमजोर, बीमार और अक्षम यहूदियों की हत्या कर दी जाती।

नाजी सेना को बंदी यहूदियों की हत्या की एक नई तरकीब सूझी, जिसके तहत उन्होंने कुछ विशेष गाड़ियाँ बनाईं। 8 दिसंबर, 1941 को नाजियों
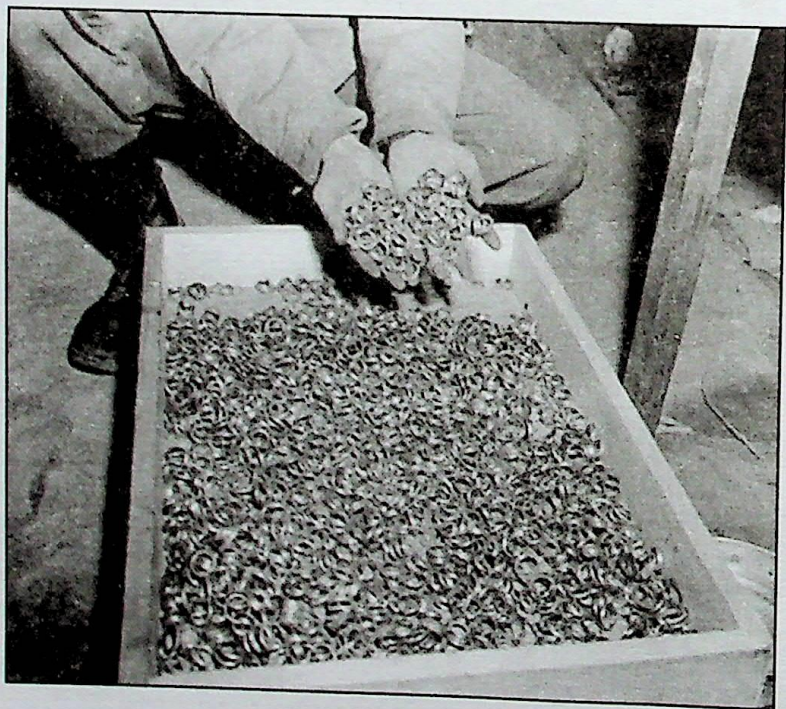
मृत कैदियों की सोने-चाँदी की अँगूठियाँ।

बुचरवाल्ड यातनागृह में अंतिम समाधान हेतु यहूदियों के शवों का ढेर।

ने ऐसी 20 गाड़ियाँ तैयार कीं, जिनमें लगभग 60 लोगों को भरा जा सके। इन गाड़ियों में स्त्रियों, बच्चों व पुरुषों को एक साथ भर दिया जाता और इनके सारे दरवाजे एवं खिड़कियों को बंद कर दिया जाता। इसके उपरांत गाड़ियों में कार्बन मोनोक्साइड जैसी जहरीली गैस भर दी जाती, जिससे कुछ ही मिनटों में गाड़ियों में बंद यहूदियों के प्राण-पखेरू उड़ जाते। केवल इस युक्ति से जर्मन सेना ने 7 लाख यहूदियों की हत्या की। नाजी सेना का कहर यहूदियों पर इस कदर टूटा कि केवल पोलैंड में 2 लाख 23 हजार यहूदी निवास करते थे, परंतु युद्ध समाप्ति के बाद वहाँ 1 भी यहूदी जीवित नहीं बच सका। केवल घेटो में 6 हजार यहूदी बचे पाए गए। नाजी सेना का मानना था कि युद्धबंदियों की निरंतर बढ़ रही संख्या से वे युद्ध में रुकावट पैदा कर सकते थे इसलिए उनका निपटारा आवश्यक था। जर्मनी के पास जनवरी 1942 तक रूस में कैदियों की संख्या काफी अधिक हो चुकी थी, जिसे सँभाल पाना जर्मन सेना के लिए मुश्किल हो रहा था, जिसे ध्यान में रखते हुए हिटलर ने आदेश दिया कि रोजाना 6 हजार बंदियों की हत्या कर दी जाए। इसके बाद

तो पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, नीदरलैंड, बेल्जियम तथा यूगोस्लाविया इत्यादि जर्मन आधिपत्यवाले देशों से गाड़ियों में ठूँस-ठूँसकर बंदियों को लाया जाता और उनकी हत्या के लिए बने विशेष शिविरों में भेज दिया जाता, जहाँ उन्हें जहरीली गैस अथवा जहर देकर मार दिया जाता। हत्या के क्रम में ही एक बार 20 हजार बंदियों को केवल जहर देकर मारा गया और उनकी लाशों को आस्विच में जला दिया गया, जिसके बाद आस्विच विश्व की सबसे बड़ी कब्रगाह बनकर रह गया। माना जाता है कि जर्मन सैनिकों ने जितनी हत्याएँ कीं, उसका एक-चौथाई हिस्सा यहीं के शिविरों में घटित हुआ।

यहूदियों की हत्या करने में जनरल रीन हार्ड हीड्रिच की प्रमुख भूमिका रही। केवल हीड्रिच ने 2 लाख यहूदियों की हत्या करवाई, जिस पर उसे नाज था। उसका मानना था कि यूरोप में यहूदियों के लिए कोई जगह नहीं है। यह बात उसने जनवरी 1942 में बर्लिन में वारसा सम्मेलन में कही थी। परंतु वह इस हत्या के क्रम को अधिक दिनों तक कायम नहीं कर सका। हिड्रीच की कुछ चेकोस्लोवाकियाई एजेंटों ने बहुत ही बेरहमी से पिटाई कर दी, जिससे उसके सारे शरीर में जहर फैल गया और कुछ ही दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गई। अपने जनरल की हत्या से हिटलर काफी क्रोधित हुआ। उसने सेना को
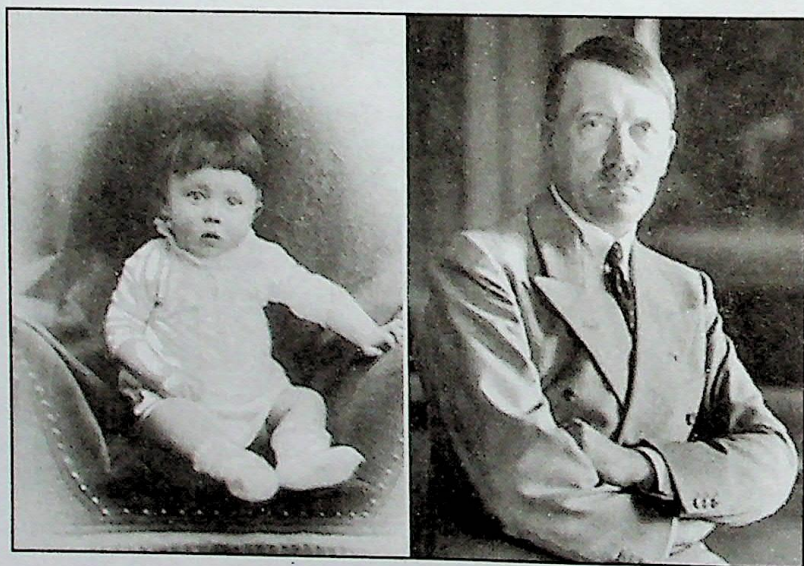
हिटलर : सुकोमल बचपन का उग्र यौवन।

आदेश दिया कि चेक गाँव को ध्वस्त कर दिया जाए और उसके प्रत्येक नागरिक को बच्चों सहित जहर देकर मार दिया जाए। हिटलर के आदेशानुसार चेक गाँव को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया गया और वहाँ के नागरिकों को जहर देकर मार दिया गया। हीड्रिच हत्याकांड के बाद 3 हजार लोगों को पकड़ा गया, जिनमें से 2 हजार की हत्या पूछताछ के वक्त ही कर दी गई। 10 जून, 1942 को 3 लाख से अधिक आबादीवाले एवं 10 किलोमीटर में फैले इस गाँव को घेर लिया गया, तत्पश्चात् सभी लोगों को मार गिराया गया।

❑

युद्ध-अपराधियों को दंड

''युद्ध के समय सबसे बड़ा देशभक्त सबसे बड़ा मुनाफाखोर होता है।''

—ऑगस्ट बेबेल

मित्र राष्ट्रों ने इस महाविनाशक युद्ध के लिए जर्मनी को जिम्मेदार ठहराया। युद्ध-समाप्ति के बाद अपराधियों को दंड देने के लिए उन पर मुकदमे चलाने की माँग की जाने लगी। मित्र राष्ट्रों ने युद्ध के चरमोत्कर्ष के दौरान बार-बार अपील की थी कि युद्धबंदियों एवं आम नागरिकों के साथ अमानवीय बरताव न किया जाए या किसी प्रकार से उन्हें सताया न जाए। ऐसे अपराधों को क्षमा नहीं किया जाएगा।

30 मई, 1945 को ब्रिटिश न्यायालय में संयुक्त राष्ट्र संघ के युद्ध अपराध आयोग के अध्यक्ष लॉर्ड राइट के नेतृत्व में एक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस और रूस के मध्य इन अपराधियों पर विचार के लिए समझौता हुआ। इस समझौते में यह तय किया गया कि सिद्ध अपराधियों को मृत्युदंड की सजा दी जाएगी। युद्ध के दोषियों को सजा देने की ऐसी व्यवस्था पहली बार की गई थी।

युद्ध के अंतिम समय में मित्र पक्षों के बीच काफी मतभेद उभरकर सामने आए, जिस कारण वे विभिन्न बिंदुओं पर एक मत नहीं हो पा रहे थे। परंतु इन युद्ध-अपराधियों को सजा देने के प्रश्न पर सभी एकमत थे। चारों

महाशक्तियों के मध्य 8 अगस्त, 1945 को हुए एक समझौते के तहत अंतरराष्ट्रीय संघ के 19 सदस्य देशों ने अपने हस्ताक्षर किए। ज्ञात हो कि न्यूरेम्बर्ग वह जगह थी, जहाँ नाजी नेता विशाल जनसभाओं को आयोजित कर आम नागरिकों को उत्तेजित किया करते थे। उन्हीं नाजी नेताओं का अंत देखने लाखों की संख्या में लोग इस ऐतिहासिक स्थल पर मौजूद हुए। नाजी नेताओं पर जिस तरह के अभियोग लगाए गए, उन्हें चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—पहले भाग के अनुसार, युद्ध के लिए साजिश करने का जुर्म; दूसरा, युद्ध के दौरान ऐसे अपराध करना, जो अंतरराष्ट्रीय कानून के विरुद्ध हो; तीसरा, शांति-व्यवस्था को बिगाड़ने का आरोप एवं चौथा अभियोगी मानव-समाज और मानवता का दोषी हो।

20 नवंबर, 1945 की सुबह 10 बजे इस न्यायालय का गठन किया गया। जिसमें 4 जज एवं 4 वैकल्पिक न्यायाधीश शामिल किए गए। ब्रिटेन के जॉर्ज लॉर्ड जस्टिस जियोफ्रेलोरेंस को सभापति व तीन अन्य सदस्य अमेरिका के मिस्टर फ्रांसिस विडल, फ्रांस के हेनरी डॉनेट व्यू डी वर्ब्स और सोवियत संघ के मेजर जनरल आई.टी. निकिताचेन्को थे। इनके अलावा 4 वैकल्पिक सदस्यों में सर विलियम नॉरमेन मार्केट, जॉर्ज जॉन जे. पार्कर, ली काउंसलर फेल्को एवं लेफ्टीनेंट कर्नल ए.एफ. भोलचोकॉफ थे।

18 अक्तूबर, 1945 को सैन्य न्यायालय में 24 हजार शब्दों का अभियोग दस्तावेज 6 जर्मन संगठनों एवं 24 सैनिक नेताओं के विरुद्ध पेश किया गया। वे दोषी नाजी संगठन थे—जर्मन सशस्त्र वाहिनी, जर्मन गुप्त मंत्रिमंडल, नाजी पार्टी के नेता तथा प्रशासक वर्ग, एस.एस. (अपराध नियंत्रण पुलिस), एस.ए. (स्टॉर्म ट्रूपर्स), गेस्तापो (गुप्तचर राज्य पुलिस)।

हिटलर के अलावा जिन 24 अभियुक्तों को युद्ध के लिए आरोपी ठहराया गया, उनके नाम थे—हेल्मेन विल हेल्म गोयरिंग, जेयाचिम फॉम रिबेन ट्रॉफ, अल्फ्रेड रोजेनबर्ग, विलहेल्म फ्रिक, जूलियस स्ट्रेचर, वॉल्टर फंक, रुडॉल्फ हेस, हेंस फ्रैंक, कॉन्स्टांटिन वॉन न्यूराथ, फ्रांज वॉन पेपन, अर्नेस्ट कॉलटेनब्रूनर, एच.एच. ग्रिले शैक्ट, फ्रिच साउकेल, बाल्दूर वॉन साइगरस, ऑर्थर सेईश इंकवार्ट, अल्बर्ट स्पीयर, हेंस फ्रित्ससे, फील्ड मार्शल विल्हेल्म कायटेल, जनरल अल्फ्रेड जॉडेल, एडमिरल एरिक रेडर, एडमिरल कार्ल ड्वेनिट्स, रॉबर्ट ले, गुस्तोव बोलहेन, मार्टिन बोरमेन।

आरोपियों के विरुद्ध ठोस सबूत होने के बावजूद न्यूरेम्बर्ग अदालत ने

उनमें से 21 अभियोगियों को बचाव के लिए 30 दिनों का समय दिया। इन सब में हिटलर का सचिव तथा एस.एस. प्रमुख मार्टिन बोरमेन अब तक गिरफ्तार नहीं किया जा सका था। बाद में बर्लिन में उसके मारे जाने की सूचना मिली और नाजी श्रमिक संगठन प्रमुख रॉबर्ट ले ने सुनवाई के दौरान आत्महत्या कर ली।

इन युद्धारोपियों के गुनाहों के काले कारनामों के दस्तावेज, फोटो, फिल्में व अन्य दस्तावेजों का विशाल ढेर था। इन्हें 20 ट्रकों में भरकर न्यायालय के समक्ष सबूत के तौर पर पेश किया गया, जो इन्हें अपराधी साबित करते थे। न्यूरेम्बर्ग की अदालत में इन आरोपियों के खिलाफ लंबी सुनवाई हुई। यह सुनवाई लगभग 11 महीने तक–20 नवंबर, 1945 से आरंभ होकर 1 अक्तूबर, 1946 तक–चली।

न्यायालय द्वारा मिले बचाव के समयांतराल में उन आरोपियों को अपनी बेगुनाही का कोई ठोस सबूत नहीं मिला और वे एक ही बात रटते रहे कि इस युद्ध का जिम्मेदार केवल हिटलर एवं उसकी तानाशाही प्रवृत्तियाँ रहीं। उनके इस प्रकार हिटलर पर दोष मढ़ने की पुरजोर कोशिशों को नामंजूर कर दिया गया। इन अपराधियों के विरुद्ध हैवानियत और इनसानियत को शर्मसार करनेवाले सबूत न्यायालय के समक्ष पेश किए गए, जिनमें इनसानी चमड़ों से बने दस्ताने, लैंप शेड, मानव खोपड़ी इत्यादि शामिल थे। सबूत के तौर पर इन चीजों को देख अदालत में मौजूद हरेक शख्स की रूह काँप उठी। इस विश्व-विख्यात अदालती सुनवाई के दौरान दुनिया भर के 300 पत्रकार

हिटलर के बाद नाजियों का प्रमुख नेता एवं बंदीगृहों का प्रणेता हरमन गोयरिंग।

जर्मन विदेश मंत्री, यहूदियों का विनाशक रिबेन ट्रॉप।

सशस्त्र सेना प्रमुख विलहेम कायटेल।

नाजी सिक्यूरिटी पुलिस प्रमुख, यहूदियों का हत्यारा जनरल अर्नेस्ट कॉलटेन ब्रूनर।

नाजी फिलॉस्फर, हिटलर का जिगरी दोस्त अल्फ्रेड रोजेनबर्ग।

हिटलर का कानूनी सलाहकार, पोलैंड का गवर्नर जनरल हेंच फ्रेंक।
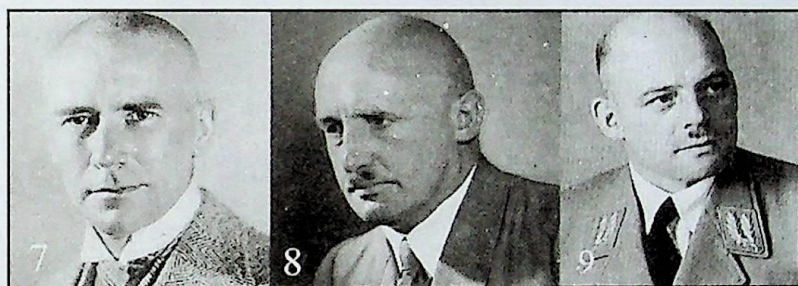
बहेमिया-मोरेबिया का संरक्षक विलहेम फ्रिक।

नाजी नेता, यौन पत्रिका का संपादक, यहूदी-नाशक जूलियस स्ट्रेचर।

एस.एस. एवं एस.ए. का जनरल फ्रिट्ज साउकेल।

जर्मन सेना प्रमुख अल्फ्रेड जॉडेल।

ऑस्ट्रियाई नाजी चांसलर आर्थर सेयसइंक्वार्ट।

हिटलर का सचिव और एस.एस. प्रमुख बोरमेन।

प्रत्यक्षदर्शी बने। 11 महीने तक लगातार चली कार्रवाई के बाद 1 अक्तूबर, 1946 को अदालत ने अपना फैसला सुनाया, जिसमें 12 अपराधियों को मृत्युदंड की सजा सुनाई गई।

वे 12 दुर्दांत अपराधी थे–

तुर्की के राजदूत पेपन और नाजी प्रचारक एवं नाजी पत्रिका के प्रधान संपादक हेंस फ्रित्ससे ठोस सबूत व गवाहों के अभाव में न्यायालय से बरी कर दिए गए। शेष आरोपियों को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई।

इटली और जापानी नेताओं व सेना प्रमुखों के विरुद्ध भी मुकदमे चलाए गए। 16 जनवरी, 1946 को टोकियो में अंतरराष्ट्रीय सैन्य न्यायालय का गठन किया गया। इस न्यायालय को 11 प्रमुख सदस्यों द्वारा संचालित किया गया। ये सदस्य थे–ऑस्ट्रेलिया के सर विलियम वेब, कनाडा के जस्टिस एडवर्ड स्टमअर्ट मेकडगल, चीन के मेजर जनरल मेजुएओ, फ्रेंच गणराज्य की प्रांतीय सरकार के हेनरी बर्नार्ड, नीदरलैंड के प्रो. बर्ट रोलिंग, न्यूजीलैंड के एरिमा हॉर्वे नॉर्थक्रॉफ्ट, सोवियत संघ के जस्टिस आई.एम. जारायानोव, यू.के. के लॉर्ड पेट्रिक, संयुक्त राज्य अमेरिका के मेजर जनरल एम.सी. क्रोमर, फिलीपींस
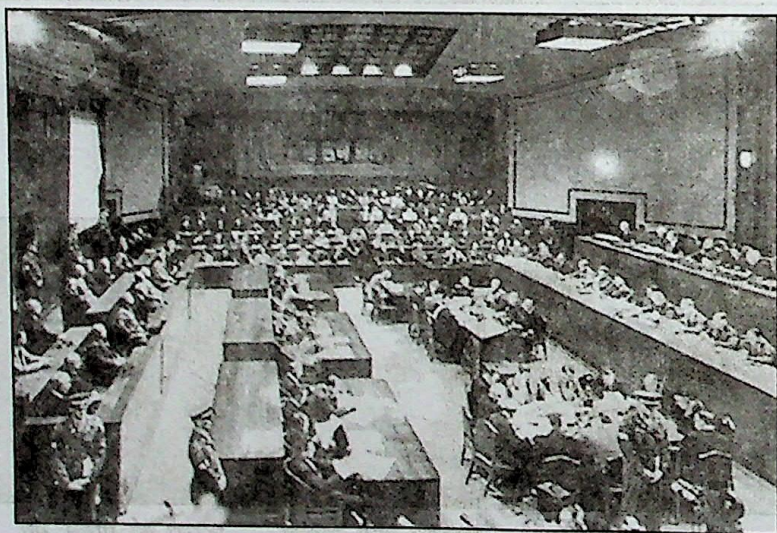
टोकियो में अंतरराष्ट्रीय सैन्य न्यायालय की कार्रवाई।

के कर्नल डेलफिन जरानिला और ब्रिटिश भारत के जस्टिस डॉ. राधाबिनोद पाल।

टोकियो सामरिक न्यायालय की कार्रवाई 4 जून, 1946 को प्रारंभ की गई। जापान के जिन नेताओं को इस न्यायालय के सम्मुख अभियुक्त के रूप में पेश किया गया, उसमें शामिल थे—

जनरल हाता, पूर्व प्रधानमंत्री कोकी हिरोता, प्रिवी काउंसिल के सदस्य जीरो मिनामी, मंचूरिया का जनरल केंजी दुईहारा, प्रधानमंत्री हिदेकी तोजो, नौसेना प्रधान आकिया मोतू, मुख्य सचिव होसिनो, वित्त मंत्री कोको नोरी काया, सम्राट् के प्रमुख परामर्शदाता माकुइश कोची कीदो, उप-युद्ध मंत्री की मूरा, कर्नल हासी मोतो, प्रधानमंत्री कुनिया को कोयोसो, एडमिरल ओसूमी नागानो, पूर्व प्रधानमंत्री हिरोशी ओसिमा, विदेश मंत्री सिगेनरी टोगो, विदेश मंत्री शिगे मित्शु, वाइस एडमिरल शिगे तारो सिमादा, इटली में राजदूत तोशियो सिरातोरी, लेफ्टिनेंट जनरल शुलूकी, क्वांटन वाहिनी प्रमुख सेइशिरो इतागाकी।

इसके अतिरिक्त जनवरी से जुलाई 1946 तक ब्रिटिश सैनिक अदालत में 129 जापानियों को युद्ध अपराधी करार दिया गया। इनमें से 98 को फाँसी की सजा दी गई एवं शेष को उम्रकैद। टोकियो न्यायालय ने कुल 7 जापानियों को फाँसी की सजा सुनाई और अन्य जापानी प्रमुख एवं राजनीतिज्ञों को उम्रकैद की सजा सुनाई गई। फाँसी की सजा पानेवालों में से 2 अभियुक्त न्यायिक कार्रवाई के दौरान मर गए एवं 1 ने अपना दिमागी संतुलन खो दिया।

जस्टिस डॉ. राधाबिनोद पाल।

ब्रिटिश भारत के जस्टिस डॉ. पाल का मत

जापान के युद्धापराधियों के लिए गठित अंतरराष्ट्रीय अदालत के ब्रिटिश भारत के सदस्य जस्टिस डॉ. राधाबिनोद पाल का मत अन्य न्यायाधीशों से बिलकुल अलग था।
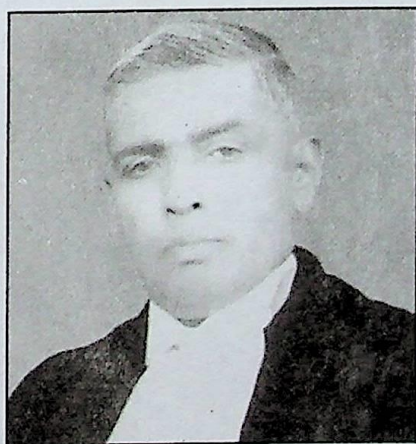
उनका मानना था कि युद्ध के लिए केवल जापानियों को ही दंड देना कदाचित् उचित नहीं होगा। यह किसी भी तरह न्यायसंगत बात नहीं हो सकती। हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम के प्रहार से लाखों बेगुनाहों की हत्या करने वाले भी उससे कहीं बड़े अपराधी हैं। उन अपराधों की सजा किसे मिलेगी? यह भी तो एक विचारणीय प्रश्न है। परंतु न्याय की इस गुहार में उनकी आवाज नक्कारखाने में तूती की तरह अकेली पड़ गई, जिसे किसी भी तरह स्वीकार नहीं किया गया और न्याय एकतरफा होकर रह गया।

❑

शीत युद्ध और यूरोपीय आर्थिक संकट

"जनता युद्ध नापसंद करती है। नेता युद्ध पसंद करते हैं।"

—राल्फ बंच

सिर्फ चालीस वर्षों में दो भीषण महायुद्धों की गवाह बन चुकी दुनिया से यह आशा की जाती थी कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दीर्घकालीन शांति की स्थापना की जाएगी। विजयी राष्ट्र पराजित राष्ट्रों से वैमनस्यता भुलाकर मित्रता एवं सहयोग का हाथ बढ़ाएँगे और युद्ध के बाद उत्पन्न समस्याओं को बातचीत के माध्यम से सुलझाएँगे; परंतु ऐसा नहीं हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के कुछ दिनों बाद ही दो महाशक्तियों अमेरिका और रूस के मध्य तीव्र मतभेदों ने इतना विषाक्त रूप धारण कर लिया कि दोनों के बीच आरोप-प्रत्यारोप एवं परस्पर विरोधी राजनीतिक प्रचार का युद्ध आरंभ हो गया। इस वाक्-युद्ध को शीतयुद्ध कहा गया। तमाम राष्ट्र इसकी चपेट में आ गए। विश्व दो खेमों में बँटने लगा। वर्चस्व की होड़ लग गई और तमाम राष्ट्र कूटनीतिक दाँव-पेंचों के बीच फँसते चले गए।

शीत युद्ध का बीजारोपण

नाजी ताकतों के विरुद्ध एकजुट हुए विजयी राष्ट्रों के बीच इतनी जल्दी

मतभेद उत्पन्न हो जाएँगे, ऐसा सोचकर ही मन सिहर उठता है। यह कटुता यही सिद्ध करती थी कि जर्मनी के विरुद्ध एकजुट हुए राष्ट्रों का आपसी सहयोग परिस्थितिजन्य एवं अस्थायी था। रूस, अमेरिका एवं ब्रिटेन जिस तरह जर्मनी के विरुद्ध एकजुट हुए थे, उसका इतनी जल्दी खंडन दरशाता है कि उनके बीच मूलभूत सैद्धांतिक मतभेद और पारस्परिक अविश्वास समाप्त नहीं हुए थे। पश्चिमी राष्ट्र सोवियत संघ के पूँजीवाद के उन्मूलन के निश्चय, विश्व क्रांति के प्रयत्नों तथा वर्ष 1939 में हिटलर के साथ किए गए अनाक्रमण समझौते को भूले नहीं थे और पश्चिमी नेता सोवियत राष्ट्रों की बोल्शेविक क्रांति द्वारा स्थापित व्यवस्था को अविश्वास और घृणा की दृष्टि से देखते थे। वहीं बोल्शेविक नेता पश्चिमी पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध थे।

युद्ध के प्रारंभ से ही अमेरिका एवं ब्रिटेन के मध्य रूस की स्थिति संदेहास्पद बनी रही। स्तालिन 1942 से ही इन राष्ट्रों से जर्मन सेना को रोकने व उसके दमन के लिए पश्चिमी यूरोपीय सीमा पर 'दूसरे मोरचे' की तैनाती के लिए कहते रहे थे, परंतु ये देश विभिन्न कारणों से इसके प्रति अपनी असमर्थता जताते रहे। इससे उलट चर्चिल ने बालकन क्षेत्र से यूरोप के ऊपरी हिस्से की ओर कूच करने पर जोर दिया। देर से ही सही, पर अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट के हस्तक्षेप के बाद चर्चिल ने फ्रांस में 'द्वितीय मोरचा' खोला, परंतु तब तक स्तालिन के मन में मित्र राष्ट्रों के प्रति संदेह पैदा हो चुका था। रूसी नेताओं का मानना था कि दोनों मित्र देश जर्मनी द्वारा रूसी शक्ति को क्षीण करवाना चाहते थे। इसी कारण मोरचे के प्रश्न पर उन्होंने इतने दिनों तक चुप्पी बनाए रखी।

रूसी सेना वर्ष 1944 के अंत में जब पोलैंड, हंगरी और रूमानिया में तेजी से आगे बढ़ रही थी, तब ब्रिटिश सरकार को लगा कि यूरोप में साम्यवादी प्रभाव बढ़ न जाए। इसलिए चर्चिल ने यूनान में राजतंत्र का और इटली में वामपंथी दल के विरुद्ध दक्षिणपंथी दल की सत्ता का समर्थन किया। दूसरी ओर स्तालिन ने अपने अधिकृत राज्यों में साम्यवाद को पूरा बढ़ावा दिया और उसका विरोध करने वालों के दमन की पुरजोर कोशिशें कीं। स्तालिन की इस नीति से अमेरिकी एवं ब्रिटिश सरकारें चिंतित हो उठीं। इसी परिप्रेक्ष्य में चर्चिल ने स्तालिन से मिलकर अक्तूबर 1944 में एक समझौता किया, जिसमें तय हुआ कि बुल्गारिया और रूमानिया को रूस के अधीन एवं यूनान पश्चिमी राष्ट्रों के नियंत्रण में रहे तथा हंगरी एवं यूगोस्लाविया पर रूस

व पश्चिमी राष्ट्रों का सम्मिलित नियंत्रण हो। परंतु इस समझौते के उपरांत भी संदेह की स्थिति बरकरार रही। रूस ने पोलैंड पर अपना पूरा नियंत्रण कर लिया और मार्शल टीटो को यूगोस्लाविया में पूरी सहायता प्रदान की। संदेह के बादल के याल्टा सम्मेलन में छँटने के कयास लगाए जा रहे थे, परंतु ऐसा नहीं हुआ। स्तालिन ने उन नियमों को पोलैंड में लागू नहीं किया, साथ ही अन्य यूरोपीय देशों को अपने अधीन रखा, जिसने पश्चिमी देशों को सोचने पर मजबूर कर दिया। पूर्वी यूरोप पर रूस के नियंत्रण से पश्चिमी देशों में डर समा गया और शीत युद्ध का बीजारोपण हुआ।

ट्रूमैन सिद्धांत

रूस और पश्चिमी राष्ट्रों के मध्य मतभेद सन् 1946 में अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों एवं विदेश मंत्रियों की बैठकों में स्पष्ट होते रहे। अमेरिकी विदेश विभाग के रिपब्लिकन सलाहकार जॉन फोस्टर डलेस ने सन् 1947 के आरंभ में एक भाषण में यूरोपीय देशों को संबोधित करते हुए कहा कि वे सोवियत रूस की बढ़ती ताकत के विरुद्ध संगठित हों। कुछ ही दिनों बाद अमेरिकी उपविदेश मंत्री डीन एचीसन ने 10 फरवरी, 1947 को एक बैठक में रूस की विदेश नीति को आक्रामक एवं विस्तारवादी करार दिया, जिसका रूस सरकार ने कड़े शब्दों में विरोध किया। 12 मार्च, 1947 को राष्ट्रपति ट्रूमैन ने अमेरिकी कांग्रेस के दोनों सदनों की बैठक के समक्ष अपने भाषण में साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए ग्रीस (यूनान) और तुर्की को सहायता देने का निश्चय व्यक्त किया, क्योंकि उनका मानना था कि अमेरिका के पास ऐसी नीति होनी चाहिए जिससे वह बाहरी दबाव या सशस्त्र अल्पसंख्यक दलों द्वारा सत्ता हथियाने के प्रयासों का विरोध करनेवाले स्वतंत्र लोगों को सहायता प्रदान कर सके। इसे ही 'ट्रूमैन सिद्धांत' कहा गया। इसके बाद साम्यवाद को रोकना अमेरिकी विदेश नीति का प्रमुख हिस्सा बन गया। अमेरिकी राष्ट्रपति की इस घोषणा का रूस की राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा।

मार्शल योजना बनाम यूरोपीय पुनरुद्धार योजना

इस महाविनाशक युद्ध के पश्चात् यूरोप के विभिन्न देशों की माली हालत काफी खराब हो चुकी थी। उन्हें अपनी स्थिति को सुधारने व व्यवस्था

सुचारु रूप से चलाने के लिए किसी संपन्न देश की मदद की जरूरत थी और समूचे यूरोप में अमेरिका के सिवा अन्य कोई देश सहायता कर पाने में सक्षम नहीं था।

5 जून, 1947 को अमेरिकी विदेश मंत्री जॉर्ज जॉर्शल ने हार्वर्ड विश्वविद्यालय में एक महत्त्वपूर्ण भाषण दिया, जिसमें यूरोप के आर्थिक पुनरुद्धार के लिए एक मार्शल योजना पेश की गई। इस पर विचार के लिए जुलाई में पेरिस में 16 यूरोपीय देशों का सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसमें यूरोप की आर्थिक पुनरुद्धार योजना को पूरा करने के लिए एक सहयोग समिति बनाई गई। परंतु रूस व उसके समर्थक देशों ने इस योजना को अस्वीकार कर दिया। रूस का मानना था कि इस योजना के तहत अमेरिका यूरोपीय देशों पर अपना वर्चस्व कायम करना चाहता है। उसका सहायता देने का मकसद साम्यवाद के प्रसार को कुंद करना और रूस के विशाल साम्राज्य की बढ़त को रोकना है। रूस चाहता था कि यूरोपीय देश अपने लिए ऐसी योजना बनाएँ, जिससे उनके राजनीतिक व आंतरिक मामलों में अमेरिकी हस्तक्षेप न हो। पर ब्रिटेन व फ्रांस सहमत नहीं हुए और उन्होंने यूरोपीय देशों की एक बैठक बुलाई। बैठक में शामिल देश थे–ब्रिटेन, फ्रांस, ऑस्ट्रिया, बेल्जियम, डेनमार्क, आयरलैंड, ग्रीस, आइसलैंड, इटली, लक्समबर्ग, हॉलैंड, नॉर्वे, पुर्तगाल, स्वीडन, स्विट्जरलैंड और तुर्की। सोवियत संघ में शामिल राज्य इस बैठक में शामिल नहीं हुए। 12 जुलाई, 1947 को यह सम्मेलन प्रारंभ हुआ, जिसमें कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गए–

1. विविध देशों के प्रतिनिधियों की एक सहकारी समिति बनाकर यह सुनिश्चित किया जाए कि उन देशों में कौन-कौन सी वस्तुएँ उपलब्ध हैं और किन-किन वस्तुओं की जरूरत उन्हें पड़ेगी, जो अमेरिका द्वारा उपलब्ध कराई जा सकती है। साथ ही यह भी सुनिश्चित करें कि किस देश को किस चीज की कितनी आवश्यकता है।
2. खाद्य सामग्री एवं कृषि उपकरण किस देश को कितने चाहिए, इसके लिए एक विशेष उपसमिति का गठन किया गया। चार दिनों तक चला यह सम्मेलन 15 जुलाई, 1947 को समाप्त हुआ। इस अधिवेशन में जिन समितियों का गठन किया गया, वे तत्काल अपनी-अपनी रिपोर्ट बनाने में लग गए। सितंबर 1947 तक यह रिपोर्ट तैयार हो गई। रिपोर्ट

के अनुसार, यूरोप के पुनरुद्धार के लिए न्यूनतम 8,000 करोड़ रुपए की वस्तुएँ उपलब्ध करानी अनिवार्य थीं। इन रुपयों का इस्तेमाल 4 साल के अंदर करना तय था।

अमेरिकी राष्ट्रपति ने रिपोर्ट पर विचार करने के लिए एक उपसमिति गठित की, जिसका अध्यक्ष अमेरिकी व्यापार-सचिव हैरिमैन को बनाया गया। रिपोर्ट पर विचार के बाद इसे 8 सितंबर, 1947 को प्रकाशित किया गया। रिपोर्ट के अनुसार, अप्रैल 1948 में सहायता कार्य प्रारंभ हुआ। चार साल में 6,400 करोड़ रुपए व्यय करने और प्रथम पंद्रह महीनों में 2 हजार करोड़ रुपए व्यय करने का प्रस्ताव अमेरिकी कांग्रेस के समक्ष रखा गया, जिसे जून 1948 में अमेरिकी कांग्रेस ने पारित कर दिया। मार्शल योजना के तहत ब्रिटेन को प्रथम वर्ष 60 करोड़ की सहायता वस्तुएँ प्राप्त हुईं। मार्शल योजना को यूरोपीय पुनरुद्धार योजना कहा गया, जो वास्तव में अपने अर्थों पर खरी साबित हुई और यूरोप के विभिन्न देशों को विश्व युद्ध से हुई अपार क्षति से उबरने में सहायक सिद्ध हुई।

आर्थिक संकट

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद एक बड़ा आर्थिक संकट उभरकर सामने आया। किसी भी देश की व्यवस्था बिना सुदृढ़ आर्थिक ढाँचे के सुव्यवस्थित नहीं रह सकती। युद्ध के अंत तक यूरोपीय देशों के 70 प्रतिशत उद्योग नष्ट हो चुके थे। बेरोजगारी और भुखमरी चारों ओर व्याप्त थी। उनका प्रभाव केवल उन देशों पर ही नहीं पड़ा था, जो युद्ध में शामिल थे; अपितु वे देश भी प्रभावित थे, जिन्होंने युद्ध में हिस्सा नहीं लिया था। युद्ध से अपनी सुरक्षा के लिए सैन्य-व्यवस्था इत्यादि पर उन्होंने अत्यधिक व्यय किया था, जिसकी भरपाई वे नहीं कर पाए। विश्व के कुछ देशों के सरकारी व्यय में युद्ध से पूर्व व युद्ध के अंतिम साल के आँकड़ों के मध्य एक बड़ा अंतर आ चुका था। यह व्यय विभिन्न देशों में 250 प्रतिशत से 1,000 प्रतिशत तक बढ़ गया था, जिससे पार पाना बहुत कठिन हो रहा था। इसे हम आगे दी गई सारणी से समझ सकते हैं–

देश	1938-39 **में सरकारी व्यय**	1944-45 **में सरकारी व्यय**
जर्मनी (मार्क)	2,855.00 करोड़	12,400.00 करोड़
रूस (रूबल)	12,400.40 करोड़	30,530.00 करोड़
अमेरिका (डॉलर)	876.50 करोड़	9,891.20 करोड़
ब्रिटेन (पौंड)	114.70 करोड़	619.00 करोड़
फ्रांस (फ्रैंक)	6,349.00 करोड़	40,600.80 करोड़
जापान (येन)	781.00 करोड़	5,324.40 करोड़
कनाडा (डॉलर)	53.30 करोड़	514.20 करोड़
भारत (रुपया)	130.80 करोड़	572.10 करोड़

ये आँकड़े केवल सरकारी व्यय दरशाते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न देशों में औद्योगिक क्षति एवं खाद्यान्न इत्यादि की भरपाई कर पाना दुष्कर होता जा रहा था। ऐसी स्थिति में इन देशों के पास गिने-चुने रास्ते थे। पहला, राजकीय करों में वृद्धि कर खजाने को भरना; दूसरा, अन्य किसी देश से कर्ज लेना और तीसरा, अपनी मुद्रा का किसी प्रकार विस्तार करना। इन तीनों रास्तों को विभिन्न देशों ने एक साथ अपनाया। कर के मामले में न केवल वृद्धि की गई, साथ ही नए कर भी लगाए गए; परंतु यह काफी नहीं था। कर्ज लेना अनिवार्य हो गया। ब्रिटेन का कुल राष्ट्रीय ऋण सन् 1939 में लगभग सवा 8 अरब पौंड था, जो सन् 1946 में लगभग तीन गुना बढ़कर 24 अरब पौंड हो गया। फ्रांस व अन्य देशों में भी ऐसी ही व्यवस्था की गई, परंतु युद्ध के खर्चों को पूरा न कर पाने की स्थिति में मजबूरन कई देशों की सरकारों ने ऋण देने के लिए अत्यधिक संख्या में कागजी मुद्रा देनी प्रारंभ कर दी। कागजी मुद्रा में अचानक इतनी वृद्धि उनके लिए जितनी सरल थी, उतनी ही भविष्य के लिए भयंकर भी। कागजी मुद्रा में युद्ध के प्रारंभ व समाप्ति के समय काफी अंतर आ गया था। इसे यहाँ दी गई सारणी से समझा जा सकता है-

देश	1939 में कागजी मुद्रा	1947 में कागजी मुद्रा
अमेरिका (डॉलर)	640.00 करोड़	2,650.00 करोड़
ब्रिटेन (पौंड)	50.00 करोड़	133.00 करोड़
फ्रांस (फ्रैंक)	15,100.00 करोड़	92,100.00 करोड़
जापान (येन)	370.00 करोड़	21,910.00 करोड़
कनाडा (डॉलर)	28.10 करोड़	111.20 करोड़
भारत (रुपया)	340.00 करोड़	1,337.00 करोड़

विश्व बाजार में कागजी मुद्रा के अचानक अत्यधिक बढ़ने से स्थिति असंतुलित हो गई और महँगाई पर किसी प्रकार का संतुलन बना पाना मुश्किल हो गया। यदि मुद्रा की बढ़त की दर और आर्थिक पैदावार की दर समान होती तो स्थिति कुछ और होती, परंतु इसमें दोगुने से कहीं अधिक का अंतर था। इसके बावजूद अमेरिका और ब्रिटेन में स्थिति एक हद तक सामान्य रही, क्योंकि जहाँ एक ओर इन देशों में कागजी मुद्रा लगभग 4 गुना एवं 2 गुना बढ़ाई गई थीं, वहीं दूसरी ओर युद्ध के दौरान यहाँ आर्थिक उत्पादन भी पहले से अधिक हुआ था, जिस कारण यहाँ मूल्यों में पौने दो गुना से अधिक बढ़ोतरी नहीं हो पाई। इसके विपरीत फ्रांस, इटली, पोलैंड, बेल्जियम आदि देशों में आर्थिक उत्पत्ति पहले की अपेक्षा घट चुकी थी। कारण था, युद्ध के दौरान वहाँ के अधिकतम उद्योग, कल-कारखाने इत्यादि नष्ट हो चुके थे और कागजी मुद्रा में कई गुना बढ़ोतरी की गई थी। परिणाम यह हुआ कि यहाँ के बाजार मूल्यों में काफी वृद्धि हो गई।

❑

26

द्वितीय विश्व युद्ध के चर्चित चेहरे

"मनुष्य एकमात्र ऐसा पशु है, जो अपने स्वार्थ के लिए अपनी ही प्रजाति के उन अजनबियों की हत्या कर देता है, जिन्होंने उसे कोई नुकसान नहीं पहुँचाया होता है। इसके बाद वह अपने खून सने हाथों को धोता है और मुँह से 'विश्व-बंधुत्व' की बात करता है।"

—मार्क ट्वेन

जर्मनी

एडोल्फ हिटलर (1889-1945)

जर्मन राजनेता एवं तानाशाह हिटलर 'राष्ट्रीय समाजवादी जर्मन कामगार पार्टी' का नेता था। इसे 'नाजी पार्टी' के नाम से जाना जाता था। सन् 1933 से 1945 तक वह जर्मनी का निरंकुश शासक रहा। हिटलर को द्वितीय विश्व युद्ध के लिए सर्वाधिक जिम्मेदार माना जाता है। एडोल्फ हिटलर का जन्म ब्रानऊ-एम-इन, ऑस्ट्रिया में 20 अप्रैल, 1889 को हुआ। 25 फरवरी, 1932 को उसने जर्मनी की नागरिकता ली और आगामी राष्ट्रपति चुनाव हिंडनबर्ग के विरुद्ध लड़ा।

सन् 1919 में उसने नाजी दल की स्थापना की। इसका उद्देश्य साम्यवादियों और यहूदियों से सारे अधिकार छीनना था। इस दल ने यहूदियों को प्रथम विश्व युद्ध की हार के लिए दोषी ठहराया। उसने स्वस्तिक को अपने दल का चिह्न बनाया।

सन् 1933 में चांसलर बनते ही हिटलर ने जर्मन संसद् को भंग कर दिया, साम्यवादी दल को गैर-कानूनी घोषित कर दिया और राष्ट्र को स्वावलंबी बनने के लिए ललकारा। नाजी दल के विरोधी व्यक्तियों को जेलखानों में डाल दिया गया। सन् 1934 में उसने अपने को सर्वोच्च न्यायाधीश घोषित कर दिया। उसी वर्ष जर्मन राष्ट्रपति हिंडनबर्ग की मृत्यु के पश्चात् वह राष्ट्रपति बन बैठा। इसके बाद नाजी दल का आतंक जनजीवन के प्रत्येक क्षेत्र में छा गया। वर्ष 1933 से 1938 तक लाखों यहूदियों की हत्या कर दी गई।

हिटलर ने 1933 में राष्ट्र संघ को छोड़ दिया और भावी युद्ध को ध्यान में रखकर जर्मनी की सैन्य शक्ति बढ़ाना प्रारंभ कर दिया। प्राय: सारी जर्मन जाति को सैनिक प्रशिक्षण दिया गया।

जर्मनी की इस आक्रामक नीति से डरकर रूस, फ्रांस, चेकोस्लोवाकिया, इटली आदि देशों ने अपनी सुरक्षा के लिए पारस्परिक संधियाँ कीं। अनेक उथल-पुथल के बीच सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ हुआ। फ्रांस की पराजय के पश्चात् हिटलर ने मुसोलिनी से संधि करके रूम सागर पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का विचार किया। इसके पश्चात् जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया। जब संयुक्त राज्य अमेरिका द्वितीय विश्व युद्ध में सम्मिलित हो गया तो हिटलर की सामरिक स्थिति बिगड़ने लगी। हिटलर के सैनिक अधिकारी उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगे। जब रूसियों ने बर्लिन पर आक्रमण किया तो हिटलर ने 30 अप्रैल, 1945 को आत्महत्या कर ली।

हरमन गोयरिंग (1893-1946)

'लुफ्तवाफ' का मुखिया और जर्मनी का सबसे ताकतवर इनसान गोयरिंग दंभी, लालची, खोखला और एक अक्षम इनसान था, जो पूरे युद्ध के दौरान अपनी निजी संपत्ति बनाने में लगा रहा। न्यूरेम्बर्ग मुकदमे में उसे मौत की सजा सुनाई गई। उसने फाँसी से पहले ही आत्महत्या कर ली।

जोसफ ग्योबल्स (1897–1945)

जर्मनी का प्रचार मंत्री ग्योबल्स हिटलर के प्रति कुत्ते जैसा वफादार था और उसे हिटलर का संभावित उत्तराधिकारी भी कहा गया था। जर्मन प्रेस व रेडियो पर उसका नियंत्रण था। उसने हिटलर के साथ ही सपरिवार आत्महत्या कर ली थी।

हेनरिक हिमलर (1900–1945)

एस.एस. वाहिनी, वाफेन एस.एस. और गेस्टापो प्रमुख हिमलर गृह मंत्री था। मित्र राष्ट्रों द्वारा बंदी बना लिये जाने के बाद 1945 में इसने आत्महत्या कर ली थी।

फील्ड मार्शल वाल्टर वॉन ब्रॉचटिश (1881–1948)

सन् 1938 से 1941 के अंत में इस्तीफा देने तक जर्मन सेना का कमांडर-इन-चीफ। ब्राचटिश ने अपनी बीमारी, मॉस्को में जर्मन सेना की विफलता और हिटलर की बेरुखी के सामूहिक कारणों के चलते इस्तीफा दिया। उसके इस्तीफे के बाद सेना की कमान स्वयं हिटलर ने सँभाल ली।

फील्ड मार्शल विल्हेम केइटेल (1882–1946)

सन् 1938 से युद्ध-समाप्ति तक जर्मन सशस्त्र बल का चीफ रहा केडटेल। इसका अर्थ था कि वह हिटलर का कार्यालय प्रमुख था। उसका काम माँगे जाने पर हिटलर को सलाह देना था। वह हिटलर का 'यस मैन' था और उसके सभी निर्णयों का आँख मूँदकर पालन करता था। न्यूरेम्बर्ग मुकदमे में उसे युद्ध अपराधी पाया गया और मृत्युदंड सुनाया गया।

जनरल अल्फ्रेड जोडेल (1890-1946)

अल्फ्रेड फील्ड मार्शल विल्हेम का कनिष्ठ और सशस्त्र बल ऑपरेशन विभाग का चीफ था। हिटलर के सभी अभियानों, रूस को छोड़कर, के पीछे उसी का दिमाग माना जाता है। न्यूरेम्बर्ग की अदालत ने उसे भी फाँसी की सजा सुनाई।

एडमिरल इरिच रेएडर (1876-1960)

इरिच जनवरी 1943 तक जर्मन नौसैनिक बलों का चीफ कमांडर रहा। जब हिटलर सत्ता में आया, इरिच नौसेना प्रमुख था। युद्ध से पूर्व के वर्षों में उसने जर्मन नौसेना के विकास की दिशा में अभूतपूर्व कार्य किया। विश्व युद्ध के दौरान कभी-कभी वह हिटलर से असहमत हो जाता था, फलतः सन् 1943 में उसे पद से हटाकर एडमिरल डोएनिज को पदासीन किया गया। युद्ध के बाद युद्धापराध के लिए इरिच को दस साल के कारावास की सजा मिली।

एडमिरल कार्ल डोएनिज (1891-1980)

जर्मन नौसेना में सन् 1943 तक यू-बोट (पनडुब्बी) का कमांडर डोएनिज बाद में नौसेना का कमांडर-इन-चीफ बना। हिटलर कार्ल डोएनिज का आदर करता था और वह उसका भरोसेमंद आदमी थी। सन् 1945 में हिटलर की मौत के बाद वह जर्मनी का राज्य प्रमुख बना। न्यूरेम्बर्ग की अदालत ने युद्ध-अपराध के लिए उसे दस साल के कारावास की सजा दी थी।

ब्रिटेन

विंस्टन स्पेंसर चर्चिल (1874-1965)

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान (1940-1945) ब्रिटेन के प्रधानमंत्री।

चर्चिल प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ, प्रखर वक्ता, इतिहासकार, लेखक, कलाकार और पत्रकार थे। वे एक सैन्य अधिकारी भी रहे। एक राजनीतिज्ञ के रूप में उन्होंने कई पदों पर कार्य किया। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान उन्होंने 'युद्ध मंत्री परिषद्' कायम की और युद्ध का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया। उन्होंने अपना प्रभाव अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट पर भी छोड़ा। वे औपनिवेशिक साम्राज्यवाद के समर्थक थे। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में प्रस्तावित 'सभी राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के अधिकारों' का उन्होंने जबरदस्त विरोध किया। युद्ध के दौरान उनके अनेक निर्णय गलत साबित हुए और कई मोरचों पर ब्रिटिश सेना को मुँह की खानी पड़ी। इस दौरान उन्हें आलोचना भी झेलनी पड़ी और दो बार संसद् में अविश्वास प्रस्ताव का सामना करना पड़ा। फिर भी उन्हें सदी का श्रेष्ठ ब्रिटिश राजनीतिज्ञ कहा जाता है।

नेविल चेंबरलेन (1869–1940)

सन् 1937 से मई 1940 तक ब्रिटिश प्रधानमंत्री रहे चेंबरलेन ने द्वितीय विश्व युद्ध को टालने के प्रयास में नाजियों के प्रति तुष्टीकरण की नीति का पालन किया। मई 1940 तक उन्होंने ब्रिटिश जनता और संसद् का विश्वास खो दिया और नेतृत्व चर्चिल को सौंप दिया। वे मंत्रिमंडल के सदस्य बने रहे। नवंबर 1940 में उनका निधन हो गया।
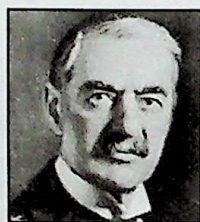
क्लीमेंट एटली (1883–1967)

चर्चिल की गठबंधन सरकार में उप-प्रधानमंत्री। जुलाई 1945 के आम चुनाव में चर्चिल की कंजर्वेटिव पार्टी की पराजय के बाद वे प्रधानमंत्री बने। इन्होंने ही विश्व के कई देशों में आजादी की वकालत की, जिनमें से भारत भी एक था।

एंथनी एडेन (1897-1977)

चर्चिल सरकार के दौरान देश के विदेश सचिव। एडेन एक कठोर और जिद्दी वार्त्ताकार थे। वे सोवियत संघ को पूर्वी यूरोप में प्रादेशिक रियायतें देने के खिलाफ थे।
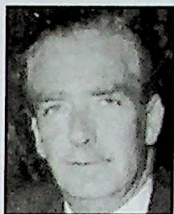
एयर चीफ मार्शल चॉर्ल्स पोर्टल (1893-1971)
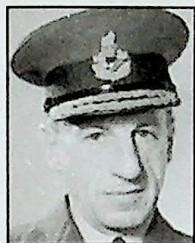
सन् 1940 से वायुसेना प्रमुख। पोर्टल रैपिड एक्शन फोर्स (आर.ए.एफ.) के चीफ और एक बुद्धिमान कूटनीतिज्ञ थे। उन्होंने ज्यादातर युद्ध के दौरान सामरिक क्षेत्र में बमबारी की वकालत की, लेकिन बाद में उनका दृष्टिकोण बदल गया और वे आक्रामक कार्रवाई की वकालत करने लगे।

सोवियत संघ

जोसफ स्तालिन (1879-1953)

सोवियत लाल सेना के चीफ स्टालिन ने द्वितीय विश्व युद्ध में हिटलर की फतह को पहली बार रोककर उसे हार का मुँह दिखाया।
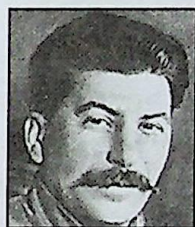
मार्शल एलेक्जेंडर वसिलिएवस्की (1895-1977)

लाल सेना के सेनानायक एलेक्जेंडर ने युद्ध के दौरान अधिकतर सामरिक ऑपरेशनों में सक्रिय भूमिका निभाई।

मार्शल जॉर्जी जुकोव (1896-1974)

लाल सेना के उपसेनानायक जुकोव ने सन् 1941 में जर्मन सेना के विरुद्ध मॉस्को की रक्षा का निर्देशन किया। बाद में उसने सशस्त्र जवाबी हमला किया, जिसने व्हेरमेच के पतन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

वेचिस्लॉव मोलोतोव (1890-1986)

सोवियत संघ के विदेश मामलों के कमिश्नर व रूसी विदेश मंत्री मोलोतोव ने जर्मनी और जापान दोनों के साथ अनाक्रमण समझौतों पर हस्ताक्षर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। वह सोवियत संघ के बाहर हुई लगभग सभी बैठकों में शामिल होता था और मॉस्को में मित्र राष्ट्रों के सम्मेलन के दौरान अकसर स्तालिन की जगह लेता था।

संयुक्त राज्य अमेरिका

फ्रेंकलिन डेलानो रूजवेल्ट (1892-1945)

फ्रेंकलिन डी. रूजवेल्ट सन् 1933 में अमेरिका के 32वें राष्ट्रपति निर्वाचित हुए और सन् 1945 तक इस पद पर रहे। देश में वैश्विक आर्थिक मंदी के दौरान उन्होंने रोजगार बढ़ाने, अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने और आर्थिक सुधारों के लिए अनेक उपाय किए। जब द्वितीय विश्व युद्ध भड़का तो दिसंबर 1941 में अमेरिका ने मित्र राष्ट्रों के पक्ष में युद्ध की घोषणा कर दी। ब्रिटेन और उसके मित्र राष्ट्रों को युद्ध-सामग्री भेजने के लिए रूजवेल्ट ने लेंड-लीज एक्ट में बदलाव किया। 12 अप्रैल, 1945 को उनका निधन हो गया।

हेनरी एस. ट्रूमैन (1892-1972)

सन् 1944 में अमेरिका के उपराष्ट्रपति ट्रूमैन अप्रैल, 1945 में रूजवेल्ट के निधन के बाद देश के राष्ट्रपति बने। उपराष्ट्रपति के कार्यकाल के दौरान अपने कार्यों में ट्रूमैन शायद ही कभी रूजवेल्ट से सलाह लिया करते थे। रूजवेल्ट की मौत के बाद तो उन्हें खुलकर काम करने का मौका मिल गया। जो इच्छा वे दूसरे विश्व युद्ध के दौरान अब तक दबाए हुए थे, उसे पूरा करने का नायाब मौका उन्हें मिल गया और उसका भयानक परिणाम हिरोशिमा एवं नागासाकी पर परमाणु बमों के हमलों के रूप में सामने आया।

एडमिरल अर्नेस्ट जे. किंग (1878-1956)

द्वितीय विश्व युद्ध में अमेरिकी नौसेना अभियान के चीफ अर्नेस्ट को युद्ध के शीर्ष रणनीतिकार के रूप में जाना जाता था।

जनरल जॉर्ज सी. मार्शल (1880-1959)

सन् 1939 से अमेरिकी सेनानायक जॉर्ज सी. मार्शल एक विशेषज्ञ सेना योजनाकार था। उसने अपने कार्यकाल में अमेरिकी सैनिकों की 1,30,000 की संख्या को 80,30,000 तक पहुँचा दिया। युद्ध के सभी मोरचों पर उसने शीर्ष रणनीतिक की भूमिका निभाई थी। यूरोप में मित्र राष्ट्रों की सेनाओं की कमान के लिए उसे शीर्ष उम्मीदवार माना जाता था। लेकिन राष्ट्रपति रूजवेल्ट उसे वाशिंगटन में ही बनाए रखना चाहते थे। इसलिए उसके स्थान पर आइजन हॉवर को नियुक्ति दी गई। नवंबर 1945 में मार्शल सेना से सेवानिवृत्त हो गया।

इटली

बेनिटो मुसोलिनी (1882-1945)

बेनिटो मुसोलिनी इटली का एक राजनेता था जिसने राष्ट्रीय फासिस्ट पार्टी का नेतृत्व किया। वह फासीवाद के दर्शन की नींव रखनेवालों में से प्रमुख व्यक्ति था। उसने दूसरे विश्व युद्ध में धुरी राष्ट्रों के साथ मिलकर युद्ध किया। उसका जीवन अवसरवाद, आवारापन और प्रतिभा के मिश्रण से बना था।

मुसोलिनी का जन्म वर्ष 1883 की 29 जुलाई को इटली के प्रिदाप्यो नामक गाँव में हुआ। 18 वर्ष की अवस्था में वह एक पाठशाला में अध्यापक बना। 19 साल की उम्र में बेनिटो भागकर स्विट्जरलैंड चला गया। वहाँ वह मजदूरी करता था, साथ ही रात को समाजवादियों से मिलता-जुलता और समाजवाद का अध्ययन करता था। वहाँ से लौटकर उसने कुछ समय तक सेना में कार्य किया।

सन् 1914 में प्रथम विश्व युद्ध छिड़ने के साथ मुसोलिनी ने समाजवादियों

की तरह यह मानने से इनकार किया कि इटली को निष्पक्ष रहना चाहिए। वह चाहता था कि इटली ब्रिटेन और फ्रांस के पक्ष में लड़ाई में उतरे।

वर्ष 1919 के 23 मार्च को मुसोलिनी ने अपने ढंग से राजनीति में एक नए संगठन को जन्म दिया। इस दल का नाम था 'फासी-दि-कंबातिमेंती'। मुसोलिनी धीरे-धीरे शक्तिशाली होता गया और एक चतुर अवसरवादी होने के कारण अवसरों का लाभ उठाता रहा, यहाँ तक कि फासिस्टों ने रोम पर 30 अक्तूबर, 1922 को कब्जा कर लिया। सरकारी सेना के तटस्थ हो जाने से ही यह संभव हुआ।

26 अप्रैल, 1945 को मुसोलिनी स्विट्जरलैंड भागने की चेष्टा करते हुए पकड़ लिया गया और 28 अप्रैल, 1945 को उसे मृत्युदंड दिया गया।
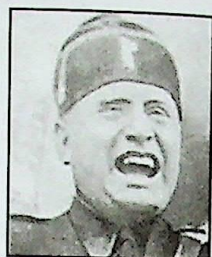
फील्ड मार्शल पिएत्रो बोदोग्लियो (1871-1956)

द्वितीय विश्व युद्ध की शुरुआत से दिसंबर 1940 तक बोदेग्लियो इतालवी सेना का सेनानायक रहा। ग्रीस में पराजय के बाद उसने पद से इस्तीफा दे दिया। इसके बाद उसने मुसोलिनी की खिलाफत आरंभ कर दी। जुलाई, 1943 में तानाशाह के पतन के बाद वह गैर फासिस्ट सरकार में देश का पहला प्रधानमंत्री बना।

काउंट गेलेआजो सिएनो (1903-1944)

इटली का विदेश मंत्री और मुसोलिनी का दामाद सिएनो सन् 1936 से इटली का विदेश मंत्री था लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान वह मुसोलिनी से घृणा करने लगा और अंततः फरवरी 1943 में उसने पद से त्यागपत्र दे दिया। लेकिन वह फासिस्ट ग्रैंड काउंसिल का सदस्य बना रहा और जुलाई 1943 में उसने मुसोलिनी को पद से हटाने के लिए वोट किया। उसी वर्ष अगस्त

में धोखे से जर्मन सेना ने उसे बंदी बना लिया और उसके ससुर मुसोलिनी के अनुमोदन पर उसे फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

जापान

हिदेकी तोजो

अक्तूबर 1941 से जुलाई 1944 तक जापान का प्रधानमंत्री, सैन्य प्रमुख और युद्ध मंत्री रहा। तोजो को जापान के तानाशाह के रूप में वर्णित किया जा सकता है। पूरे जापानी युद्ध-अभियान का वह मुख्य निदेशक एवं संचालक था। अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए उसने अपनी युद्ध मंत्री की कुरसी उमेजू को सौंप दी। लेकिन जुलाई 1944 में सायपन के पतन के बाद उसने अपने सभी पद छोड़ दिए और कुरसी कोइसू को सौंप दी। त्यागपत्र के बाद उसने आत्महत्या करने की कोशिश की, लेकिन उसे बचा लिया गया। युद्ध अपराध के मुकदमे में वह दोषी साबित हुआ और फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

केंतारो सुजुकी (1867-1948)
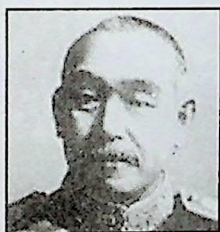
सुजुकी अप्रैल 1945 में प्रधानमंत्री बने। वे एक ऐसे जापानी नेता थे जो शांति के पक्षधर थे, उन्होंने ही जापानी सम्राट् हिरोहितो से आग्रह किया कि जापान को मित्र राष्ट्रों के समक्ष आत्मसमर्पण कर देना चाहिए। 14 अगस्त, 1945 को जापान के आत्मसमर्पण की घोषणा के साथ ही सुजुकी ने इस्तीफा दे दिया।

एडमिरल इसोरोकू यामामोतो (1884-1943)

नौसेना मंत्री और 'फर्स्ट फ्लीट' का कमांडर-इन-चीफ

यामामोतो जापानी कैरियर फोर्स का रचनाकार था। उसी ने पर्ल हार्बर स्थित अमेरिकी प्रशांत बेड़े पर यकायक हमले की योजना बनाई थी। इसके बाद अमेरिकी सेना उसके पीछे पड़ गई और अप्रैल 1943 में टोह लेकर उसे उसके विमान सहित मार गिराया।

❑

द्वितीय विश्व युद्ध : बोलते चित्र
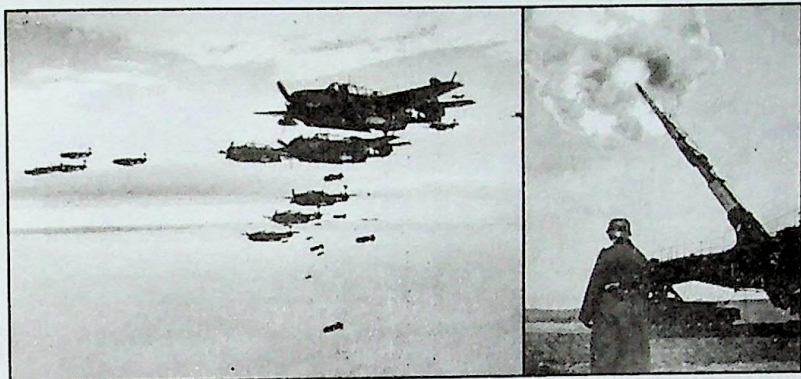
जुलाई 1945 : अमेरिकी बॉम्बर होकोदाते, जापान पर बमवर्षा करते हुए।

विमान-भेदी तोप।
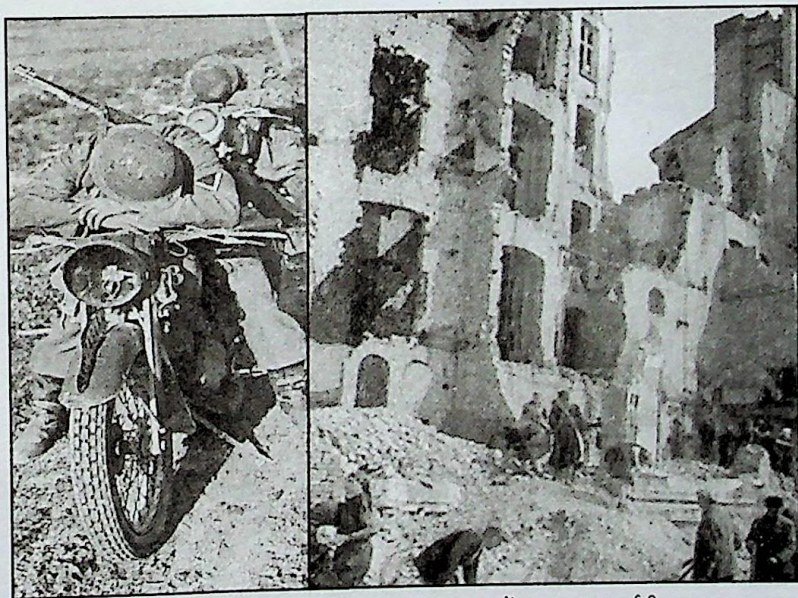
ऐसा अंत।

युद्ध में बदशक्ल जर्मनी।

सितंबर 1944 : मित्र राष्ट्रों का पैराट्रूप दस्ता हॉलैंड में उतरते हुए।

जर्मन बमबारी से घबराकर घरों से भागते रूसी।

एंटी एयरक्रॉफ्ट फायर।
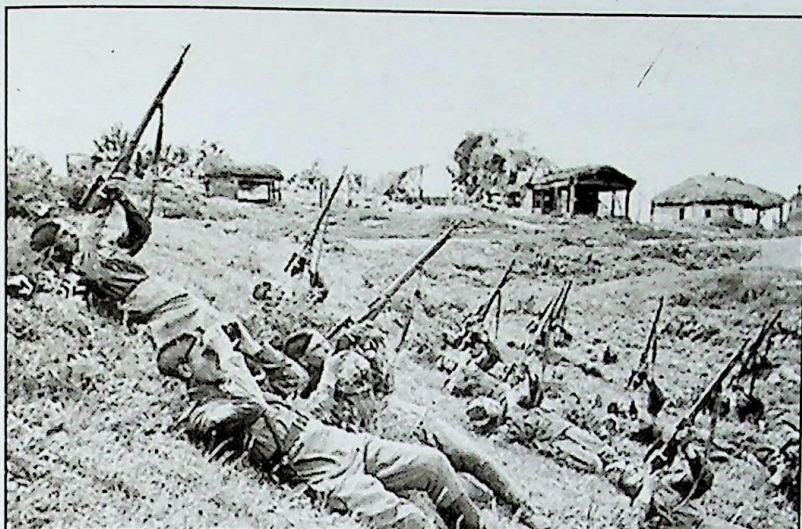
जर्मन विमानों को निशाना बनाते रूसी सैनिक।

और आखिर निशाना ठीक लगा।

लाखों बच्चों का हत्यारा निस्संतान हिटलर ग्योबेल्स की बेटी के साथ खेलते हुए।

जासूसी कुत्ता।

सैनिक कुत्ते।

युद्ध-अपराधियों को सामूहिक फाँसी।

29 अगस्त, 1944 : जर्मनों का साथ देने की सजा। युद्ध के दौरान इस फ्रांसीसी युवती ने प्रवासी जर्मनों से घनिष्ठ संबंध बना लिये थे। जर्मन पराजय के बाद स्थानीय लोगों ने सिर मूँड़कर इसे दंडित किया
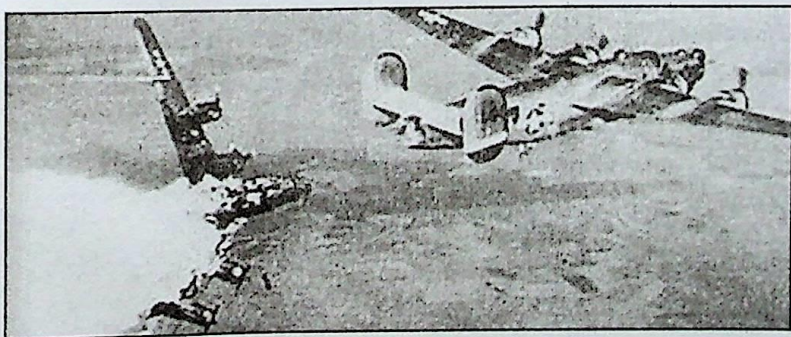
जर्मन और अमेरिकी विमानों की आकाशीय भिड़ंत।
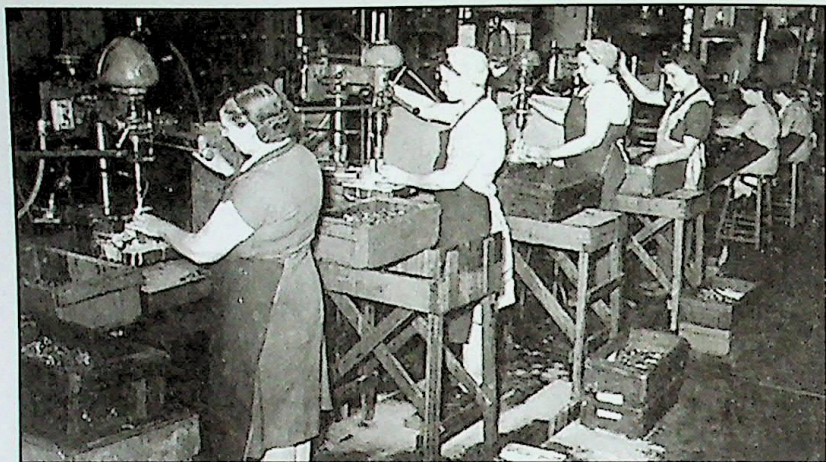
पुरुष मोरचे पर थे और कारखानों में काम सँभाल रखा था स्त्रियों ने।

द्वितीय विश्व युद्ध में विभिन्न मोरचों पर भारतीय सैनिक।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अनुमानित मानवीय क्षति

देश	जनसंख्या 1939 में	सैनिक मौतें	नागरिक मौतें
अल्बानिया	10,73,000	30,000	–
ऑस्ट्रेलिया	69,98,000	40,500	700
ऑस्ट्रिया	66,53,000	–	40,500
बेल्जियम	83,87,000	12,100	49,600
ब्राजील	4,02,89,000	1,000	1,000
बुल्गारिया	64,58,000	22,000	3,000
बर्मा	1,61,19,000	22,000	2,50,000
कनाडा	1,12,67,000	45,300	–
चीन	51,75,68,000	38,00,000	16,200,000
क्यूबा	42,35,000	100	–
चेकोस्लोवाकिया	1,53,00,000	25,000	43,000
डेनमार्क	37,95,000	2,100	1,000
डच ईस्ट इंडीज	6,94,35,000	–	40,00,000
इस्टोनिया	1,134,000	–	50,000
इथोपिया	1,77,00,000	5,000	95,000
फिनलैंड	3700,000	95,000	2,000
फ्रांस	4,17,00,000	2,17,600	2,67,000
फ्रांसीसी इंडोचाइना	2,46,00,000	–	10,00,000
जर्मनी	6,96,23,000	55,33,000	15,40,000

ग्रीस	72,22,000	20,000	2,20,000
हंगरी	91,29,000	3,00,000	80,000
आइसलैंड	1,19,000	–	200
भारत	37,80,00,000	87,000	15,00,000
ईरान	1,43,40,000	200	–
इराक	36,98,000	1,000	–
आयरलैंड	29,60,000	–	200
इटली	4,43,94,000	3,01,400	1,45,100
जापान	7,13,80,000	2,120,000	5,80,000
कोरिया	2,34,00,000	–	3,78,000
लातीविया	19,95,000	–	1,47,000
लिथुआनिया	25,75,000	–	2,12,000
लक्समबर्ग	295,000	–	1,300
मलाया	43,91,000	–	100,000
माल्टा	2,69,000	–	1,500
मेक्सिको	1,93,20,000	–	100
माइक्रोनेशिया	19,00,000	–	57,000
मंगोलिया	8,19,000	300	–
नीदरलैंड	87,29,000	21,000	176,000
न्यूफाउंडलैंड	3,00,000	1,000	100
न्यूजीलैंड	1,629,000	11,900	–
नॉर्वे	2,945,000	3,000	5,800
पापुआ न्यू गिनी	12,92,000	–	15,000
फिलिपींस	1,60,00,000	57,000	90,000
पोलैंड	3,48,49,000	2,40,000	27,60,000
पुर्तगाली तिमोर	500,000	–	55,000
रूमानिया	1,99,34,000	300,000	64,000

सिंगापुर	7,28,000	–	20,000
दक्षिण अफ्रीका	1,01,60,000	11,900	–
सोवियत संघ	16,85,00,000	1,07,00,000	1,14,00,000
स्पेन	2,56,37,000	4,500	–
स्वीडन	63,41,000	200	2,000
स्विट्जरलैंड	4,341,000	–	100
थाइलैंड	1,50,23,000	5,600	300
ब्रिटेन	4,77,60,000	3,82,700	67,100
अमेरिका	13,10,28,000	4,16,800	1,700
यूगोस्लाविया	15,400,000	4,46,000	514,000
कुल	**1,963,205,000**	**2,52,82,100**	**4,21,68,400**

❑

प्रमुख देशों के सैनिकों की संख्या

जर्मनी	
थलसेना	1,36,00,000
वायुसेना	25,00,000
नौसेना	12,00,000
वाफन एस.एस.	9,00,000
जापान	
थलसेना	63,00,000
नौसेना	21,00,000
सोवियत संघ	
कुल सेना	3,44,76,700
ब्रिटेन	
कुल सेना	1,11,15,000
अमेरिका	
आर्मी एवं नेवी	1,12,60,000
नेवी	41,83,446
मरीन सैनिक	6,69,100
कोस्ट गार्ड	2,41,093
मर्चेंट मरीन	2,43,000

❑

द्वितीय विश्व युद्ध : युद्ध-विवरण

30 सितंबर, 1938	:	म्यूनिख संधि।
मार्च 1939	:	चेकोस्लोवाकिया पर हिटलर (जर्मनी) का हमला।
मार्च/अप्रैल 1939	:	ब्रिटेन ने पोलैंड को आश्वस्त किया।
अगस्त 1939	:	रूस और जर्मनी ने समझौते पर हस्ताक्षर किए।
1 सितंबर, 1939	:	पोलैंड पर हिटलर का हमला और द्वितीय विश्व युद्ध का आरंभ।
3 सितंबर, 1939	:	ब्रिटेन एवं फ्रांस ने युद्ध की घोषणा की।
सितंबर 1939 से मई 1940	:	छद्म युद्ध।
अप्रैल/मई 1940	:	डेनमार्क और नॉर्वे पर हिटलर का हमला।
10 मई, 1940	:	बम-वर्षा।
26 मई, 1940	:	ब्रिटिश प्रधानमंत्री चेंबरलेन का इस्तीफा।
11 जून, 1940	:	धुरी राष्ट्रों के पक्ष में इटली युद्ध में कूदा।
22 जून, 1940	:	फ्रांस की जर्मनी के साथ संधि।
10 जुलाई से 31 अक्तूबर, 1940	:	ब्रिटेन का युद्ध।
22 सितंबर, 1940	:	त्रिपक्षीय संधि।
दिसंबर 1940	:	ब्रिटेन ने उत्तरी अफ्रीका में इटालियनों को खदेड़ा।
1941 का आरंभ	:	इटली एवं जर्मनी का यूगोस्लालाविया पर हमला।
21 जून, 1941	:	हिटलर ने रूस पर हमला किया–'ऑपरेशन बारबरोसा'।
7 दिसंबर, 1941	:	पर्ल हारबर पर जापान का हमला।
8 दिसंबर, 1941	:	ब्रिटेन और अमेरिका ने जापान के विरुद्ध युद्ध की

		घोषणा की।
फरवरी 1942	:	जापानियों ने सिंगापुर पर कब्जा किया।
जून 1942	:	मिडवे का युद्ध।
23 अक्तूबर, 1942	:	आमिएँ का युद्ध।
नवंबर 1942	:	स्टालिनग्राद का युद्ध।
नवंबर 1942	:	उत्तरी अफ्रीका में मित्र राष्ट्रों का वर्चस्व।
12 मई, 1943	:	उत्तरी अफ्रीका में धुरी राष्ट्रों का आत्मसमर्पण।
जुलाई 1943	:	मित्र राष्ट्रों का सिसली पर हमला।
अगस्त 1943	:	मित्र राष्ट्रों का सिसली पर नियंत्रण।
3 सितंबर, 1943	:	इटली का आत्मसमर्पण।
नवंबर 1943	:	तेहरान में मित्र राष्ट्रों की बैठक।
जनवरी 1944	:	लेनिनग्राद को छुड़ाया गया।
जून 1944	:	रोम मुक्त हुआ।
जुलाई 1944	:	जापान बर्मा से बेदखल।
25 अगस्त, 1944	:	पेरिस मुक्त हुआ।
दिसंबर 1944	:	ब्लुज का युद्ध।
मार्च 1945	:	मित्र राष्ट्रों ने राइन नदी पार की।
अप्रैल 1945	:	अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट की मृत्यु।
अप्रैल, 1945	:	रूसी सैनिक बर्लिन में घुसे।
28 अप्रैल, 1945	:	मुसोलिनी को फाँसी पर चढ़ाया।
30 अप्रैल, 1945	:	हिटलर ने आत्महत्या की।
2 मई, 1945	:	जर्मन सेना का आत्मसमर्पण।
7 मई, 1945	:	डोनरिज ने बिना शर्त आत्मसमर्पण की पेशकश की।
6 अगस्त, 1945	:	हिरोशिमा पर एटम बम से हमला।
8 अगस्त, 1945	:	रूस ने जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की।
9 अगस्त, 1945	:	नागासाकी पर एटम बम से हमला।
14 अगस्त, 1945	:	जापान ने आत्मसमर्पण किया।
2 सितंबर, 1945	:	जनरल मैकआर्थर ने जापान का आत्मसमर्पण स्वीकार किया। युद्ध विधिवत् समाप्त।

❑

द्वितीय विश्व युद्ध : मुख्य तथ्य

- द्वितीय विश्व युद्ध के आरंभ में जर्मन पनडुब्बियों ने मित्र राष्ट्रों की लगभग 7 लाख टन खाद्य सामग्री प्रतिमाह समुद्र में डुबोई।
- जर्मन सेना ने डेनमार्क और नॉर्वे पर इतना भयानक थल, जल और वायु हमला किया कि दोनों देशों ने 48 घंटे में घुटने टेक दिए।
- 19 जून, 1940 को जर्मन सेना ने पेरिस पर ऐसी जबरदस्त बमबारी की कि फ्रांस सरकार पेरिस छोड़कर भाग गई। 14 जून तक पेरिस बिलकुल खाली हो गया। 20 लाख नगरवासी पलायन कर गए।
- जर्मन सेना ने लंदन में इतना कहर मचाया कि वहाँ की 60 प्रतिशत से अधिक इमारतें नष्ट हो गईं। 60 हजार से अधिक ब्रिटिश नागरिक मारे गए और 87 हजार से अधिक घायल हुए।
- 14 नवंबर, 1940 को जर्मनी ने लंदन पर 449 लड़ाकू विमानों से 600 टन से अधिक विस्फोटक सामग्री गिराई।
- द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हिटलर ने सन् 1944 तक 14 लाख यहूदियों को मौत के घाट उतरवा दिया था।
- जापान ने 7 दिसंबर, 1941 को एकाएक अमेरिकी पर्ल हार्बर पर हमला करके कुछ ही घंटों में 8 लड़ाकू जहाजों, 3 युद्धपोतों, 3 विध्वंसक जहाजों और 343 विमानों को नष्ट कर दिया।
- 13-14 फरवरी, 1945 को मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी के एक नगर ड्रेस्डुन पर भारी बमबारी करके 3,20,000 जर्मनवासियों को मार डालने का दावा किया।
- 9 मार्च, 1945 को अमेरिकी बी-29 लड़ाकू विमानों ने टोकियो पर बमबारी करके 2,00,000 लोगों को मौत की नींद सुलाया।

- जर्मन पनडुब्बी यू-120 एक खराब शौचालय में डूब गई थी।
- युद्ध के आखिरी दिनों में (अप्रैल 1945) 16 लाख सैनिकों, 3,827 टैंकों, 4,500 एंटी टैंक गनों, 2,000 सैल्फ प्रॉपेल्ड गनों, 15,000 फील्ड गनों, 7,000 लड़ाकू विमानों तथा 97,000 अन्य वाहनों के साथ रूसी सेना ने बर्लिन पर हमला बोला।
- जापान के दो नगरों हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराए गए एटम बमों ने 1.5 लाख से अधिक लोगों की जान ली और 1 लाख के लगभग लोग रेडियो विकिरण से बुरी तरह झुलसे।
- द्वितीय विश्व युद्ध में लगभग 5 करोड़ लोग मारे गए, जिनमें 3 करोड़ आम नागरिक और 2 करोड़ सैनिक शामिल हैं। इनमें से 1 करोड़ लोगों को तो हत्या शिविरों में यातना देकर मारा गया।
- सबसे अधिक रूसी सैनिक मारे गए। उनकी कुल संख्या 1.5 करोड़ं के लगभग थी।
- मित्र राष्ट्रों के 1 करोड़ 70 लाख सैनिक मारे गए।
- धुरी राष्ट्रों के 60 लाख सैनिक मारे गए, जिनमें से 40 लाख जर्मन सैनिक थे।
- सैनिकों के अलावा रूस में 70 लाख आम नागरिक भी मारे गए।
- मित्र राष्ट्रों और धुरी राष्ट्रों की मौत के आँकड़े का अनुपात 5 : 1 रहा।
- इस युद्ध में यूरोपीय देशों के 70 प्रतिशत उद्योग-धंधे नष्ट हुए।
- द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दुनिया भर से साम्राज्यवाद का सफाया हो गया। ब्रिटेन के अधिकतर उपनिवेश स्वतंत्र हो गए; उनमें भारत भी शामिल था।

कुछ रोचक तथ्य

भालू सैनिक

मोंटे कैसिनो की लड़ाई के दौरान पोलिश सेना ने एक भालू को भी सहायक सैनिक के रूप में इस्तेमाल किया। 'वोजटेक' नाम का यह भूरा भालू गोला-बारूद के बक्से ढोने में उनकी मदद करता था।

सबसे भारी टैंक

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जर्मनी ने सबसे भारी टैंक बनाया। 'मायुस 2'

नामक यह टैंक 192 टन वजनी था। लेकिन जर्मनों के दुर्भाग्य से युद्ध के आखिरी दिनों तक यह संचालन योग्य नहीं हो सका था।

आत्मघाती हमलावर कुत्ते

सोवियत संघ की लाल सेना ने दुश्मन टैंकों को नष्ट करने के लिए कुत्तों को प्रशिक्षित किया। उनकी पीठ पर वजनी विस्फोटक बाँधकर शत्रु टैंकों के नीचे भेज दिया जाता था। वहाँ ट्रिगर दब जाने से विस्फोट होता था, जिससे टैंक नष्ट हो जाता था और हाँ, कुत्ता भी। स्टालिनग्राद और कुर्स्क की लड़ाइयों में इसी युक्ति से 25 जर्मन टैंक नष्ट किए गए।

फीनिक्स की किस्मत

सन् 1941 में जब पर्ल हार्बर पर जापानी हमला हुआ तो हलका अमेरिकी जहाज 'फीनिक्स' लंगर डाले खड़ा था। इस भयंकर हमले में फीनिक्स लगभग पूरा बच गया। लेकिन 40 साल बाद वही जहाज दक्षिणी अटलांटिक में ब्रिटिश पनडुब्बी 'कॉनक्वेयर' के तारपीडो हमले से सागर में डूब गया। उस वक्त फीनिक्स का नाम बदलकर 'जनरल बेलग्रानो' कर दिया गया था। क्या यह नाम का चमत्कार था कि 'फीनिक्स' बच गया था और 'जनरल बेलग्रानो' डूब गया?

चर्चिल बाल-बाल बचे

17 जनवरी, 1942 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल पहले दुश्मन की गोली से, फिर अपनी वायु सेना के हाथों बाल-बाल बचे थे। संयुक्त राज्य अमेरिका से लौटते समय उनकी 'फ्लाइंग बोट' मार्ग से भटक गई और फ्रांस में जर्मन एंटी-एयरक्राफ्ट गन की जद में आ गई। इस गलती को सुधारा गया तो उनकी फ्लाइंग बोट ब्रिटिश रडार ऑपरेटरों को दिखी। उन्होंने उसे दुश्मन बम हमलावर समझा। 6 आर.ए.एफ. फाइटर उसे गिराने के लिए उसकी ओर झपटे, लेकिन सौभाग्य से चर्चिल की फ्लाइंग बोट को खोजने में नाकाम रहे।

नागासाकी पर हमला

बी-29 बॉम्बर का नाम सभी जानते हैं, जिसने हिरोशिमा पर परमाणु बम गिराया था। लेकिन उसके बारे में नहीं जानते जिसने नागासाकी पर तीन दिन बाद परमाणु बम गिराया था? दरअसल नागासाकी बी-29 का मूल लक्ष्य नहीं था,

उसका अभीष्ट लक्ष्य काकुरा शहर था। बॉम्बर को सख्त आदेश दिया गया था कि सटीक लक्ष्य पर निशाना लगाए, लेकिन उस समय काकुरा शहर धुंध से ढका हुआ था। वैकल्पिक लक्ष्यों में अगला प्रथम लक्ष्य नागासाकी था, अतः उसे निशाना बना दिया गया।

हिमलर

नाजी एस.एस. वाहिनी का दुष्ट प्रमुख हेनरिय हिमलर पहले मुरगी पालन का धंधा करता था।

मुसोलिनी

आरंभिक जीवन में मुसोलिनी अध्यापक, मजदूर, समाजवादी, अवसरवादी, सैनिक, आवारा और न जाने क्या-क्या था। बाद में उसने फासीवादी दल का गठन किया। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान वह इटली के अखबार में संपादक था। उस अखबार को ब्रिटेन और फ्रांस से आर्थिक सहायता मिलती थी। उस समय वह जर्मन के धुरी राष्ट्रों का विरोधी था।

तानाशाह हिटलर

हिटलर शाकाहारी था। वह शराब नहीं पीता था और बीड़ी-सिगरेट से भी दूर रहता था।

पैदल सेना

क्रीट (ग्रीस) पर कब्जे के दौरान हवाई हमलों में भारी घाटा उठाने के बाद हिटलर ने बड़े पैमाने पर हवाई हमलों से तौबा कर ली और उसके स्थान पर पैदल सेना के इस्तेमाल को बढ़ावा दिया।

स्तालिन का नाम

रूस के तानाशाह जोसफ स्तालिन का मूल नाम जोसिफ डूगशविलि था। सन् 1913 से उसने अपना छद्म नाम 'स्तालिन' रख लिया, जिसका अर्थ है- 'स्टील का बना आदमी'।

❑

द्वितीय विश्व युद्ध में भारत की भूमिका

द्वितीय विश्व युद्ध के समय भारत इंग्लैंड का एक उपनिवेश था और इसमें आज के बँगलादेश, पाकिस्तान और म्याँमार शामिल थे। अतः सितंबर 1939 में जब द्वितीय विश्व युद्ध आरंभ हुआ, ब्रिटिश उपनिवेश होने के कारण भारत स्वतः ही युद्ध में शामिल हो गया। हिटलर के नाजीवाद और फासीवाद के खात्मे के लिए मित्र सेना को सभी भारतीय रियासतों ने दिल खोलकर धन और सैन्यबल दिया।

ब्रिटिश उपनिवेश के रूप में भारत मित्र सेना की ओर से लड़ा। इस लड़ाई में भारत के लगभग 20.5 लाख सैनिकों ने हिस्सा लिया। इनमें से 36,000 सैनिक शहीद हुए, 34,000 जख्मी और 67,000 को कैद कर लिया गया। भारत की ज्यादातर फौज जापान के विरुद्ध दक्षिण-पूर्व एशिया और उत्तरी तथा पूर्वी अफ्रीका में मोरचे पर रही।

सन् 1939 में जब युद्ध भड़का, ब्रिटिश सरकार ने भारतीय नेताओं की सलाह लिये बगैर भारत को भी युद्ध की आग में झोंक दिया। इससे क्षुब्ध होकर विरोधस्वरूप कांग्रेस के प्रांतीय मंत्रियों ने पदों से इस्तीफा दे दिया।

इधर राजनीति जारी थी और उधर मोरचा। 4, 5 और 8वीं भारतीय बटालियनें इतालवी सैनिकों के विरुद्ध सोमालीलैंड, इरिट्रिया और अबिसीनिया में मोरचे पर डटी थीं। मेजर पी.पी.के. कुमारमंगलम् 41वीं फील्ड रेजीमेंट के बैटरी कमांडर थे। उन्होंने इतालवी टैंकों को ध्वस्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाद में, सन् 1967 में वे भारतीय सेना के मुखिया बने।

जापानी सेना को भारत में घुसने से रोकने के लिए भारतीय वायु सेना ने इंफाल में जबरदस्त नाकेबंदी की और बर्मा तक घुस आई जापानी टुकड़ियों

को पीछे खदेड़ दिया। कुछ जापानी टुकड़ियाँ कोहिमा तक आ घुसीं, उन्हें भी भारतीय फौजों ने बहादुरी से पीछे खदेड़ दिया।

अंग्रेजों की रसद को ठप करने के लिए जापान ने भारत को कब्जाने की नीति बनाते हुए अंडमान और निकोबार में भी टुकड़ियाँ भेजीं। पोर्ट ब्लेयर में जापानी सेना द्वारा गिराए बम के चिह्न आज भी देखे जा सकते हैं। इनसे कब्जा हटाने के लिए मित्र सेना ने मिलकर काम किया।

इटली को मुसोलिनी के फासीवाद से मुक्त कराने में भी भारतीय फौज ने निर्णायक भूमिका निभाई। 43वीं गोरखा इन्फैंट्री ब्रिगेड ने यहाँ अमेरिकी और ब्रिटिश सेना के साथ बढ़त बनाई और मोंटे केसिनो के प्रख्यात युद्ध में इतालवी अग्रिम पंक्ति को नेस्तनाबूद कर दिया।

भारतीय सैनिकों ने इथोपिया में इतालवी सेना को तथा मिस्त्र, लीबिया और ट्यूनीशिया में इतालवी और जर्मन दोनों सेनाओं से लोहा लिया। 8 दिसंबर, 1941 को जापानी सेना ने हाँगकाँग पर हमला किया। वहाँ राजपूत रेजीमेंट और पंजाब रेजीमेंट के सैनिक तैनात थे। उन्होंने दो हफ्ते के भीतर ही जापानियों को आत्मसमर्पण करने के लिए मजबूर कर दिया।

इसके अलावा सिंगापुर, फ्रांस, ग्रीस, उत्तरी अफ्रीका, इराक, पर्शिया आदि मोरचों पर भी भारतीय फौज ने दमखम का परिचय दिया। इस युद्ध में असाधारण वीरता के प्रदर्शन के लिए भारतीय फौज को 4,000 वीरता पदक और 31 विक्टोरिया क्रॉस प्राप्त हुए।

युद्ध की समाप्ति के फौरन बाद सन् 1942 में गांधीजी ने भारत छोड़ो आंदोलन छेड़ दिया। युद्ध की विभीषिका से टूटा इंग्लैंड ज्यादा समय तक भारत को गुलाम नहीं रख सका और 15 अगस्त, 1947 को देश आजाद हो गया।

□□□

मेजर राजपाल सिंह ने दिल्ली के प्रतिष्ठित श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स तथा दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से शिक्षा प्राप्त की, एल-एल.बी. के बाद एम.बी.ए. किया। गत सोलह वर्षों से FICCI में कार्यरत हैं। भारत सरकार के अनेक मंत्रालयों के 9-11 पंचवर्षीय योजनाओं से संबद्ध रहे। अंतरराष्ट्रीय मुद्दों व सैन्य इतिहास के अलावा खेलों व नई टेक्नोलॉजी में उनकी विशेष अभिरुचि है। सन् 2004 में प्रादेशिक सेना (टेरीटोरियल आर्मी) में कमीशन मिला, तत्पश्चात् इंडियन मिलिट्री एकेडेमी से ट्रेनिंग प्राप्त की। युवाओं को आकर्षित करने के लिए वे प्रादेशिक सेना की विभिन्न प्रसार सामग्री के पोस्टर बॉय रहे हैं। वर्तमान में वे सिख रेजीमेंट की 124 इन्फैंट्री बटालियन (TA) में कंपनी कमांडर हैं।

कैप्टेन राजपाल ने टेलीकॉम, सूचना प्रौद्योगिकी व खेलों के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभाई है। उन्होंने खेलों के प्रचार-प्रसार के लिए भारत सरकार द्वारा गठित अनेक कमेटियों में FICCI का प्रतिनिधित्व किया है। स्वयं जूडो में ब्लैक बैल्ट (IInd डैन) रहे कैप्टन राजपाल ने भारतीय ओलंपिक संघ, स्पोर्ट्स अथॉरिटी ऑफ इंडिया, कॉमनवैल्थ गेम्स आयोजन समिति तथा नैशनल स्पोर्ट्स फाउंडेशन में व्यक्तिगत तथा संस्थागत स्तर पर सक्रिय भूमिका निभाई है।

कैप्टेन राजपाल सेंटर फॉर वॉरफेयर स्टडीज, डिफेन्स सर्विसेज ऑफीसर्स इंस्टीट्यूट, यूनाइटेड सर्विसेज इंस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया के आजीवन सदस्य हैं।

लेखक की अन्य पुस्तक

प्रथम विश्व युद्ध

WORLD WAR - I

मेजर राजपाल सिंह

50 मिलिटरी लीडर जिन्होंने दुनिया बदल दी

मेजर राजपाल सिंह

ISBN 978-93-81063-44-6

ग्रंथ अकादमी
नई दिल्ली